लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा

ग्रन्थकर्ता : डॉ० मनोहर शर्मा
व्याख्याता, शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर

भूमिका डॉ० सत्येन्द्र
प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा

ग्रन्थकर्त्ता   डॉ० मनोहर शर्मा
व्याख्याता, शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर

भूमिका   डॉ० सत्येन्द्र
प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

प्रकाशक : सुनील बोहरा
बोहरा प्रकाशन
चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

प्रथम संस्करण : १९७१

आवरण : श्री प्रेमचन्द्र गोस्वामी

मुद्रक : स्वदेश प्रिंटर्स
तेलीपाड़ा, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

स्वर्गीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
की
पावन स्मृति में

दो शब्द

भारतीय लोकसाहित्य पर जरा गहराई से विचार करने पर प्रकट होता है कि इस विशाल देश का प्रत्येक प्रान्त भीतरी तौर पर एक प्राण है। इतना ही नहीं, साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि भारत का अतीत भी इसके वर्तमान के साथ जुड़ा हुआ है। भारत में अनेक संस्कृतियों का संगम हुआ परन्तु इसका मूल रूप अक्षुण्ण ही बना रहा।

यही कारण है कि स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का यह दृढ अभिमत था कि भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र 'लोके वेदे च' है। भारत के संस्कृति-रथ का एक चक्र वेद अर्थात् शास्त्र पर आधारित है तो उसका दूसरा चक्र लोक पर टिका हुआ है।

इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए राजस्थानी लोकसाहित्य के आधार पर कुछ लेख तैयार किए गए थे, जो समय-समय पर विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे।

यह सामग्री डा० अग्रवाल महोदय को विशेष पसंद आई थी, अतः उन्होंने इस लेखन-श्रम को जारी रखने के लिए लेखक को उत्साहित किया था।

अब ये लेख एक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं, यह हर्ष का विषय है। परन्तु आज डा० अग्रवाल इस संसार में नहीं हैं, इससे आगे और क्या कहा जाए?

बिसाऊ (राजस्थान) मनोहर शर्मा

गुरुपूर्णिमा, संवत् २०२८ वि०

अनुक्रमणिका

भूमिका

हाल ही में प्रकाशित दक्षिण कोरिया के चार डाक टिकटों पर एक लोककथा (Fable) प्रकाशित की गयी है। उसका सार यह है—

"एक लकड़हारा कुमगंग पर्वत की तलहटी में रहता था। एक दिन जब वह पहाड़ी पर लकड़ी काटने गया था, उसने अनायास ही एक हाँफता मृग देखा जो अहेरी से भयभीत होकर भागा जा रहा था। लकड़हारे ने उस पर दया कर उसे छिपा कर उसकी रक्षा की। मृग ने इस उपकार का बदला चुकाने के लिए लकड़हारे को बताया कि कुमगंग पर्वत में एक सरोवर है। वहाँ स्वर्ग की अप्सराएँ आती हैं। उनमें से एक के वस्त्र लेकर तुम छिपा देना। उसे अपनी पत्नी बना लेना। पर स्मरण रहे, उसके वस्त्र तब तक मत लौटाना जब तक तीन बच्चे न हो जायें। लकड़हारे ने तदनुसार वस्त्र चुराकर एक अप्सरा को अपनी पत्नी बना लिया और आनन्दपूर्वक रहने लगा। उनके दो बच्चे हो गये। लकड़हारा मृग की बात भूल गया और एक दिन उसने उसके चुराये हुए वस्त्र भी लौटा दिये। उन्हें पहन कर अप्सरा अपने दोनों पुत्रों को लेकर उड़ गयी। पत्नी और पुत्रों के वियोग में वह मरणासन्न हो चला। वही मृग फिर उसके पास आया। उसे सान्त्वना देते हुए उसने बताया कि तुम फिर उसी सरोवर पर जाओ। अब अप्सराएँ सरोवर पर नहीं आती। अब वे स्वर्ग से बाल्टियाँ डालकर उस सरोवर से पानी खींच लेती हैं। तुम वहाँ जाकर एक बाल्टी में बैठकर स्वर्ग में चले जाना। उसने ऐसा ही किया। सरोवर पर जाकर एक बाल्टी में बैठकर ऊपर चला गया और अपनी पत्नी तथा बच्चों से मिला।[1]

सिद्ध है कि दक्षिण कोरिया में यह लोककथा अत्यन्त लोकप्रिय और लोक-प्रतिष्ठित है। तभी उसे चौथी कथा माला (Fable Series) में डाक टिकटों पर छापा गया है।

हिन्दी में कुतुबन की मृगावती में सं० १५६० विक्रमी में हमें यही कथा मिलती है। इस कहानी में लकड़हारा नहीं एक राजकुमार है। इसमें अप्सरा ही स्वयं मृगी है। इस कथा का ही आधार लेकर सं० १७२३ में

---

1. द इलस्ट्रेटेड वीकली आव इंडिया vol XCII,26 Surday June 27 1971 पृ० 59

मेघराज प्रधान ने भी मृगावती लिखी। इस कृति से विदित होता है कि मृगावती की कथा अत्यन्त लोकप्रिय थी। प्रधान ने लोक प्रचलित कथा का ही उपयोग किया।

इसमें संदेह नहीं कि कुतुबन के समय में भी यह कथा लोक-प्रचलित थी।

और कब यह कथा लोक-प्रचलित नहीं थी? डा० मनोहर शर्मा ने राजस्थान मे पाबूजी के जन्म की कथा तथा हरस-जीरा के जन्म की कथाएँ दी हैं, वे इसी कथा के रूपान्तर है और डॉ० मनोहर शर्मा ने बताया है कि "अप्सरा और मनुष्य के प्रणय की ये राजस्थानी लोककथाएँ" पुरुरवा एव उर्वशी' की प्रेमकथा के रूपान्तर हैं जो हमारे देश मे अति प्राचीन काल से लोक-प्रचलित हैं। ऋग्वेद (१०-६५) में इस प्रणय-कथा की चर्चा है। इसी प्रकार यह प्रसंग शतपथ-ब्राह्मण (६.१) में भी उपस्थित है। परन्तु विष्णुपुराण में यह प्रेमकथा विकसित रूप में दी गयी है।

कालिदास ने 'विक्रमोर्वशी' में यही कथानक लिया है। उधर दक्षिण कोरिया मे आज भी यह लोकप्रचलित है। और स्कैंडिनेविया में भी हंस-बालाओं की कहानी के रूप मे यह मिलती हैं।[1]

पुरुरवा उर्वशी की कहानी को विद्वानों ने 'स्वान मेडन' (Swan-maiden) मानक रूप के अन्तर्गत रखा है। एनसाइक्लोपेडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स[2] के अनुसार "यह सुन्दर और व्यापक पुराख्यान (Myth) प्राचीन युग का आख्यान है। यह विविध रूपान्तरों में विस्तृत भू-भाग में फैला हुआ है। इस मिथ का केन्द्र-बिन्दु यह है कि कुछ प्राणी, अर्द्ध मानव, अर्द्ध पराप्राकृतिक, पक्षी रूप मे परिणत हो जाने की शक्ति से सम्पन्न हैं। इसके साथ दो गौण बातें भी रहती हैं:—(१) यह योनि-परिवर्तन (पक्षी-योनि में) किसी जादुई वस्तु पर निर्भर करता है—वह परों का कोट, लबादा, या परदा हो सकता है जिसके शरीर ढकने पर पक्षी-रूप प्राप्त हो जाता है। यह अँगूठी या माला भी हो सकती है। (२) या तो यह प्राणी जब मनुष्य रूप मे होता है तब, या उसको अपने वश मे रखने वाला व्यक्ति, किसी न किसी बंधन से बंधा होता है।"

जैसे उर्वशी अप्सरा है, यों भी उसमें उड़ने की शक्ति है पर 'शतपथ ब्राह्मण' में उल्लेख है कि उर्वशी के बताये बंधन के उल्लंघन के उपरान्त उर्वशी

---

1. Scandinavian Legends and Folk Tales P. 174
2. पृ० 125, vol. 12.

के उड़ जाने पर पुरूरवा उसके वियोग मे तड़पता उसकी खोज करते-करते कुरुक्षेत्र के सरोवर पर पहुंचता है तो वह हंसिनी के रूप मे उर्वशी को अन्य हंसिनियो के बीच क्रीड़ा-मग्न पाता है। स्पष्ट है कि उर्वशी मे हंस-बाला के रूप मे परिणत होने की शक्ति थी। इसी उल्लेख से उर्वशी की कथा हंस-बाला (स्वान मेडन) की कोटि की हो जाती है।

पेंजर ने भी बताया है कि यह कथा सम्भवत विश्व की प्राचीनतम प्रेम कथा है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त 'शतपथब्राह्मण,' 'विष्णुपुराण' आदि के बाद कालिदास के विक्रमोर्वशी मे तो यह है ही। सहस्र रजनी चरित (अलिफ लैला) मे बसरा के हसन की कहानी भी इसी का एक रूपान्तर है।

"स्टैंडर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर आदि" मे उल्लेख है कि—

"The motif (D 361 1) typifying a world wide cycle of Folk Stories characterized by the metamorphosis of a beautiful half mortal, half super natural Maiden from Swan to maiden-form The Swan form depends upon the possession of *a magic feather robe (or pair of wings), or a ring, crown, or* a golden chain. Usually the Swan Maiden is under some enchantment or tabu that effects also her human lover That the Swan Maiden marries the youth who finds and steals her swan garb on the shore is common to almost all Asiatic and European versions Either the lover hides the enchanted feather dress (ring, chain crown) and thus keeps the wonderful swan maiden with him in human form until she finds it, or he breaks the tabu and she vanishes and returns to her swan shape and super natural life[1]

यह अभिप्राय एशिया और यूरोप मे सर्वत्र पाया जाता है। स्वीडो की लोकवार्ता मे, आइसलैंड फिनलैंड की कहानियो मे तथा बंगाल और इंडोनेशिया की कहानियो मे यह अभिप्राय मिलता है। चीन, लंका, आसाम आस्ट्रेलिया पोलीनेशिया, मेलेनेशिया, इण्डोनेशिया मे भी और अमेरिका मे भी।

अमरीकी इण्डियनो की एक कहानी मे एक अहेरी एक झील के कुछ हंसिनियो को स्त्री रूप मे क्रीड़ा करते देखता है। उनके पंखो के आच्छादन तट पर रखे हुए थे। वह उन स्त्रियो के आच्छादनो को अपने अधिकार मे कर लेता है, फिर एक को छोड़ सब उनके आच्छादन लौटा देता है। सभी उड़ जाती है। वह एक उसके साथ विवाह करके रहने लग जाती है। उनके दो बच्चे होते है। एक दिन उसे अपना हंसिनी-आच्छादन मिल जाता है उसे

1. पृ० 1091

धारण कर अपने दोनों बच्चों के साथ वह उड़ जाती है। अहेरी पीछा करके उन्हें पुनः प्राप्त कर लेता है। अन्त में वह अपनी पत्नी को मार डालता है, पर बच्चे बच कर भाग निकलते हैं।[१]

इन विवरणों का अभिप्राय यह है कि उर्वशी अप्सरा की कहानी विश्व भर में मिलती है, विविध रूपान्तरों में। डा० मनोहर शर्मा के अनुसार राजस्थान में कुछ व्यक्तियों की दिव्य-उत्पत्ति बताने के लिए दो रूपों में यही कथा मिलती है।

पेंजर ने कथा सरित्सागर (viii) में निर्णय दिया है कि हंस-बाला की कहानी की मूल धुरी संस्कृत में है—अर्थात् वेद-पुराणों के पुरुरवा-उर्वशी आख्यान में। इतिहास की दृष्टि से यह कहानी ऋग्वेद के उल्लेख से भी पूर्व की होनी चाहिए। ऋग्वेद में तो पुरुरवा-उर्वशी का संवाद भर है, आख्यान नहीं। आख्यान शतपथ-ब्राह्मण में है। ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी के संवाद की आधार-कथा क्या शतपथ-ब्राह्मण के कवि ने अपनी कल्पना से रची होगी या उसने उस परम्परागत आख्यान को दिया है जिसमें से संवाद का अंश ऋग्वेद में सम्मिलित किया गया। स्वाभाविक निष्कर्ष यही हो सकता है कि पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान परंपरा में ऋग्वेद से भी पूर्व से चला आरहा होगा। वेदों से आख्यान नहीं लिया गया, आख्यान पूर्व-प्रचलित था, उसमें संवाद ऋग्वेद ने ले लिये हैं।

जो भी हो, अप्सरा मानव के प्रणय की यह कथा लोक-कथा भी है, पुराख्यान (Myth) भी है और साहित्यिक लोकगाथा भी है।

'मिथ' के संबंध में इधर पाश्चात्य नवालोचन (*New criticism*) में बहुत चर्चा हुई है और फलतः हमारे यहाँ भी मिथ और मिथक की चर्चा चल पड़ी है।

रेने वालेक और ऑस्टिन वारेन ने 'थ्योरी आव लिटरेचर' में बताया है कि 'मिथ' जो कि आधुनिक आलोचना का एक 'प्रिय शब्द है' अर्थ के एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की ओर संकेत करता है और उसी पर छाया रहता है, अर्थ का यह महत्त्वपूर्ण क्षेत्र धर्म (Religion), लोकवार्ता, नृतत्व, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाओं (Favourite) द्वारा समानरूपेण उपयोग में आता है।"[२]

---

1. स्टैंडर्ड डिक्शनरी के आधार पर
2. Myth'a Favourite पृ० १६० ।

'प्रतीकवाद की एक परिभाषा देने का प्रयास करते हुए Literary Criticism : A Short History में William K. WimSatt, JR Cleantn Brooks लिखते हैं :

"Whether a real school of symbolism ever existed, remains a problem of speculation.... Each poet developed and represented a single aspect of an aesthetic doctrine that was perhaps too vast for one historical group to incorporate . But more than on any other article of belief, the symbolists united with Mallarme in his statements about poetic language. The theory of the suggestiveness of words comes from a belief that a primitive language, half-forgotten, half-living exists in each man. It is a language possessing extraordinary affinities with music and dreams (Mallarme p 261)

इसमे आये 'Primitive language, half forgotten, half living exists in each man' पर विशेष चर्चा करते हुए कहते हैं कि मल्लार्मे ने जब ये शब्द लिखे थे तब से अब तक, आधुनिक अर्थात हमारे समय तक 'prelogical and primitive mind या आदिम मानस मे जो रुचि नृतत्व अथवा गूढ़ मनोविज्ञान Depth psychology मे सर्वदित हुई है उसने ही मिथ को विशेष महत्त्व प्रदान कर दिया है, आज के युग मे। क्योंकि मिथ को ही 'a primitive language, half forgotten, half living' के रूप मे स्वीकार किया जाता है।

अरस्तू मे मिथ का अर्थ है कथा या कहानी (A Narration, Story, a fable) किन्तु 'मिथ' को जो महत्त्व धर्मों और भाषाओं मे मिला हुआ है उससे इसमे अर्थ-वैविध्य और महान अर्थ क्षमता की सभावनाएं सिद्ध होती है। फलत. मिथ कहानी के रूप मे तो है, पर उसमे प्रतीकात्मकता भी है और उसका सबध एक ओर पर लोकमानस के आदिमस्तर से भी जुड़ा हुआ है। अतः मिथ या कहानी स्वय आदिम भाषा का एक रूप है जिसमे कितने ही बिम्ब-प्रतीकों के रूप के शब्द हैं।–"(उर्वशी) अप्सरा–हसवाला–सरोवर जल- आच्छादन. वस्त्र–वशीकरण के उपकरण—(पुरुरवा) मानव–नारी + नर प्रेम–शर्त्त-वर्जन–प्राप्ति–सतान–वर्जन उल्लघन–लोप–प्रयत्न–पुन. प्राप्ति"—इस कहानी के ये कुछ शब्द प्रतीक हैं। विश्व भर मे कथा-बिम्ब ही मूलभाषा का काम देते है। इन्ही को लेकर कवि महाकाव्य रचता है, धर्म अपना पुराण रचता है। और नृतत्वविद तथा अन्य विद्वान अपने-अपने अर्थ लगाते हैं।

पुराण-शास्त्रियो (mythologists) के एक प्राचीन सम्प्रदाय ने इन्हे प्रकृति-पुराख्यान (nature myths) माना—वारिदवाला जहाँ धवल वारि

है और वशकर्त्ता है झंझावात की आत्मा (storm spirit)। कुछ ने इन्हें मृतकों के लोक के निवासी की कल्पना माना। कुछ ने इन्हें तत्वम (totem) बताया। कुछ ने इसके वर्जन के पक्ष को लेकर ही, इसे आदिम कालीन वैवाहिक वर्जनों का उल्लेख माना। उधर पुरुरवा-उर्वशी ऋग्वेद में आये हैं। और वेदों के अर्थों के सम्बन्ध में 'उरुज्योति' की भूमिका में यह लिखा है : "वेदों के पश्चिमी विद्वानों ने सायण के प्रदर्शित मार्ग से वेदों का अनुशीलन किया, किन्तु उन्होंने भाषा शास्त्र और तुलनात्मक धर्मविज्ञान इन दो नये *अस्त्रों से वैदिक अर्थों की जिज्ञासा को आगे बढ़ाया।* जो विद्वान उनके प्रयत्नों से परिचित है, उन्हें जैसा थी ई० जे० टामस ने डॉ० रीले की पुस्तक "वैदिक गाड्स एज फिगर्स ऑव बाओलोजी" नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है— "यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वैदिक अर्थों के अज्ञान की समस्या का समाधान अभी नहीं हुआ। वैदिक मंत्रों के अर्थ अभी तक 'संप्रश्न' के रूप में हमारे *सामने हैं। उनसे संबंधित अनेकानेक प्रश्नों का मुख अभी तक खुला हुआ है।"* उरुज्योति के लेखक महान वैदिक विज्ञान स्व० डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल भूमिका में आगे बताते हैं : "समस्त वेदों का पर्यवसान अध्यात्म विद्या में है। यह दृष्टिकोण स्वामी दयानन्द ने अपनी विशाल प्रज्ञानमयी प्रतिभा से जिस दृढ़ता से रखा, उससे वैदिक अर्थों की शैली सचमुच बहुत लाभान्वित हुई है।" अतः वेदार्थ में अध्यात्म विद्या के पोषकों ने वैदिक शब्दों का विशेषार्थ प्रस्तुत किया। स्व० डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल स्वयं भी इस नयी वैज्ञानिक प्रणाली से वेदार्थ और व्याख्या में प्रवृत्त हुए। इस विधि से पुरुरवा-उर्वशी का अर्थ ही कुछ और हो जायगा। जो भी हो उर्वशी और पुरुरवा पर इतनी चर्चा यह प्रकट करती है कि इस मिथ को जो मिथ होने से पूर्व लोक-कहानी ही *थी, समझने के आज तक जितने भी प्रयत्न हुए हैं वे पर्याप्त नहीं हैं।* लोक भूमि पर लोक-मानस की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण इसमें नयी रुचि नये रूप-रंग देकर नये बोध के योग्य बनाती रहती है। और नये-नये अर्थों की सम्भावना बनती जाती है।

इसीलिए लोकसाहित्य भी नया महत्त्व ग्रहण करता जाता है। उसका *अध्ययन भी नयी अर्थवत्ता को जन्म देता है।*

डॉ० मनोहर शर्मा ने अपने इन निबंधों में, जो इस संग्रह में हैं, अपनी तरह से लोक और वेद, साहित्य और लोकसाहित्य के विविध तानों-बानों को गहरे पैठ कर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अनेकों लोकगीत अनेकों कहानियों, अनेकों कहावतें तथा अनेक लोकविश्वास की बातें हमारे सामने

प्रश्न चिन्ह बन कर आती हैं। उनमें से कुछ प्रश्नों को ही आधुनिक लोक-साहित्य विज्ञान की पद्धति से डॉ० शर्मा ने इस पुस्तक के निबन्धों में खोजने और समाधान देने का स्तुत्य प्रयत्न किया है और उसमें भारतीय संस्कृति की महनीयता के भी दर्शन कराये है।

राजस्थान की बातों में भारतीय संस्कृति का तारतम्य भली प्रकार सिद्ध है। पर लोकभूमि राजस्थान और भारत की भौगोलिक सीमा में घिर कर नहीं रह गयी है। वह अनादि काल और अनन्त देश में व्याप्त है। यह संकेत भी पद-पद पर हमें मिलते है।

लोक और साहित्य दोनों के अध्येता के लिए डा० मनोहर शर्मा ने बहुत सी सामग्री इन निबन्धों में प्रस्तुत कर दी है और प्रत्येक में उनके विशद अध्ययन, गहरी पैठ और साहित्यिक सामर्थ्य की छाप है। प्रत्येक निबन्ध हमें लोकसाहित्य के गहन अध्ययन में प्रवृत्त होने के लिए भी प्रेरित करता है।

जयपुर
२१-७-७१.

सत्येन्द्र

लोके वेदे च–१

इस विषय में पहिले विस्तारपूर्वक एवं विविध उदाहरण सहित चर्चा की जा चुकी है कि जो कथासूत्र भारतीय जन-समाज में वैदिक युग में प्रचलित थे, वे आगे चलकर पौराणिक काल में विकसित हुए और उनको अत्यधिक लोक-सम्मान प्राप्त हुआ। परन्तु यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हुई। वे ही कथानक जनसाधारण में अनेक प्रकार से रूपान्तरित होकर अब भी चालू हैं[1] और उनकी खोज निकालना अत्यधिक आवश्यक होने पर भी साधारणतया सरल नहीं है क्योंकि उनमें स्थानीय वातावरण के कारण विशेष रूप से परिवर्तन हो गया है। यहाँ इस विषय पर कुछ विस्तार से प्रकाश डालने की चेष्टा की जाती है कि जो रसमयी भावधारा वैदिक काल में भारतीय प्रजा में प्रवाहित थी वही आजकल गाए जाने वाले लोकगीतों में भी रमी हुई है। लेख में उदाहरण स्वरूप राजस्थानी लोकगीत प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

१—सूर्य वन्दना

संसार के लिये सूर्य अपार शक्ति का स्रोत है। पृथ्वी पर मानव जीवन का विकास भी इसी महान् शक्ति का फल है। सूर्य विश्व की प्रेरक शक्ति है। सूर्य संसार को गति प्रदान करता है। इसी शक्ति केन्द्र से हमें क्रिया-शीलता प्राप्त

---

1. द्रष्टव्य, वरदा (वर्ष २ अंक ४) में लेखक का 'लोके वेदे च' शीर्षक लेख।

होती है। सूर्य प्रकाश देता है, जीवन देता है एवं कर्म देता है। सूर्य प्रत्यक्ष देव है ('प्रत्यक्ष दैवतं भानुः परोक्षं सर्व देवताः')। सूर्य की किरणें अनवरत रूप से शक्ति का वितरण करती रहती है। गायत्री मन्त्र में बुद्धि को सत्पथ की ओर प्रेरित करने के लिए सविता से प्रार्थना की जाती है। हम सविता से ज्ञान का प्रकाश पाते हैं। सूर्यवंदना के मंत्रों से वेदवाणी महिमामय है :—

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥
तत्सूर्य्यस्य देवत्वन्तन्महित्व मद्ध्याकर्तोर्विततं सञ्जभार।
यदेदयुक्तहरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्यपाजः कृष्ण मन्यद्धरित सम्भरन्ति ॥
बराम्हाँ असि सूर्य्यंवडादित्य महाँ असि।
महस्ते सतोमहिमा पनस्यतेद्धा देव महा असि ॥
बट् सूर्य्यश्रवसा महा असि।

सत्रा देवमहाँ असि मह्नादेवानामसुर्य पुरोहितो विभुज्तोतिरदाभ्यम् ॥
श्रायन्त इव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रतिभागन्नदीधिम ॥
अद्या देवा उदिता सूर्य्यस्य निरहंसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मा महन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौ ॥
आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेनसविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
(यजुर्वेद ३३/३९–४३)

राजस्थानी लोकगीतों में सूर्य भगवान सम्बन्धी गीत बड़े ही महत्वपूर्ण है। उनके 'बोल' एवं 'सुर' दोनों ही अत्यन्त सरल एवं मधुर हैं। उदाहरण के लिये यहाँ एक गीत दिया जाता है[1] :—

उगियो उगियो के बरी गुहेल्यो ए,
उगियो राजा कासिब जी को पूत,
गुहेल्यो ए उगियो राजा कासिब जी को पूत।

---

1. इस विषय में विशेष जानकारी के लिए वरदा (वर्ष २ अंक ३) में लेखक का 'राजस्थानी लोकगीतों में सूर्यभगवान' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाड़ँ चाली,
पछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरया है निसान।
काळा काळा के करो सुहेल्यो ए,
काळा राणी रँणादे का केस,
सुहेल्यो ए, काळा राणी रँणादे का केस।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाड़ँ चाली,
पछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरया है निसान।
तीखा तीखा के करो सुहेल्यो ए,
तीखा राणी रँणादे का नैण,
सुहेल्यो ए तीखा राणी रँणादे का नैण।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाड़ँ चाली,
पछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाल,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरया है निसान।
धोळा धोळा के करो सुहेल्यो ए,
धोळा राणी रँणादे का दांत,
सुहेल्यो ए, धोळा राणी रँणादे का दांत।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,

गाय गुवाड़ै चाली,
पंछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साय,
मुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
मुहेल्यो ए, सुसरां घर घोरया है निसान।
राच्या राच्या के करो मुहेल्यो ए,
राच्या राणी रैणादे का होठ,
मुहेल्यो ए, राच्या राणी रैणादे का हाथ।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाड़ै चाली,
पंछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साय,
मुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
मुहेल्यो ए, सुसरां घर घोरया है निसान।
पीळो पीळो के करो मुहेल्यो ए,
पीळो राणी रैणादे को गात,
मुहेल्यो पीळो राणी रैणादे को गात।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाड़ै चाली,
पंछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साय,
मुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
मुहेल्यो ए, सुसरां घर घोरया है निसान।
रातो रातो के करो मुहेल्यो ए,
रातो राणी रैणादे को होठ,
मुहेल्यो ए, रातो राणी रैणादे को होठ।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाड़ै चाली,
पंछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साय,

सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरया है निसान ।
हरियो-हरियो के करो सुहेल्यो ए
हरियो राणी रँणादे को वी'र,
सुहेल्यो ए, हरियो राणी रँणादे को वी'र ।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर वरणो,
गाय गुवाड़ँ चाली,
पछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब लाय,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरया है निसान ।
लीलो लीलो के करो सुहेल्यो ए,
लीलो राणी रँणादे को सोक,
सुहेल्यो ए, लीलो राणी रँणादे को सोक ।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाड़ँ चाली,
पछीड़ा मारग चाल्या,
नेम धरम सब लाय,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरया है निसान ।

इस गीत की पहली कड़ी का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है—
वह उगा, वह उगा, इस प्रकार सहेलियो, क्या कह रही हो ?
राजा कश्यप का पुत्र उदित हुआ है,
हे सहेलियो, राजा कश्यप का पुत्र उदित हुआ है ।
वह उदित होते समय प्रकाश के रंग वाला होता है,
वह अस्त होते समय सिंदूर के रंग वाला होता है ।
गाएँ 'गुवाड़' की ओर चल पड़ी है,
पक्षी अपने मार्ग में उड़ चले है,
सब लोग अपने नियम एवं धर्म से युक्त हो रहे है,
हे सहेलियो, पिता के घर आनन्द का थाल बज रहा है,
हे सहेलियो, श्वसुर के घर आनन्द का नगारा बज रहा है ।

यहां प्रभात कालीन वातावरण का सरल एवं स्वाभाविक चित्रण है। लोकगीतों में दाम्पत्य-जीवन की राग रहती है। इस गीत में आगे सूर्य के विविध रंगो का वर्णन करते हुए उनकी पत्नी रंणादे (राणी) के रूप सौंदर्य की महिमा गाई गई है। गीत की प्रत्येक कडी के साथ 'टेक' की पूरी 'दुस-रावण' है, जो इसमें अमृत-संचार करती है। साथ ही गाने वाली महिला अपनी 'पीहर' ('बाबुल वर बाज्या है थाल') एवं 'ससुराल' ('सुसरा घर घोरचा है निसाण') सब प्रकार से सम्पन्नता की भी कामना करती है।

असल मे सूर्यवन्दना का यह लोकगीत भारतीय प्रजा की वेदकालीन परम्परा की पवित्र देन है। वैदिक युग मे भारतीय जनसाधारण मे सूर्यवंदना का पूरा प्रचार था। यह कार्यक्रम यहां के लोकजीवन का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। आर्य जाति में यही संस्कार अब भी काम कर रहा है। इसी पवित्र धारा मे रसमग्न होकर राजस्थान मे यह जनगीत गाया जाता है जो सर्वथा स्वाभाविक है।

२—धरती माता

अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त (१२/१/१-६३) मे पृथ्वी की अत्यन्त प्रशस्त रूप मे वन्दना की गई है। साथ ही इस स्तोत्रगान में संस्कृति के विकास का अनुपम विवरण भी है। मातृभूमि का ऐसा स्तुतिपाठ अन्यत्र मिलना कठिन है। जन्म देने वाली माता के समान धरती माता भी हमारा सब प्रकार से पोषण एवं कल्याण करती है। इसलिये अत्यन्त श्रद्धा तथा गौरव के साथ मंत्रद्रष्टा ऋषि ने कहा है—"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः" (१२) अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूं। भारतीय जन-साधारण मे यही भाव यथावत् भरा हुआ है। राजस्थान मे प्रातःकाल पलंग (या खटिया) से उठ कर पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व निम्न दोहा कहने की न जाने कब से प्रथा चली आ रही है:—

> धरती माता तू बड़ी, तो सम बड़ो न कोय।
> ऊठ सवारी पग धरां बैकुंठवासो होय॥

(हे धरती माता, तू सब से बड़ी है। तेरे से बड़ा अन्य कोई नहीं है। मैं प्रात काल उठ कर तुझ पर पैर रखता हूं। मेरे इस अपराध को क्षमा करना और मुझे बैकुंठ का वास देना।)

पृथ्वी सब को धारण करने मे समर्थ है। वह सब का पालन करती है और स्वयं क्षमाशील है 'क्षमा 'भूमिम्' (२६) राजस्थानी लोकसाहित्य में पृथ्वी का यह गुण अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक दोहा देखिए:—

धरती जेहा भरखमा, मरणा जेहि केठि ।
मज्जीठा जिम रत्तणा, ढई सु सज्जण मेळि ।।

वर्षाजल से पृथ्वी आप्लावित होती है और अपने पुत्रों को सब प्रकार के रस प्रदान करती है । वेदवाणी में इन्द्र को पृथ्वी का पति कहा गया है । पृथ्वी इन्द्र की पत्नी है— 'इन्द्र वृणाना पृथ्वी न वृत्रम्' (३७) अर्थात् पृथ्वी ने इन्द्र का वरण किया, वृत्रासुर का नहीं । 'भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे' (४२) अर्थात् पर्जन्य की पत्नी भूमि को प्रणाम है, जिसमें वृष्टि मेद की तरह भरी हुई है । राजस्थानी लोकगीतों में यही भावधारा प्रवाहित है । महिलाओं द्वारा कार्तिक-स्नान के दिनों में 'पथवारी' का गीत गाया जाता है । उसका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है:—

पथवारी माता पथ की ए राणी, भूल्या नै बाट बताय ।
भूल्या नै बाट बिछड़्या नै मेळो, बिछड़्यां नै ल्याय मिलाय ।
पथवारी तू सींचै धरती माता, ज्यू इन्दर घर आय ।
पथवारी तू सींचै रंणादे, ज्यू सूरज घर आय ।
पथवारी तू सींचै गायतरी, ज्यू बिरमा घर आय ।
पथवारी तू सींचै गोरादे, ज्यू ईसर घर आय ।
पथवारी तू सींचै गवनरी, ज्यू नाथो घर आय ।

इसी प्रसंग में राजस्थानी जनकाव्य 'निहालदे' की निम्न पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं—

तू क्यू ए धरती ए माता उणमणी जी,
थारै इंदर सरीसा, इंदर सरीसा भरतार,
तू क्यू ए धरती ए माता उणमणी जी ।
धरती कै सोवै जी हरिया जी कापडा जी,
को ईंद राजा सिर, इंद राजा भो सिर पिचरंग पाघ,
धरती कै सोवै जी हरिया कापडा जी ।

इस प्रकार पृथ्वी का मातृत्व भारतीय प्रजा के रोम-रोम में रमा हुआ है:—
'नमो नमो म्हारी धरती मात नै, बां पर माय उतरिया ।'

(जनकवि मस्त लिखमजी)

३–लोक जीवन का आदर्श

वेदकालीन भारत के लोकजीवन का आदर्श इस प्रकार उद्घोषित हुआ है:—

आब्रह्मन्, ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुः, वोढानड्वान, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा;
जिष्णुरथेष्ठाः; सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

(यजु० २२ / २२)

भारतीय लोकजीवन के इस वैदिक आदर्श में सब प्रकार के सामर्थ्यवान्, सौहार्दपूर्ण एवं सम्पन्न होने की कामना प्रकट की गई है । यह सुख-शान्ति भारतीय प्रजा ने काफी समय तक अनुभव की है । इस सम्बन्ध में 'पारिक्षिती गाथाएँ' विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य हैं: —

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्यां अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥
परिच्छिन्न क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन् ।
कुलाय-कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥
कतरत्तआ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जाया पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥
अभीव स्वः प्रजिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥

(अथर्व० २० / १२७ / ७–१०)

'(उस राजा परिक्षित् की, जो सारे जन का स्वामी है, जो देवतारूप है और मनुष्यों में बढ़कर है, सुन्दर स्तुति सुनो जो उसकी सब प्रजाओं को प्रिय है ।

'राज्य के आसन पर विराजते ही परिक्षित् ने, जो सबमें गुणवान है, ऐसा योगक्षेम किया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ।' यह वाक्य कुरुदेश का निवासी एक पति घर बसाते समय अपनी पत्नी से कहता है ।

'दही, दूधिया सत्तू और आसव इनमें से आपके लिए क्या लाऊँ ?' यह परिक्षित् राजा के राज्य में पत्नी अपने पति से पूछती है ।

गले से निगरता हुआ जो आकाश मे सूर्य की ओर जैसे बढ़ता है, ऐसे ही परिक्षित् राजा के राष्ट्र से सुख मे सब जन बढ़ते हैं।[1])

इन गाथाओ मे भारतीय गृहस्थ की सुख-समृद्धि का पति-पत्नी के वार्तालाप के रूप मे सुन्दर वर्णन किया गया है। गृहस्थ जीवन का ऐसा सम्पन्न एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण अतीव श्लाघ्य है। इसी प्रसग मे बौद्ध-कालीन भारत के धनिय नामक गोप के उद्गारों की ओर ध्यान जाता है जिनमे उसने अपने गार्हस्थ्य जीवन की सर्व-सम्पन्नता से निश्चित होकर वृष्टि के अधिष्ठाता इन्द्र को निर्भयतापूर्वक सम्बोधन किया है (सुत्तनिपात, उरगवग्ग, धनिय सुत्त)। भारतीय लोकजीवन का यही आदर्श अब भी राजस्थानी लोक-गीतो मे प्रकाशमान है, जो यहाँ के 'बधावा' गीतो मे द्रष्टव्य है। 'बधावा' गीतो की संख्या बडी है और ये गीत मागलिक अवसरो पर निश्चित रूप मे महिलाओ द्वारा गाये जाते हैं। इन गीतो मे लोकजीवन की सुख समृद्धि का अति प्राचीन भारतीय आदर्श व्याप्त है। उदाहरण के लिये एक बधावा गीत पर प्रकाश डाला जाता है —

> सुणो जी भँवर म्हानै सुपनो सो आयो जी राज,
> सुपनै रो अरथ बतावो जी राज।
> कहो ए गोरी थानै किण विध आयो जी राज,
> म्हे थानै अरथ बतावा जी राज।
> हस सरवर ढोला गू जत देख्यो जी राज,
> मानसरो म्हारो जळ भरयो राज।
> बागा मायला चपरया म्हे फूलत देख्या जी राज,
> फूल बीणे दोय बामणी राज।
> पोल्या मायला हसनी म्हे हीसत देख्या जी राज,
> हरी हरी दूब घोडा चरै राज।
> आगणिया रो थांब म्हे पूरत देख्यो जी राज,
> उपर कु भ कळस धरयो राज।
> महला मायलो दिवलो म्हे जगतो सो देख्यो जी राज,
> दिवलै री जोत सवाई जी राज।
> हस सरवर गोरी पी'र तुमारो जी राज,
> मानसरो थारो सासरो राज।

---

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका के विक्रमांक (पूर्वार्द्ध) से प्रकाशित डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत हिन्दी रूपान्तर साभार उद्धृत किया गया।

बागां मायला चपल्या ये वीर तुमारा जी राज,
फुलड़ा चीणं थारी भावजां राज ।
पोळ्यां मायला हस्ती देवर जेठ तुमारा जी राज,
हरी हरी दूब सुवासणी राज ।
आंगणियां रो चोक बो कँवर तुमारो जी राज,
कुंभ कळस थारी कुळ बहू राज ।
महला मांयलो दिवलो बो कंथ तुमारो जी राज,
दिवलैरी जोत सामवाणी जी राज ।
धन धन जी सुसरांजी रा छावा जी राज,
सुपनै रो अरथ भलो दियो राज ।
धन धन ए सासूजिया री जायी जी राज,
सुपनै रो अरथ भलो लियो राज ।
(रूप की रोळी सुहाग की पूड़ी जी राज,
पूत जण्यो म्हारो घर भरयो राज ।)

[हे प्रियतम, मैंने स्वप्न देखा है । आप उस स्वप्न का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

हे गोरी, तुमने क्या स्वप्न देखा है ? मैं उसका अभिप्राय प्रगट कर दूंगा ।

हे प्रियतम (ढोला), हंस की वाणी से गूंजता हुआ मैंने सरोवर देखा । इसके साथ ही जल से परिपूर्ण मानसरोवर भी मैंने देखा है ।

मैंने बाग मे चम्पक वृक्षों को फूले हुए देखा है । वहाँ दो कामिनियां पुष्पचयन करती हुई देखी ।

मैंने दरवाजे पर हाथी हींसते हुए देखे । इनके अतिरिक्त हरी दूब चरते हुए घोड़े देखे ।

मैंने आगन मे चोक पूरा हुआ देखा । उस चोक के ऊपर मागलिक कलश रखा हुआ था ।

मैंने महल मे दीपक को प्रकाश फैलाते हुए देखा । उस दीपक की ज्योति बहुत अधिक (सवाई) थी ।

हे गोरी, हंस की वाणी से गुंजायमान सरोवर तुम्हारा पीहर है और मानसरोवर तुम्हारी ससुराल है ।

बाग के चम्पक वृक्ष तुम्हारे वीर भाई हैं और पुष्पचयन करने वाली कामिनियां तुम्हारी भोजाइयां हैं ।

दरवाजे पर हीसने वाले हाथी तुम्हारे देवर जेठ हैं और हरी दूब 'सुवासणी' (बुआ, बहिन, बेटी, भानजी आदि) हैं। (वे घोडे इनके पति हैं)

आँगन का चौक पुत्र है और यह कलश तुम्हारी कुलवधु है।

महल का दीपक तुम्हारा पति है और उसकी ज्योति तुम स्वयं हो।

हे प्रियतम (श्वसुर के पुत्र), आपको बारम्बार धन्य है। आपने स्वप्न का अर्थ भली प्रकार समझा दिया है।

हे प्रियतमे (सज्जनो के घर की पुत्री), तुमको अनेकश: धन्यवाद है कि तुमने इस स्वप्न के अभिप्राय को हृदय मे धारण कर लिया है।

(तुम रूप की रोली एव सुहाग की पुडिया हो। तुमने पुत्र को जन्म देकर हमारे घर को सब प्रकार से सम्पन्न बना दिया है)

यह लोकगीत जिस मस्तिष्क की उपज है, निश्चय ही उसका सास्कृतिक ज्ञान एवं साहित्यिक प्रतिभा असाधारण रही है। इसमे भारतीय सस्कृति का सारतत्त्व समेट कर एकत्रित कर दिया गया है। पूरा गीत पति पत्नी के वार्तालाप के रूप मे है जिससे इसकी रसधारा अत्यन्त सुमधुर बन गयी है। गीत के पूर्वार्द्ध मे कुछ चित्रात्मक प्रतीक हैं और इसके उत्तरार्द्ध मे उन प्रतीको का स्पष्टीकरण किया गया है। प्रतीको का चित्र विधान अत्यन्त मनोरम है। हसवाणी से गु जता हुआ सरोवर, निर्मल जल से परिपूर्ण मानसरोवर, उद्यान के विकसित चम्पक वृक्षो के पास पुष्पावचयन करती हुई दो युवतियाँ, द्वार के पास हीसते हुए हाथी, हरी दूब के मैदान मे चरते हुए अश्व, आगन मे 'पूरे हुए चोक' पर स्थापित कलश, महल मे प्रकाश विकीर्ण करता हुआ दीपक आदि ऐसे चित्र हैं जिनकी मोहकता के सम्बन्ध मे जितना कुछ लिखा जाय थोडा है। ये चित्र भारत की विविध कलात्मक सामग्री मे अनेकश प्रकट हुए है और उनके उदाहरणों को यहाँ स्थानाभाव के कारण प्रस्तुत किया जाना सम्भव नही है।

गीत के प्रतीको मे भारतीय सस्कृति मानो अपने मुख से बोल रही है। हसवाणी से गु जायमान सरोवर एव निर्मल जल से पूर्ण मानसरोवर भारतीय प्रजा की ज्ञान साधना एव आध्यात्मिक उन्नति के प्रतीक हैं। गीत मे इनको गृहिणी का पीहर एव ससुराल बतलाया गया है। विकसित चम्पक और उनके पास पुष्पचयन करने वाली युवतियाँ भारत की श्री सम्पन्नता के द्योतक है। गीत मे इनको गृहिणी के आर्द्र-आवज कहा गया है। हीसते हुए हाथी एव घोडे स्पष्ट ही शक्ति एव सामर्थ्य के चिन्ह हैं। गीत मे इनको देवर जेठ तथा दामाद आदि का रूप दिया गया है। हरी दूब पुष्पवृद्धि का स्पष्ट लक्षण है, इसे बहिन-भानजी आदि के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

आंगन में 'पूरा हुआ चौक' और उस पर स्थापित कलश शुद्धाचरण एवं निष्ठा के परिचायक हैं। इनको गीत मे पुत्र एव पुत्रवधू बतलाया गया है। अन्त मे दीपक और उसकी ज्योति को पति एवं पत्नी कहा गया है जो स्पष्ट ही तपस्या एव लोकोपकार की ओर सकेत करते हैं। पारिवारिक सम्बधों को प्रकट करने के लिए ऐसे प्रतीकों का चुनाव करना असाधारण प्रतिभा का ही फल हो सकता है।

इस गीत के द्वारा एक ऐसे पारिवारिक आदर्श का चित्रण किया गया है, जिसमें ज्ञान एव शांति की उपासना है, जहाँ धनधान्य की परिपूर्णता है, जिसमे सामर्थ्य एव शक्ति भरपूर है, जो सर्वथा विशुद्ध एवं उन्नतिशील है और सब के ऊपर जिसका पारस्परिक सौहार्दभाव है। गीत के प्रतीकों का स्पष्टीकरण पारिवारिक सम्बन्धो के रूप में प्रस्तुत किये जाते समय, इन सब बातों की ओर अपने आप ध्यान चला जाता है। इस प्रकार प्रकट होता है कि इस गीत मे मानों स्पष्ट ही वेदमत्रो की आत्मा बोल रही है। गीत का स्वप्न भी एक प्रतीक ही है जो भारतीय लोकजीवन के आदर्श का द्योतक है। इस स्वप्न को सच्चा करने मे ही जीवन की सार्थकता है और यही भारतीय संस्कृति का अमर सदेश है। यह लोक गीत वस्तुतः भारत के समस्त लोक गीतों का राजा है।[1]

४. विराट भावना

भारतीय लोकमानस की विराट् भावना वैदिक काल मे इस प्रकार प्रकट हुई—

यदा त्वष्टा व्यतृणत्पिता त्वष्टुर्य उत्तर.।
गृह कृत्वा मर्त्यं देवा' पुरुषमाविशन्॥
पाप्मानो नाम देवताः ''''''॥

---

1. इस लोकगीत के मालवी रूपान्तर मे रनादेवी (सूर्य-पत्नी) अपने पति से स्वप्न में देखी हुई चौदह चीजो का अभिप्राय पूछती है। सूर्यदेव उसके स्वप्न का अभिप्राय इस प्रकार प्रकट करते हैं-"मानसरोवर पिता है, भरापूरा भडार श्वसुर है, बहती गंगा माता है, भरी-पूरी बावडी सास है, सावन की तीज बहिन है, कडकती बिजली ननद है, गोकुल का कन्हैया भाई है, तलफता बिच्छू देवर है, गुलाब का फूल पुत्र है, चमकता दीपक दामाद है, आंगन का केला कन्या है। बाड़ की बाँझ ईख दासी है, पीले वस्त्रवाली स्त्री सौत है और उगता हुआ सूर्य पति है।" कहना न होगा कि गीत के इस रूपान्तर मे कई चीजें ऊपर की मिल गई हैं, जिनके कारण इसका वातावरण सर्वथा सौहार्दपूर्ण नहीं रहा और इस प्रकार यह रूपान्तर य लोकजीवन के आदर्श तक नहीं पहुँच सका।

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥
भूतिश्च वा अभूतिश्च ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
आनन्दा मोदा प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ॥
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ॥
तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥
(अथर्व वेद ११/८/१८-२४/३०-३२)

यही विराट् भावना भारतीय लोकगीतों में अब भी प्रकट है। मालवा में गाया जाने वाला एक लोकगीत इस प्रकार है—

शुक्र की तारो रे ईश्वर ऊँगी रह्यो,
तेकी मस टीकी घड़ाव ।
ध्रुव की बादलई रे ईश्वर तुली रही,
तेको मस लहवाल रगाव ।
सरग की बिजलई रे ईश्वर कड़की रही,
तेकी मस मगजी लगाव ।
नव लख तारा रे ईश्वर चमकी रह्या,
तेकी मस छगिया गिलाव ।
चाँद सूरज रे ईश्वर ऊँगी रह्या,
तेकी मस टीको लगाव ।
वासुकी नाग रे ईश्वर देसइ रह्यो,
तेकी मस वेणी गुथाड ।
बडी हठ वालइ रे गौरल गोरड़ी ॥

जनपद (वर्ष १ अंक २) में इस गीत को रनुदेवी और उनके पति सूर्य के वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत किया है परन्तु इसके 'ईश्वर और गौरल' शब्दों से स्पष्ट होता है कि यह गीत 'शिव-पार्वती' के सवाद के रूप में है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस गीत के सम्बन्ध में लिखा है—"छः चौपाइयों के इस छोटे से लोकगीत मे स्वर्ग से पाताल तक के उपकरणों को गूँथ कर विराट् कल्पना की गई है। हठीली और वर्ण की गोरी पत्नी शुक्र नक्षत्र की बिन्दी, उत्तर दिशा की बदली की चूनरी जिसमें स्वर्ग मे कड़कने वाली बिजली की मगजी टकी है, नौलख तारों से चमकती हुई अंगिया जिसमे सामने चन्द्र और सूर्य की टिकुली जड़ी है, पहनने की अभिलाषा करती है, और यही नही, वासुकि नाग से अपनी वेणी गूँथना चाहती है। पर उत्तर मे पति इतना ही कहता है, 'हे गर्वीली गोरी, तू बड़ी हठीली है!' ससार मे किसी भी कवि के लिये इस प्रकार की उदात्त कल्पना गौरवास्पद समझी जायगी।"

इस लोकगीत में देव-दम्पत्ति का वार्तालाप है। मनुष्य अपने इष्टदेवों को अपना सा रूप देकर बड़ा सुख मानता है। लोकगीतों मे तो यह भावना जगह-जगह प्रकट हुई है। राजस्थी लोकगीतों में यही भावना जनसाधारण के सम्बन्ध मे अनेकश दृष्टिगोचर होती है। यहाँ के गीतो में विराट् कल्पना के चित्र बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। जनसाधारण के मन की इतनी ऊँची उड़ान वास्तव मे चित्ताकर्षक है। मानव हृदय का प्रकृति के साथ सदा मे एकात्म्य रहा है। इस अविच्छिन्न सम्बन्ध को लोकगीतो मे दिव्य प्रकाश मिला है। यहा राजस्थानी लोकगीतो के कुछ अंश इस विषय मे प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१)

बनड़ी थारै ए घूँघटिए रै कारणैं,
कजळी देसां रा हसती ल्याया,
म्हारी रजवण, घूँघटियो हीरां जड़यो,
हीरां ए जड़यो मोत्यां जड़यो,
थारै घँघटिए मैं सोळा सूरज ऊग्या,
म्हारी रजवण, घूँघटियो हीरा जड़यो,
थारै घूँघटिए मे चान्द पकास्या,
म्हारी रजवण, घूँघटियो हीरां जड़यो,
(दुलहिन, तुम्हारे घूँघट मे हीरे जड़े हैं,
तुम्हारे घूँघट मे हीरे जड़े हैं और मोती जड़े हैं,
तुम्हारे घूँघट में अनेकों सूर्य उदित है,
तुम्हारा घूँघट हीरों से जड़ा हुआ है,
तुम्हारे घूँघट मे अनेकों चन्द्रमा प्रकाशमान हैं,

तुम्हारा घूँघट हीरों से जड़ा हुआ है,
तुम्हारे इस घूँघट के कारण,
मैं तुम्हारे लिए बङ्गली देश के हाथी लाया हूँ ।)

(२)

हाँ जी बना, हमनी ये भल ल्याय,
घुड़ला रँ धमकं आज्यो जी,
हाँ हाँ जी करला रँ रळकं आज्यो जी ।
हाँ जी बनाँ, अम्मर को घाघरो सिमवाय,
धरती की लावण द्यायो जी,
हाँ हाँ जी, धरती की लावण द्यायो जी ।
हाँ जी बना, तारा की चूनड़ी रंगाय,
बिजळी की गोठ करायो जी,
हाँ हाँ जी, बिजली की गोठ करायो जी ।
(बना, तुम अपने साथ हाथी लाना,
तुम घोड़ों को नचाते हुए आना,
तुम ऊँटों को दौड़ाते हुए आना ।
मेरे लिए आकाश का घाघरा बनवाना,
उस घाघरे में धरती की लावण लगवाना,
बनाँ, उस घाघरे में धरती की लावण लगवाना ।
मेरे लिए तारों की चूनड़ी तैयार करवाना,
उस चूनड़ी के बिजली का गोठ करवाना,
बना, उस चूनड़ी के बिजली का गोठ करवाना ।)

(३)

मुलतान आन मेरे ल्याइए ।
हमनी भी ल्याइए बीरा, घुड़ला भी ल्याइए,
तो डोलां रँ दमकं आइए ।
अम्मर बरणो बीरा, ल्याइए घाघरो,
तो धरती की लावण लगाइए ।
तारा बरणी बीरा, ल्याइए चूनड़ी,
तो बिजली की कोर लगाइए ।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस गीत के सम्बन्ध में लिखा है—"छ: चौपाइयों के इस छोटे से लोकगीत मे स्वर्ग से पाताल तक के उपकरणों को गूँथ कर विराट् कल्पना की गई है। हठीली और वर्ण की गोरी पत्नी शुक नक्षत्र की बिन्दी, उत्तर दिशा की बदली की चूनरी जिसमे स्वर्ग में कड़कने वाली बिजली की मगजी टकी है, नौलख तारों से चमकती हुई अगिया जिसमे सामने चन्द्र और सूर्य की टिकुली जड़ी है, पहनने की अभिलाषा करती है, और यही नही, वासुकि नाग से अपनी वेणी गूँथना चाहती है पर उत्तर मे पति इतना ही कहता है, 'हे गर्वीली गोरी, तू बड़ी हठीली है' ससार मे किसी भी कवि के लिये इस प्रकार की उदात्त कल्पना गौरवा समझी जायगी।"

इस लोकगीत मे देव-दम्पत्ति का वार्तालाप है। मनुष्य अपने इ को अपना सा रूप देकर बडा सुख मानता है। लोकगीतों मे तो य जगह-जगह प्रकट हुई है। राजस्थी लोकगीतों मे यही भावना जन के सम्बन्ध मे अनेकश दृष्टिगोचर होती है। यहाँ के गीतों मे विर के चित्र बड़े ही महत्वपूर्ण है। जनसाधारण के मन की इतनी वास्तव में चित्ताकर्षक है। मानव हृदय का प्रकृति के साथ स रहा है। इस अविच्छिन्न सम्बन्ध को लोकगीतो में दिव्य यहा राजस्थानी लोकगीतो के कुछ अश इस विषय मे प्रस्तुत

(१)

बनड़ी थारै ए घूँघटिए रै कार
कजळी देसां रा हसती ट
म्हारी रजवण, घूँघटियो हीरा
हीरा ए जड़यो मोत्यां
थारै घूँघटिए मैं सोळा
म्हारी रजवण, घूँघटियो
थारै घूँघटिए मे
म्हारी रजवण, घूँघ
(दुलहिन, तुम्हारे

लोके वेदे च–२

भारतीय लोकसाहित्य की परम्परा अति प्राचीन है। विविध वैदिक प्रसंग पुराणों में विकसित होकर प्रकट हुए हैं। वेदों में मानव जीवनयात्रा के लिए जो मार्ग प्रदर्शित किया गया है, पुराणों में उसी पथ का समुचित अनुसरण करने वाले चरित्र चित्रित हुए हैं। इस प्रकार पुरातन एवं उच्च सिद्धान्तों ने सजीव चित्रों का रूप धारण करके जीवन और ज्योति का प्रकाशन किया है जो सर्व साधारण के लिए बड़ा उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। इससे हमारे पुराणों का गौरव बहुत ऊँचा हो जाता है। परन्तु यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हुई। अति प्राचीन अनुश्रुतियाँ भारत के लोक जीवन में प्रवेश करके यहाँ की प्रजा के लिए पथप्रदर्शन का कार्य भी करती चली आ रही हैं। युग युग के इस संक्रमण से स्थान एवं काल के अनुसार भारतीय अनुश्रुतियों में रूप परिवर्तन भी हुआ है। जो स्वाभाविक है। यही कारण है कि भारत के एक निरक्षर प्रजाजन के ज्ञानकोष में भी कई वस्तुएँ ऐसी प्राप्त होती हैं जिनका सम्बन्ध वेदकालीन परम्परा से जुड़ा हुआ मिलता है। यह भारतीय जनजीवन एवं लोकसंस्कृति की महिमा है। विषय को स्पष्ट करने के लिए आगे कुछ उदाहरण इस दिशा में प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमें राजस्थान की लोककथाओं पर विचार किया गया है।

१–पुरूरवोर्वशी

स्वर्गीय प० सूर्यकरणजी पारीक ने अपनी "राजस्थानी वातां"

लोके वेदे च–२

भारतीय लोकसाहित्य की परम्परा अति प्राचीन है। विविध वैदिक प्रसंग पुराणों में विकसित होकर प्रकट हुए हैं। वेदों में सफल जीवनयात्रा के लिए जो मार्ग प्रदर्शित किया गया है, पुराणों में उसी पथ का समुचित अनुसरण करने वाले चरित्र चित्रित हुए हैं। इस प्रकार पुरातन एवं उच्च सिद्धान्तों ने सजीव चित्रों का रूप धारण करके जीवन और ज्योति का प्रकाशन किया है जो सर्व साधारण के लिए बड़ा उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। इससे हमारे पुराणों का गौरव बहुत ऊँचा हो जाता है। परन्तु यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हुई। अति प्राचीन अनुश्रुतियाँ भारत के लोक जीवन में प्रवेश करके यहाँ की प्रजा के लिए पथप्रदर्शन का कार्य भी करती चली आ रही है। युग युग के इस सक्रमण में स्थान एवं काल के अनुसार भारतीय अनुश्रुतियों में रूप परिवर्तन भी हुआ है। जो स्वाभाविक है। यही कारण है कि भारत के एक निरक्षर प्रजाजन के ज्ञानकोष में भी कई वस्तुएँ ऐसी प्राप्त होती है जिनका सम्बन्ध वेदकालीन परम्परा से जुड़ा हुआ मिलता है। यह भारतीय जनजीवन एवं लोकसंस्कृति की महिमा है। विषय को स्पष्ट करने के लिए आगे कुछ उदाहरण इस दिशा में प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमें राजस्थान की लोककथाओं पर विचार किया गया है।

१–पुरुरवोर्वशी

स्वर्गीय प० सूर्यकरणजी पारीक ने अपनी "राजस्थानी बातां"

नामक पुस्तक में 'पाबूजी री बात' प्रकाशित की है। इस बात (कहानी) में पाबूजी के जन्म का प्रसंग निम्न रूप में दिया गया है—

"धांधलजी मोरेवे गये सू थे उठे सू पोह फाटे पाटण रे तळाव पाळ उतरिया। पछे तळाव ऊपर अपछरा उतरी। ताहरां धांधल अपछरा देख नै उठे अपछरा नू धावड़ (पकड़) राखी। ताहरां अपछरा बोली। कही—वडा रजपूत, तैं बुरी कीवी, म्हे अपछरा नै माणसी न हुवी। तठे धांधलजी कही, जु तू म्हारे घर-वास रह। तद अपछरा बोली। कही—जे थां म्हारो पीछो संभाळियो (देखा) तो हू (मैं) था सू परी जाईस। ताहरा धांधल कही—थारो पीछो कोई संभाळा नहीं। ऐ बोल (वचन) कर नै रह्या अर उठे पाटण सूं चालिया सू अठे कोळू आया।

"अठे आगे धणो घोरधार राज करै। ताहरां धांधळ धणे दाम तो न गयो अर कोळू आय गाढा दोहिया तठे रहता अपछरा रे पेट रा दोय टावर (बच्चे) हुवा एक बेटी तैं रो नाव सोना, अर एक बेटो तैं रो नाव पाबू। तद अपछरा रो मोहल (महल) एकायंत कीयो। उठे अपछरा रहै। धांधळजी अपछरा री वारी रे दिन आप जावै। तद एके दिन धांधळजी विचारी, जू देखा अपछरा कही हुती जू म्हारो पीछो संभाळ मती, सू आज तो जाय देखीस, देखा का सू करै छै।

"तद पाछले पोहर रो धांधळ अपछरा रे मोहल गयो। ता पछे आगे अपछरा सिंघणी हुई छै अर पाबू महजे सिंघणी नू चूंघे (स्तनपान करना) छै। तद धांधळ दीठो। इतरे अपछरा फेर आपरो रूप कीयो, पाबू मिनख हुवो। तद धांधळ मोहल भीतर गयो। ताहरा अपछरा कही—राज, म्हा था सू कवल (प्रतिज्ञा) कियो हुतो जू जेही दिन पीछो संभाळियो तेही दिन हूं था सू परी जाईस, सूं आज दिन था पीछो संभाळियो छै सू म्हे जावा छा। इतरी कह नै अपछरा उडी सू पाधरी (सीधी) आकाश चढ गई। धांधळ देखतो ही ज रह्यो।"

इस प्रसग मे धांधळजी राठौड़ तथा अप्सरा के परिणय और इसके फलस्वरूप पाबू एव सोना के जन्म का जिक्र है। यह देवता और मानव का सम्बन्ध है। मनुष्य और अप्सरा के विवाह की यही कहानी राजस्थान के अन्य विश्रुत चरित्रों के साथ भी जुड़ी हुई है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए राजस्थानी लोक-कथा का सार और प्रस्तुत किया जाता है—

किसी समय धापू (जिला चूरू) राजा धध के विशाल एवं शक्तिशाली की राजधानी था। वहाँ राजा धध का एक रमणीक उद्यान था जिसमें

पास का बना हुआ एक सरोवर था[1]। इस उद्यान में किसी भी बाहरी आदमी का प्रवेश निषिद्ध था। एक बार पता नहीं किस प्रकार एक साधु ने आकर वहाँ अपना आसन जमा लिया। माली लोग उसके प्रभाव से डर गए। साधु को उद्यान में उसे कई दिन निकल गए। न वह किसी के पास जाता था और न कोई उसके पास आता था। ऐसी स्थिति में मालीगण चकित था कि आखिर साधु खाता क्या है?

अन्त में साधु के सम्बन्ध में पूरी सूचना राजा धघ को दी गई। राजा ने भी साधु के लिए कोई विशेष आज्ञा नहीं दी। वह स्वयं रात के समय साधु के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए उद्यान में पहुंचा और कुछ दूरी पर एक पेड़ के पीछे छिप कर बैठ गया। साधु अपने आसन पर ध्यान में लीन बैठा था। आधी रात का समय हुआ और उस स्थान पर प्रकाश फैल गया। आकाश से एक विमान आकर साधु के सामने उतरा। उसमें से कुछ अप्सराएँ निकली और एक बड़ा सा थाल लेकर साधु के सामने रख दिया। साधु थाल में से भोजन करने लगा और अप्सराएं स्नान करने के लिए सरोवर में चली गई।

राजा छिपे तौर पर सब लीला देख रहा था। अब वह साधु के सामने उपस्थित हुआ और उसके चरण छुए। साधु ने अपने थाल में से कुछ उठा कर राजा को भी खाने के लिए दिया। राजा ने वह पदार्थ अपने मुख में डाला। उसने ऐसा स्वादिष्ट भोजन आज तक कभी नहीं खाया था। यह स्वर्गीय पदार्थ था। राजा धन्य हो गया कि उसकी राजधानी में ऐसी विभूति ने पधारने की कृपा की है। वह साधु के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ा रहा। साधु ने राजा से पूछा—बच्चे, और तुम्हारी क्या इच्छा है? राजा ने निवेदन किया—महाराजा यदि आपकी कृपा है तो इन अप्सराओं में से एक मुझे अपनी रानी के रूप में प्राप्त हो। साधु ने उसे कहा कि यदि सरोवर में स्नान करते समय वह उनके वस्त्र ले ले तो उसे अप्सरा मिल सकती है। राजा तत्काल वहाँ से सरोवर पर गया और आँख बचाकर अप्सराओं के वस्त्र उठाकर साधु के पास ले आया।

स्नान के बाद अप्सराएँ सरोवर से निकली तो उनको अपने वस्त्र नहीं मिले। वे भीगे कपड़ों में साधु के पास आई। वहां राजा उनके कपड़े लिए हुए बैठा था। परन्तु साधु के प्रभाव से वे राजा को कुछ भी नहीं कह सकी।

---

1. इस समय आबू एक छोटा सा गांव है और उसके पास कावाणी नामक एक तलाई भी है।

साधु ने राजा की इच्छा उनको कह सुनाई। अन्त मे तय हुआ कि राजा अपनी इच्छानुसार उनमे से किसी एक का हाथ पकड़ ले और वही उसकी रानी होकर रह जायेगी। राजा जिस अप्सरा को सर्वश्रेष्ठ समझ कर उसके पास जाता, वही कुरूप प्रकट होती। अन्त मे उसने आँखें बन्द करके किसी एक अप्सरा का हाथ पकड़ लिया। वही राजा के पास ठहर गई और अन्य सभी अपने वस्त्र लेकर विमान से आकाश मे उड गईं। अप्सरा ने राजा के सामने यह शर्त रखी कि बिना सूचना दिये वह कभी भी उसके महल मे कभी प्रवेश नही करेगा। राजा ने यह शर्त स्वीकार की और वह अप्सरा रानी को लेकर अपने महल में आ गया। दूसरे दिन साधु भी राजकीय उद्यान छोड़कर चला गया।

अप्सरा रानी का महल अलग था। राजा शर्त के अनुसार उसके पास जाता इस प्रकार काफी समय निकल गया और उसके एक पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्र का नाम था 'हरस' और पुत्री का नाम था 'जीण'।

एक दिन राजा ने अपने मन मे सोचा कि अप्सरा रानी की शर्त के रहस्य का पता लगाना चाहिए और वह बिना पूर्व-सूचना दिए उसके महल मे चला गया। राजा ने वहाँ देखा कि एक सिंहनी लेटी है और दो बच्चे उसका स्तनपान कर रहे है। राजा को देखते ही सिंहनी अप्सरा के रूप मे बदल गई और बच्चो ने भी मानवाकृति धारण कर ली। अप्सरा रानी ने राजा से कहा—आज मेरी शर्त टूट गई है, अत: मैं अपने स्थान को जा रही हूं। उसने तत्काल अपने दोनो बच्चो को उठाया और आकाश मे उड गई। राजा घघ देखता ही रह गया।

अप्सरा ने कुछ दूर जाकर एक पर्वत शिखर पर 'हरस' को छोड़ दिया और दूसरे पर 'जीण' को रख दिया। इस समय वह गर्भवती भी थी। उसने अपने पेट का शिशु निकाला और उसे एक अन्य पर्वत-शिखर पर छोड दिया। फिर अप्सरा आकाश मे उड गई। समय पाकर राजा घघ की ये तीनों अप्सरा गर्भ-सभूत सतानें ही "हरस का भैरव" "जीणमाता" एव "आमावरी" के नाम से लोक-पूजित हुईं।[1]

अप्सरा और मानव के सम्बन्ध की इन प्रणय-कथाओ मे निम्न बातें विशेष ध्यान देने की हैं।

१. स्वर्ग की अप्सराओं का पृथ्वी के सरोवर मे स्नान के लिए आना।

---

1. इस विषय की जानकारी के लिए वरदा के प्रथम वर्ष का चतुर्थ अंक दृष्टव्य है।

२. किसी प्रकार वशीभूत होकर अप्सरा का मनुष्य की पत्नी बन कर रहना स्वीकार करना।
३. अप्सरा और मनुष्य के परिणय के लिए कुछ शर्तें का रखा जाना।
४. इस परिणय के फलस्वरूप संतान का पैदा होना।
५. किसी कारण से शर्त का टूटना और फिर अप्सरा का स्वर्ग लौट जाना।
६. अप्सरा का निर्मोही होना एवं मनुष्य का मोह-ग्रस्त रहना।
७ अप्सरा से उत्पन्न हुई मानव संतान का लोक-प्रतिष्ठित एवं जन-सम्पूजित होना।

असल मे अप्सरा और मनुष्य के प्रणय की ये राजस्थानी लोक-कथाएँ "पुरूरवा एव उर्वशी" की प्रेमकथा के रूपान्तर हैं जो हमारे देश मे अति प्राचीन काल से लोक प्रचलित है। ऋगवेद (१०·९५) मे इस प्रणय–कथा की चर्चा है। इसी प्रकार यह प्रसग शतपथ ब्राह्मण (६.१) मे भी उपस्थित है। परन्तु विष्णु पुराण मे यह प्रेमकथा विकसित रूप मे दी गई है, जिसका सार निम्न प्रकार से है–

नृपति पुरूरवा ने अप्सरा उर्वशी के रूप-माधुर्य पर मुग्ध होकर उससे प्रणय की याचना की। उर्वशी स्वय पुरूरवा पर मुग्ध थी परन्तु उसने नृपति का पत्नीत्व स्वीकार करने के लिए कुछ शर्तें प्रस्तुत कीं। पहली शर्त यह थी कि *राजा उसके साथ के दो मेषशिशुओं (मेमनों) को उसकी शय्या से कभी* अलग नहीं कर सकेगा। दूसरी शर्त राजा उसके सामने कभी नग्न रूप में प्रकट नहीं होगा। तीसरी शर्त यह कि वह सदैव घी का ही भोजन करेगी। पुरूरवा ने उर्वशी की सभी शर्तें स्वीकार करली और वे दोनों पति पत्नी के रूप मे रहने लगे।

इस प्रकार कुछ समय बीता। परन्तु गधर्वों को यह प्रणय पसन्द न था। उन्होंने एक रात छल से एक मेष-शिशु का अपहरण कर लिया। इस पर उर्वशी ने कातर पुकार की। पुरूरवा तत्काल अपनी शय्या से उठ कर दौड़ा। इस समय वह नग्न था विश्वावसु ने आकाश मे तीव्र प्रकाश फैला दिया और पुरूरवा उर्वशी के सामने नग्न रूप मे प्रकट हुआ। इस प्रकार उनके सहवास की शर्तें टूट गईं और उर्वशी गधर्वलोक को चली गई।

उर्वशी के विरह मे पुरूरवा बड़ा दुःखी हुआ और वह वन वन भटकने लगा। एक दिन उसने कुरुक्षेत्र के सरोवर मे अन्य अप्सराओं के साथ उर्वशी

को देखा। राजा को शोक सतप्त देख कर उसने कहा, "राजन् मैं गर्भवती हूं। एक वर्ष बाद यहाँ आना। मैं तुम्हे पुत्र भेंट करूँगी।" इस पर प्रसन्न होकर पुरूरवा अपनी राजधानी लौट आया। समय पर उर्वशी ने उसे 'आयु' नामक पुत्र भेंट किया। इसके बाद राजा ने गधर्वों की कृपा से अग्निस्थाली प्राप्त की और यज्ञ द्वारा उर्वशी को भी सदा के लिए पा लिया।

भारतीय पुराण ग्रन्थों मे देव और मानव के व्यावहारिक सम्बन्ध के विवरण भरे पडे है। जिस प्रकार स्वर्ग के देव पृथ्वी पर आते हैं उसी प्रकार पृथ्वी के मानव सशरीर स्वर्ग भी जाते हैं और वहाँ से लौटकर आते हैं। देव विशिष्ट शक्ति सपन्न प्रकट किये गये हैं। इसी प्रकार अनेक मानव भी दैवी शक्ति से विभूषित चित्रित किये गये है। मनुष्यो ने अपने विशेष गुणों से देवपद प्राप्त किया है। इसी प्रकार देवो का भी धरती पर मानव जीवन विताना बतलाया गया है। ऐसी स्थिति मे देव और मानव की श्रेणियाँ आपस मे घुल-मिल गई हैं, तो फिर अप्सरा और मनुष्य के प्रणय मे आश्चर्य ही क्या है।

पुरूरवा और उर्वशी विषयक पुराण कथा मे रूप के आकर्षण की प्रधानता है। महाकवि कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशीयम्' नामक त्रोटक मे इस कथानक को नाटकीय तत्वों से सँवार सजा कर प्रस्तुत किया है।

मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि वह अपने आराध्य व्यक्ति को देवपद पर प्रतिष्ठित करता है। पाबूजी राजस्थान मे लोक-देवता के रूप मे पूजे जाते हैं। अत. उनकी "दिव्य-उत्पत्ति" की कल्पना की गई है। इसी प्रकार 'हरम' और 'जीरा' को जनश्या मे मानव-सतान बतला कर फिर उनका देवपद प्राप्त करना प्रकट किया गया है। फलत उनकी "दिव्य-उत्पत्ति" की कहानी भी चल पडी है अपने आराध्य पुरुषो का साधारण मनुष्य के समान उत्पन्न होना भक्तो के लिए सतोष का विषय नही होता।

ऊपर दी गई राजस्थानी लोक-कथाओं मे पत्नी रूप मे रहने वाली अप्सरा द्वारा सिंहनी का रूप धारण करना नरसिंहो के प्रदेश राजस्थान का स्थानीय रग है। यहाँ की कई लोक-कथाओं मे सत महात्मा भी अपने एकान्त-वास मे सिंह रूप धारण करते हुए प्रकट किये गए हैं।

पुरूरवोर्वशी के वेदकालीन प्रणय प्रसग ने पुराण कथा मे विकसित रूप धारण किया और आज भी राजस्थानी जनता के मुख पर विराजमान होकर यह रसधारा प्रवाहित कर रहा है। उर्वशी तो अप्सरा ही है। पुरूरवा कभी धावन बन जाता है कभी अन्य नाम धारण करता है और कभी वह अन्य

कथा नाटक के रूप में सामने आता है। इसी प्रकार दम्पति की पुत्र 'आयु' कभी 'पाडू' के रूप में प्रकट होता है तो कभी वह 'हास' कहलाता है।

नारी की रति नर पूरी नहीं कर सकता। यह एक विकट समस्या है। परन्तु नारी से सन्तान प्राप्त करके नर सन्तोष मानता है। रूप का आकर्षण क्षणिक है परन्तु उसका फल मधुर है। नर और नारी की समस्या का यही स्पष्टीकरण इस पुरूरवा कथा में प्रकट हुआ है। इस प्रकार प्रेय के सामने श्रेय की महत्ता का यशोगान करने वाली यह परम्परा अति प्राचीन काल से भारत में चली आ रही है। यही भारतीय संस्कृति के प्राणों का संगीत है।

२-यक्ष-प्रश्नोत्तरी

महाभारत में कथा है कि एक बार पाण्डवों को वन में भारी प्यास लगी और आस पास कहीं जल सुलभ न था। अतः सभी पाण्डव एक स्थान पर बैठ गए और छोटे भाई को किसी जलाशय की तलाश करने के लिए भेजा गया। इधर-उधर भ्रमण करने के बाद उसे एक सरोवर मिला। वह स्वयं अत्यधिक प्यासा था, अतः पानी पीने के लिए तैयार हुआ। इसी समय पास के पेड़ से आवाज आई, "मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना यदि जल पीने का साहस किया तो इसी समय निर्जीव होकर गिर पड़ोगे।" इस चेतावनी पर तृषार्त ने ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप जल पीते ही वह गिर पड़ा। कुछ समय बीतने पर युधिष्ठिर ने अपने दूसरे भाई को जल की तलाश में फिर भेजा। उसके साथ भी वही घटना हुई जो पहले भाई के साथ हुई थी। इसके बाद दो भाई और वहीं आए और उसी प्रकार निर्जीव होकर सरोवर के पास गिर पड़े। अन्त में युधिष्ठिर स्वयं उनकी खोज करता हुआ उसी स्थान पर आया। चारों भाई निर्जीव अवस्था में वहाँ प्रत्यक्ष हुए। उसे भी वही आवाज दी। युधिष्ठिर ने देखा कि निकटस्थ वृक्ष पर बैठा हुआ एक बगुला बोल रहा है। वह प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तैयार हो गया। बक रूपधारी यक्ष ने युधिष्ठिर से कई प्रश्न किए और उसे सबका यथोचित उत्तर मिला। फलस्वरूप उसके मृत भाई सजीव हो गए। यक्ष ने युधिष्ठिर की परीक्षा ली थी। इससे पूरा सन्तोष हो गया। महाभारत का यह प्रसंग बड़ा महत्वपूर्ण है।

राजस्थान में पाण्डवों के सम्बन्ध में विविध लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। इनमें महाभारत के मूल-सूत्र रूपान्तरित हो गए हैं। परन्तु इस प्रक्रिया ने कथानक में भारी रोचकता भर दी है। समय पाकर लोककथा पर भी वातावरण का प्रभाव पड़ता है। यक्ष-युधिष्ठिर की यही कथा राजस्थानी जन-साधारण में नए ही रंग में प्रचलित है। आगे राजस्थानी लोक-कथा का सार रूप प्रस्तुत किया जाता है।

एक बार पाण्डवों को वन में बड़ी जोर तृषा (तीस) सताने लगी। आस-पास पानी प्राप्त न हुआ। वे एक पेड़ की छाया में बैठ गए। युधिष्ठिर ने अर्जुन को किसी कुएँ की खोज में भेजा। अर्जुन चला और काफी भ्रमण करने पर वह एक स्थान पर पहुंचा, जहाँ बीच में एक बड़ा कुआ था और उसके चारों कोनों पर चार कुएँ छोटे थे। उस समय बड़े कुएँ का पानी उफना (उभला) और इसमें चारों ओर के चारों कुएँ ऊपर तक जल से परिपूर्ण हो गए। इसके बाद चारों छोटे कुएँ भी उफने परन्तु बीच का बड़ा कुआ खाली ही रह गया। अर्जुन को यह दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु वह प्यासा था, अत. पानी के लिए आगे बढ़ा। इस समय अर्जुन को एक आवाज सुनाई दी—"यदि इन कुओं के रहस्य को स्पष्ट किए बिना पानी पीने की हिम्मत की तो अपने प्राणों से हाथ धो बैठोगे।" अर्जुन ने इस चेतावनी की कोई परवाह नहीं की और आगे बढ़ते ही वह प्राणहीन होकर धरती पर गिर पड़ा।

कुछ समय बीता। युधिष्ठिर को चिन्ता हुई। अतः भीम को भाई की खोज करने के लिए रवाना किया। वह आज्ञा मानकर चल पड़ा। उसने आगे चलकर देखा कि मार्ग के पास ही एक भैंसा खड़ा है। उसके दोनों ओर दो मुँह हैं और वह उन दोनों से ही चारा चरता है। इस पर भी वह बहुत दुबला (माडो) है। भीम को यह स्थिति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ परन्तु वह आगे चलने लगा। इसी समय उसे एक आवाज सुनाई दी—"यदि इस भैंसे के रहस्य को बताए बिना आगे कदम बढ़ाने की हिम्मत की तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।" भीम ऐसी चेतावनी पर ध्यान देने वाला कब था! वह आगे बढ़ा और तत्काल निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इसके बाद युधिष्ठिर की चिन्ता और भी बढ़ गई और नकुल को भाइयों की तलाश में भेजा गया। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि एक पका हुआ खेत है जिसके चारों ओर बाड़ की हुई है। वह बाड़ भीतर की ओर बढ़ती है और उस खेत को खाकर फिर यथास्थान आ जाती है। नकुल ने ऐसा होते वहाँ कई बार देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु वह आगे चलने लगा। इतने में ही उसे एक आवाज सुनाई दी—'यदि इस खेत और बाड़ के भेद को बतलाए बिना आगे बढ़े तो प्राणों से वंचित हो जाओगे।' उसने इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया और आगे कदम बढ़ाया कि निष्प्राण होकर धराशायी हो गया।

इसके बाद युधिष्ठिर की चिन्ता और भी बढ़ गई। आखिर उसने सहदेव को भेजा कि वह पहिले गए हुए तीनों भाइयों की तलाश करे। सहदेव

आज्ञा मानकर चला । कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि मार्ग में एक गाय ने बछिया को प्रसव किया और उसकी उसी समय जननी का स्तनपान करने लगी । सहदेव ने ऐसा दृश्य पहिले कभी नहीं देखा था कि गाय अपनी बछिया का दूध स्वयं पीती हो । वह चकित हो गया । परन्तु उसे जल्दी काम था, अतः वह आगे चलने लगा । इसी समय उसे भी एक आवाज सुनाई दी—'गाय और उसकी बछिया का भेद बताए बिना यदि आगे बढ़े तो तुम्हारे प्राण शरीर में नहीं रहेंगे ।' उसने इस चेतावनी पर विश्वास नहीं किया और आगे की ओर कदम बढ़ाते ही मर कर गिर पड़ा ।

चारों भाई एक के बाद एक चले गए परन्तु उनमें से कोई भी लौट कर नहीं आया । इससे युधिष्ठिर बड़ा चिन्तित हुआ और वह अपनी प्यास को भूलकर भाइयों की तलाश में निकला ।

सबसे पहिले युधिष्ठिर उन पाँचों कुओं वाले स्थान पर पहुंचा जहाँ महारथी अर्जुन निर्जीव होकर धरती पर पड़ा हुआ था । उन कुओं के उफनने की वही क्रिया युधिष्ठिर ने भी देखी । इसके बाद उसे यह आवाज सुनाई दी—'यदि इन कुओं का भेद तुम समझादो तो तुम्हारा भाई फिर जीवित हो सकता है ।' युधिष्ठिर ने उत्तर में कहा—'अब कलियुग आने में अधिक समय शेष नहीं है । उस युग में पिता अपने चार पुत्रों का भरण-पोषण कर देगा परन्तु फिर वे चारों मिलकर भी उसका गुजारा नहीं चला सकेंगे ।' उसी समय अर्जुन उठ खड़ा हुआ और वह दृश्य लुप्त हो गया ।

वे दोनों भाई आगे चले । थोड़ी देर बाद वे उस स्थान पर पहुंचे जहाँ दोनों ओर मुंहवाला दुबला भैंसा खड़ा था और उसके पास ही भीमसेन प्राणहीन होकर पड़ा था । यहाँ भी युधिष्ठिर को आवाज सुनाई दी—'यदि तुम इस भैंसे का भेद बतलादो तो तुम्हारा भाई जीवित हो सकता है ।' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'अब कलियुग आने वाला है । यह भैंसा उस युग की न्याय प्रणाली की प्रतिमूर्ति है जब वादी और प्रतिवादी दोनों से धन का अपहरण किया जाएगा परन्तु फिर [illegible] लों का जी नहीं भरेगा ।' उसी समय भीम उठ खड़ा हु[illegible] चले ।

थोड़ी [illegible] ग दृश्य दिखाई दिया जहाँ [illegible] ष्ठिर को आवाज सुनाई [illegible] करदो तो तुम्हारा भाई [illegible] दया—'यह कलियुग की [illegible] बनकर शोषण करेगा ।' [illegible] ।

थोड़ी दूर चलने पर अपनी बछिया को स्तनपान कराने वाली गाय दिखाई दी जहाँ सहदेव भी प्राणहीन होकर पड़ा हुआ था। यहाँ भी युधिष्ठिर को आवाज सुनाई दी—'यदि तुम इस गाय का रहस्य समझा सको तो तुम्हारा भाई जीवित हो सकता है।' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'अब कलियुग आने वाला है। उस युग में माता अपनी पुत्री का धन बड़े आनन्द के साथ खाएगी। अतः इस उसी स्थिति का परिचायक है।' उसी समय सहदेव जीवित होकर उठ खड़ा हुआ। अब वे पाँचों भाई फिर से मिल गए। पास ही उन्हें एक कुआँ दिखाई दिया, जहाँ जाकर सबने अपनी प्यास बुझाई और एक घड़ा जल से भर कर अपने साथ ले आए।

राजस्थानी लोककथा महाभारतीय कथा का परिवर्तित रूप है। इसमें महाभारत का यक्ष अथवा बगुला अप्रकट है, केवल उसकी आवाज ही सुनाई देती है। पुराणकथा में प्रश्न सीधे रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, जबकि इस कहानी में उनमें चित्रात्मकता भर दी गई है। किसी भी सिद्धान्त वाक्य को अधिक प्रभावशाली बनाने का यह एक सुन्दर उपाय है। इससे कुतूहल की जागृति हो जाती है और उसमें विशेष आकर्षण भर जाता है। किसी बात को स्पष्ट रूप से सीधे तौर पर न कहकर उसे रहस्य के पर्दे में छिपाकर उपस्थित करने की शैली भारत में प्राचीन काल से प्रचलित है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐतश मुनि का प्रलाप इसका उदाहरण है 'कौन गोरी का, कौन काली का, कौन लाल का दूध पी गया ? इससे पूछो, कहाँ पूछो, जो पढ़ा हो उससे पूछो।' इसके भीतरी और बाहरी दो रूप हैं। बाहरी रूप प्रकट है और भीतरी अर्थ इस प्रकार है—'प्रकृति की लाल, सफेद, काली गायें सत्व, रज, तम का दूध दे रही हैं। जो ज्ञानी पुरुष है, उससे इसका रहस्य समझो।' सिद्धों, नाथों एवं सन्तों की वाणियों में इस शैली का काफी प्रयोग हुआ है। राजस्थानी लोककथा में इस शैली को कथा में उतार कर अत्यधिक आकर्षक बना दिया गया है। उसमें एक के बाद एक चित्रपट सामने आता है, जो जबरन चित्त को अपनी ओर खेंच लेता है।

इन सब बातों के अतिरिक्त इस लोककथा में राजस्थान का वातावरण उपस्थित हुआ है जो स्वाभाविक है। सरोवर के स्थान पर कुए का प्रकट होना, इस कथन का एक निर्देशन है। राजस्थान में 'बाड़ खेत नैं खाय' और 'म्यावड़ी चू चैं जाई नैं' आदि बोल जनसाधारण में प्रचलित भी हैं।

यक्ष युधिष्ठिर संवाद की साहित्यिक महत्ता के संबंध में श्री वासुदेव-अग्रवाल ने अपने लेख 'गाहा और पल्हाया' (जनपद वर्ष १ अंक २) अच्छा प्रकाश डाला है। आगे उस लेख का उद्धरण दिया जाता है—

"अश्वमेध कर्मकाण्ड के अन्तर्गत 'कः स्विदेकाकी चरति' (यजुर्वेद २३/६, ४५) इत्यादि १८ मन्त्रों को ब्रह्मोद्य कहा गया है। वस्तुतः ब्रह्म शब्द यहाँ यक्ष का वाचक है। अथर्ववेद (१०/२/२८–३३) के मन्त्रों में स्पष्ट रूप से अपराजिता पुरी में रहने वाले ब्रह्म नामक यक्ष का उल्लेख है। अपराजिता पुरी को ही शान्तिपर्व (मोक्षधर्म, १७१/५२) में अवध्य ब्रह्मपुर कहा गया है जिसमें राजा (अर्थात् यक्ष) सुख से रहता है। केनोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म यक्षरूप में प्रकट हुआ। इन प्रमाणों के आधार पर वैदिक ब्रह्मोद्य के लिए ही लोक में 'यक्षप्रश्न' यह शब्द प्रचलित था। वस्तुतः यक्षपूजा का आवश्यक अंग प्रश्नोत्तर या 'बूझना' है। यक्ष प्रश्नों का सबसे अच्छा साहित्यिक उदाहरण महाभारत के वनपर्व में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद (अध्याय २९७) है, जिसमें १८ श्लोकों में प्रश्न और १८ में ही उनके उत्तर हैं। प्राय प्रत्येक श्लोक में मल्हीर (कुरु जनपद का गीत विशेष) की तरह ही ४ प्रश्न हैं। स्वयं महाभारतकार ने इस अंश को प्रश्न-व्याकरण (प्रश्नान् पृच्छतो व्याकरोषि, २९७/११) कहा है। प्रश्नों की बुझौवल का यक्षों से घनिष्ट संबंध था। आज भी लोक में यक्ष या ब्रह्म किसी के सिर आने पर प्रश्न पूछने की प्रथा है। महाभारत में यह यक्ष-प्रश्नोत्तरी और यजुर्वेद के ब्रह्मोद्य दोनों एक ही लोकसाहित्य के अंग थे, जहाँ से संहिताकार और महाभारतकार ने उनका संग्रह किया। इसका सबसे पुष्ट प्रमाण यह है कि यजुर्वेद के प्रश्न और उत्तर के दो मन्त्र (२३/९–४५ और २३/१०–४६) ज्यों के त्यों महाभारत के यक्ष प्रश्नों में हैं। उदाहरण के लिए —

कौन अकेला घूमता है ?
कौन पुन पुनः जन्म लेता है ?
जाड़े-पाले का इलाज क्या है ?
अरे बताओ, भारी थैला कौन-सा है ?

सूर्य अकेला घूमता है।
चंद्रमा पुन. पुनः जन्म लेता है।
अग्नि जाड़े-पाले का इलाज है।
अरे सुनो, भूमि बड़ा थैला है।

अथवा

कौन भूमि से भारी है ?
कौन आकाश से ऊँचा है ?

कौन वायु से शीघ्रतर है ?
कौन मनुष्यों से बली है ?
माता भूमि से भारी है ।
पिता आकाश से ऊँचा है ।
मन वायु से शीघ्रतर है ।
चिन्ता मनुष्य से बली है ।
ब्राह्मणों मे देवपन क्या है ?
इनमे भले मानुसों की बात कौन है ?
इनमे मनुष्यपना क्या है ?
इनमे कौनसी बात पाजीपन की है ?
स्वाध्याय इनका देवपना है ?
तप करते है, यही भले आदमियों की बात है ।
मर जाते है, यही इनका मनुष्यपन है ।
जब झगडने लगते है, यही पाजीपन है ।

इस प्रकार के प्रश्न और उनके उत्तर कुछ तो लोक के साधारण धरातल पर हैं, कुछ कुतूहल से भरे हुए वाक्‌चातुरी के उदाहरण हैं और कुछ मे थोड़ा ऊँचे उठकर वैदिक परिभाषाएं भी ले ली गई हैं ।

वनपर्व के यक्षप्रश्नो के अन्त मे फलश्रुति दी हुई है (२९८/२७-२८) *जो इस बात का निश्चित सकेत है कि यह प्रकरण महाभारत का मौलिक अग न था, कही से जोडा गया है । जिस स्रोत से लिया गया, वह लोक-साहित्य ही हो सकता है ।"*

यक्ष प्रश्नोत्तरी के तत्त्व और शैली अब भी राजस्थान के लोक प्रचलित दोहों मे वर्तमान हैं । यहाँ कुओं पर बारा लेते समय माली ऊँची आवाज मे विविध विषयो के दोहे गाते हैं । उनके कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

पहलो कूए मनाइये रे, जिए का लीजे नाम ।
मात पिता गुर आपणा रे, पाछै हर को नाम ॥
कूए जगत मे एक है रे, कूए जगत मे दोय ।
कूए जगत मे आपणो रे, कूए गयो है खोय ॥
राम जगत मे एक है रे, चांद सुरज है दोय ।
पाप जगत मे आपणो रे, पुन गयो है खोय ॥
कूए ज नागो लव करै रे, कूए ज जिन उठ स्नान ।
कूए ज सब रस ऊपजै रे, कूए ज सब रस सार ॥

सूरज तपसी तप करै रे, बिरमा नित उठ न्हाय ।
इन्दर सब रस उडलै रे, धरती सब रस खाय ।।
कुण सरोवर पाळ बिण रे, कुण रूख बिण डाळ ।
कुण पंखेरू पांख बिण रे, कुण मौत बिण काळ ।।
नैण सरोवर पाळ बिण रे धरम रूख बिण डाळ ।
जीव पंखेरू पांख बिण रे, नींद मौत बिण काळ ।।
कहा न अबला कर सकै रे, कहा न सिंधु समाय ।
कहा न पावक में जलै रे कहा काळ नही खाय ।।
पुत्र न अबला कर सकै रे, मन ना सिंधु समाय ।
धरम न पावक में जलै रे, नाव काळ नही खाय ।।

विशेष खोज करने पर इस प्रकार के दोहे राजस्थानी जन-साधारण में और भी मिल सकते है । इनमे प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रश्न और उत्तर है । ये दोहे पहेलियों के रूप मे भी पूछे जाते हैं ।

३. शुनःशेपोपाख्यान

ऐतरेय ब्राह्मण मे शुन शेप का उपाख्यान दिया गया है जिसका सार इस प्रकार है—

राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र प्राप्ति के लिए वरुण की आराधना की और यह सकल्प किया कि उसको जो पुत्र प्राप्त होगा वह उन्हे भेंट कर देगा। समय पर राजा के घर पुत्र पैदा हुआ और वरुण उसे लेने के लिए उपस्थित हुए। राजा ने विनय की अभी तो उसका नामकरण ही नही हुआ है, अत. देव कुछ समय ठहरें।' राजा ने पुत्र का नाम 'रोहित' रखा । जब फिर वरुण उसे लेने के लिए आये तो राजा ने प्रार्थना की, "अभी उसके दात नही निकले हैं, अतः देव कुछ समय रुकें।" जब रोहित के दात निकल आये तो राजा ने वरुण से निवेदन किया, "अभी तो यह कवच धारण करने योग्य नही है । जब बडा हो जाएगा तब आपके काम आ सकेगा । अत कुछ समय ठहरे।" जब रोहित कवचधर हुआ तो राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण के उपस्थित होने पर, अगले दिन आने के लिए कहा और उसी रात को उसने अपने पुत्र को वहा से भगा दिया । अगले दिन जब वरुण आए तो राजा ने कह दिया कि वह तो रात को ही न जाने कहा भाग गया । वरुण को क्रोध आया और राजा हरिश्चन्द्र जलोदर रोग मे पीडित हो गया । इस पर उसने अपने कुल गुरु वशिष्ठ से उपाय पूछा। वशिष्ठ ने परामर्श दिया कि राजा किसी

अन्य व्यक्ति का पुत्र प्राप्त करके यज्ञ करे, जिससे वरुण प्रसन्न हो। राजा ने इस कार्य के लिए अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप मोल लिया और यज्ञीययूप (खंभे) से बलि के लिए बांध दिया। शुनःशेप ने मृत्यु को पास आया जानकर वरुण से अत्यन्त करुण विनय की (ऋग्वेद मंडल १, सूक्त ५४–५५) फलस्वरूप शुनःशेप बंधन से मुक्त हो गया और विश्वामित्र ने उसे अपना पुत्र करके माना इसके बाद रोहित भी यह समाचार सुनकर अपने पिता के पास आ गया। फिर राजा हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ करके इन्द्रपद को प्राप्त किया।

इस कथा के पौराणिक विकास के सम्बन्ध में श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने अपने लेख "हरिश्चन्द्र के समान न कोई राजा हुआ न होगा" (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १ दिसम्बर १९५७) में इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"महाभारत सभापर्व में हरिश्चन्द्र का एक लघुचित्र है। उसके अनुसार हरिश्चन्द्र सप्तद्वीपा वसुमती के सम्राट् थे। उन्होंने राजसूय महायज्ञ पूरा किया, जिसके पुण्य से वह इन्द्र की सभा में शाश्वत पद के अधिकारी हुए (सभापर्व, ११।४८।६१)। गुप्तकालीन भागवत धर्म के आदर्शों के अनुसार इन्द्रपद प्राप्ति के लिए यह पर्याप्त कारण न था। उनके लेखे मानव के चरित्र गुण का ठोस आधार ही स्वर्ग या इन्द्रपद प्राप्त करा सकता है। अतएव उन्होंने हरिश्चन्द्र के विषय में इस नई कथा का निर्माण किया। हरिश्चन्द्र की यह कथा देवी भागवत (स्कन्ध ७, अ० १४–२७) में भी आई है। वहाँ दो हरिश्चन्द्र माने गये हैं—एक मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र (देवी भागवत ७/१७–२१) और दूसरे सत्यवादी हरिश्चन्द्र (६०/१५ ५५) मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र की कथा वैदिक काल से चली आती थी, जो ऐतरेय ब्राह्मण में विस्तार से दी हुई है। मार्कण्डेय पुराण में उसे छोड़ दिया गया है, किन्तु देवी भागवत के लेखक ने हरिश्चन्द्र के वैदिक आख्यान को रोचक ढंग से कहा है, किन्तु उतने से उसका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। अतएव उत्तरार्ध में सत्य की कसौटी पर पूरा उतरने वाले हरिश्चन्द्र की कथा दी गई है। मार्कण्डेय पुराण में कथा का जो रूप है, वही शब्दशः कुछ थोड़े हेरफेर से देवी-भागवत में लिया गया है, जैसा कि पुराणों का उपबृंहण करते समय होता था।"

राजस्थानी जनसाधारण में शुनःशेप का उपाख्यान अब भी विविध रूपों में कहा-सुना जाता है। परन्तु इन लोककथाओं में प्रस्तुत मूल कथा

के रूपान्तर विशेष रूप से विचारणीय हैं। आगे इनमे से कुछ चुनी हुई लोककथाओ को सार रूप मे उपस्थित किया जाता है।

१–किसी राजा ने काफी रुपया खर्च करके एक जोहड़ (तालाब) बनवाया परन्तु उस प्रदेश मे वर्षा न होने के कारण वह भर नही पाया। इससे राजा का चित्त बड़ा खिन्न हुआ और उसने पंडितो को बुलाकर जोहड़ के न भरने का कारण पूछा। पंडितो ने प्रकट किया कि राजा अपने पुत्र की जोहड़ मे बलि देवे तो वह भर सकता है। इसके लिए राजा तैयार नही हुआ और उसने और कोई उपाय पूछा। इस पर पंडितो ने प्रकट किया कि यदि राजा अपने पुत्र की बलि नही दे सके तो वह किसी का पुत्र मोल लेकर उसकी बलि देवे। इसके लिए राजा तैयार हो गया और उसने एक लड़का बलि देने के लिए मोल लेना तय किया। उसे एक दरिद्र-पीड़ित परिवार का मध्यम पुत्र मोल मिल गया। राजा ने बलि कर्म प्रारम्भ करने के लिए उस अर्थ-क्रीत बालक को जोहड़ के गर्भ मे बाँध दिया। इस समय उस लड़के की स्थिति बड़ी करुणापूर्ण थी। संसार मे उसका कोई रक्षक न था। अत उसने यह मत्र जपना प्रारम्भ किया—

राजा लोभी सागरा, मायत लोभी दाम।
जँवो सीगो को नही, जँवो सीगो राम॥

बालक की करुण पुकार पर भगवान ने उसे बन्धनमुक्त कर दिया और उसी समय आकाश मे बादल प्रकट हुए तथा वर्षा से जोहड़ उसी क्षण पूरा भर गया।

२–किसी सेठ ने प्रचुर अर्थ-व्यय करके एक जोहड़ बनवाया परन्तु वर्षा न होने के कारण उसमे पानी नही भरा। सेठ ने पंडितो को बुलाकर जोहड़ के भरे जाने का उपाय पूछा। पंडितो ने सेठ से कहा कि [illegible] इस पर अपने प्रथम पुत्र की या अपने प्रथम पौत्र की बलि [illegible] जोहड़ भरेगा। सेठ के पुत्र एक ही था परन्तु पौत्र [illegible] थे। [illegible] बड़े पौत्र की बलि देना तय किया। उसने सोचा कि [illegible] इस काम के लिए सहमत न हो, इसलिए उसे पीहर भेज दिया और पीछे से बलि[illegible] पूरा कर दिया। वर्षा हुई और जोहड़ भर गया। [illegible] ([illegible]) का पर्व निकट आया। इसके लिए बहू को उसके पीहर से बुलवाया गया। समय पर सेठानी और उसकी पुत्र-वधू सजधजकर जोहड़ पर पूजा करने गई। पूजा से पूर्व सास ने अपने [illegible] पौत्रों के [illegible] पर [illegible] तिलक कर दिया। पर बहू ने अपने सबसे बड़े पुत्र के लिए [illegible]। [illegible]

पुत्र क्या करता ? साथ चुप हो गई। इसी समय कीचड़ से सना हुआ सातवाँ पुत्र भी अपने भाइयों के पास आ बैठा। उसकी दादी ने उसके मस्तक पर भी रोली का मांगलिक तिलक कर दिया। बहू ने इसका भेद पूछा तो सास ने सब कुछ प्रकट कर दिया। वे आनन्द पूजा सम्पन्न करके घर लौट आए।

२-एक साल से बारहों समय निकल गया परन्तु एक गाँव में वर्षा नहीं हुई जिससे वहाँ के लोग एकदम घबरा गए। गाँव का चौधरी स्वयं बड़ा चिन्तित था कि आसपास सब जगह वर्षा होने पर भी उसका गाँव वंचित क्यों रह गया ? उसने पंडित को बुला वर्षा न होने का कारण पूछा। पंडितों ने प्रकट किया कि मनुष्य की बलि देने से उस गाँव में वर्षा हो सकती है। चौधरी सहमत हुआ। परन्तु बलिदान होने के लिए वह दूसरे किस आदमी से कहे ? अतः वह स्वयं ही इस काम के लिए तैयार हुआ। कुएँ पर हवन प्रारम्भ हुआ। हवन की विधि के अन्त में पंडितजी ने चौधरी के गले में एक धातु निर्मित नारियल डाली और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया। परन्तु ज्यों ही चौधरी ने प्राण त्याग किए आकाश में न जाने कैसे अचानक बादल प्रकट हो गए और वर्षा प्रारम्भ हुई। यही नहीं, वर्षा की बूँदें छूते ही चौधरी भी पुनर्जीवित होकर उठ बैठा और गाँव में सब प्रकार से आनन्द छा गया।

इसी प्रकार इन लोककथाओं के और भी विविध रूपान्तर राजस्थान में प्रचलित हैं। इन सब में शुनःशेप का उपाख्यान ही नाना रूपों में प्रकट हुआ है। वैदिक उपाख्यान में वरुण एवं यज्ञ क्रिया की प्रधानता मिली हुई है। उनके स्थान पर राजस्थानी लोककथा में जोहड़ बनवाए जाने का प्रसंग है। मरुप्रदेश में जोहड़ या कुआँ बनवाना यज्ञ करने के समकक्ष है। राजस्थान में जोहड़ या कुएँ का अपना नाम भी होता है। सामान्यतया उसके अन्त में *सागर* या *समुद्र* पद जुड़ा रहता है। इस प्रकार जोहड़ का न भरना और वरुण का असन्तुष्ट रहना एक ही बात है।

ऊपर दी गई पहली लोककथा वैदिक उपाख्यान से बहुत कुछ मिलती है। उसका राजा मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र का स्थानीय है। इसी प्रकार बलि दिए जाने के लिए जो लड़का खरीदा गया है वह शुनःशेप का ही दूसरा है। इस कथा में तो वरुण के प्रति की गई शुनःशेप की ५ वैदिक प्रार्थना जस्थानी दोहे में सिकुड़ कर आ गई हैं।

दूसरी लोककथा में वैदिक राजा एक सेठ के रूप में प्रकट हुआ है। वह अपने पौत्र की बलि दे देता है। इस प्रकार वह पौराणिक सत्यवादी

[illegible]
त्याग का एक ऊंचा आदर्श है। यही कारण है कि इन कथाओं में दिए
हुए पात्र जिन में जीवित होकर त्याग की महिमा का अनुरोध प्रकाशित करते
हैं। इसी प्रकार वैदिक उपाख्यान का अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति सदा
आगे भी बढ़ते रहते, बिना थकान आगे चल कर अपने जीवन को उन्नत करने
के लिए प्रयत्नशील रहता है, उसकी सफलता निश्चित होती है।

वैदिक उपाख्यान में देवराज इन्द्र ने राजकुमार रोहित को वन में जो उपदेश दिया, वह भारतीय साहित्य की एक अनमोल वस्तु है। उस उपदेश का एक अंश इस प्रकार है जिसमें उसका सार समाया हुआ है—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥
चरैवेति, चरैवेति ।

(सोने वाला कलि है, अंगड़ाई लेने वाला द्वापर है, उठ कर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला कृतयुग है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।)

इस गीत का अभिप्राय आध्यात्मिक है। लगभग यही भावधारा राजस्थान की मौखिक संतवाणी में कबीरदास के नाम से प्रवाहित है जिसमें अवगाहन करके यहाँ की साधारण जनता प्रेरणा प्राप्त करती है—

सांई कै नांव सं होय निस्तारा,
जाग जाग नर क्यूं सूत्या।
जागत नगरी में चोर न लागै,
मरद मारैंगा जमदूता।
सोवतड़ा नर गया चोरासी,
जागतड़ा नर जुग जीत्या।
रामानन्द को भणैं कबीरो,
मभलां मभलां वैं पूग्या॥

ऐतरेय ब्राह्मण मे जो जीवन संगीत विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है वही राजस्थानी सतवाणी में सार रूप मे प्रकट हुआ है—'सोने वाले व्यक्ति चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते हैं, जागने वाले जीवन मे सफलता प्राप्त करते हैं और चलने वाले धीरे-धीरे परमधाम मे पहुंच जाते हैं।'

लोकजीवन में पुराण-तत्व

भारत का पौराणिक इतिहास महामहिमामय है। इसको श्रवण करने का महत्व जनमेजय ने भावविभोर होकर इस प्रकार प्रकट किया है—"मैं अपने पूर्वजों का महान् चरित्र सुनते सुनते कभी अघाता नहीं।"[1] जनमेजय का यह सार-वचन भारतीय प्रजा के जीवन मे अब भी रमा हुआ है। यहाँ का एक निरक्षर व्यक्ति भी अपनी पुराण-कथाओ के कोष से ज्ञान धनी है। भारत की प्राचीन अनुश्रुतियाँ यहाँ के जनजीवन मे रम कर जनता का पथ-प्रदर्शन करती चली आ रही हैं। कुछ समय पूर्व 'लोके वेदे च' शीर्षक लेख (वरदा वर्ष २ अक ४) मे इस सम्बन्ध मे थोडा प्रकाश डाला गया था। यहाँ कुछ अन्य उदाहरणों द्वारा इस विषय को और भी अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की जाती है। इन उदाहरणो मे राजस्थानी लोक-कथाओं पर विचार किया गया है।

१—रुरु प्रमद्वरा

मुनिकुमार रुरु और प्रमद्वरा की प्रणय-कथा सुप्रसिद्ध है। श्रीमद्भागवत के अनुसार इस प्रेमोपाख्यान का साराश निम्न प्रकार है—

मेनका अप्सरा ने विश्वावसु से गर्भ धारण किया और समयानुसार उसने एक कन्या को जन्म दिया। वह उस कन्या को स्थूलकेश मुनि के

---

1. न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत्। (महाभारत आदि० ५६/३)

आश्रम में छोड़कर चली गई। मुनिवर स्थूलकेश ने उसका पालन पोषण किया और उसका नाम प्रमद्वरा रखा। समय पाकर प्रमद्वरा युवती हुई। वह असामान्य रूपवती थी। इस अवस्था में प्रमतिपुत्र रुरु ने उसे देखा और वे उसके रूप लावण्य पर मुग्ध हो गए। रुरु ने प्रमद्वरा के साथ विवाह करने का निश्चय किया और वे उसके लिए उन्मना रहने लगे। इस स्थिति का पता लगाकर प्रमति ने अपने पुत्र रुरु के लिए स्थूलकेश से प्रमद्वरा की याचना की। स्थूलकेश ने यह सम्बन्ध स्वीकार किया और शुभ मुहूर्त में कन्यादान करने का निश्चय किया। परन्तु संयोग ऐसा हुआ कि विवाह के पूर्व ही प्रमद्वरा को निद्रित अवस्था में एक सर्प ने डस लिया और उसका देहान्त हो गया। जब रुरु को इस घटना का पता चला तो वे भी आए और अपनी प्रियतमा को मृतक अवस्था में देखकर वे बुरी तरह विलाप करने लगे। अन्त में उन्होंने सोच विचार करके 'सत्य क्रिया' द्वारा प्रमद्वरा को जीवित करने का निश्चय किया और अपने पुण्य कर्मों को स्मरण करते हुए प्रमद्वरा को जीवित करने के लिए हाथ में लिया हुआ जल छोड़ा।[1] इस पर मुनिकुमार रुरु के सामने एक देवदूत प्रकट हुआ और उसने उन्हें समझाया कि प्रमद्वरा गतायु हो चुकी है अतः उन्हें किसी अन्य सुभागी से विवाह कर लेना चाहिए। परन्तु रुरु न माने और उन्होंने प्रमद्वरा के वियोग में प्राण-विसर्जन करने का निश्चय देवदूत के सामने प्रकट किया। मुनिकुमार की इस एकनिष्ठा से देवदूत परम प्रसन्न हुआ और उसने सुझाव दिया कि वे अपनी आधी आयु प्रमद्वरा को प्रदान करके उसे जीवित कर सकते हैं। रुरु ने ऐसा करना स्वीकार किया और तदनुसार प्रमद्वरा व्रतचर्या के प्रभाव से पुनर्जीवित हो गई। फिर शुभ मुहूर्त में रुरु और प्रमद्वरा की विवाह विधि सम्पन्न हुई।

कथा सरित्सागर में भी इस प्रणयोपाख्यान का प्रयोग हुआ है। वहाँ उदयन और वासवदत्ता की कहानी में विदूषक वसंतक के मुख से "क्रोध सर्प पर था परन्तु प्राण दुमुंहों के गए" कहावत के स्पष्टीकरण के लिए यह कथा कहलवाई गई है। कथा का रूप ऊपर लिखे अनुसार ही है। परन्तु उसमें देवदूत के स्थान पर आकाशवाणी का प्रयोग है। विवाहोपरान्त रुरु का सर्पों पर क्रोध भड़कता है और वे उन्हें मारना प्रारम्भ कर देते हैं पर

---

1. विमृश्यैवं रुरुस्तत्र स्नात्वाऽऽचम्य शुचिः स्थितः ॥
अब्रवीद्वचनं कृत्वा जलं पाणावसौ मुनिः ।
यन्मया सुकृतं किंचित्कृतं देवार्चनादिकम् ॥

साथ ही विषहीन दुमुहे सर्प भी मुनि की जानकारी न होने के कारण मारे जाते हैं। इस पर एक सर्प मुनि से निवेदन करता है कि वे विषहीन हैं और निर्दोष हैं। अन्य विषधर सर्पों के साथ उनके प्राण व्यर्थ ही लिए जा रहे हैं। इस प्रकार सांपों के भेद का ज्ञान करके रुरु सर्पहत्या बन्द कर देते हैं।

रुरु और प्रमद्वरा की पौराणिक कथा राजस्थानी जन साधारण में कुछ परिवर्तित रूप में प्रचलित है परन्तु उसमें नाम संकेत न होने के कारण उसकी पहिचान एकदम स्पष्ट नहीं है। लोक-कथाओं में रमे हुए ऐसे पौराणिक उपाख्यानों को अधिकाधिक प्रकाश में लाना आवश्यक है। आगे राजस्थानी लोककथा संक्षिप्त रूप में दी जाती है—

किसी राजा ने अपने नगर का जल संकट दूर करने के लिए एक बड़ा भारी तालाब बनवाया परन्तु उस तालाब में पानी ठहरता न था। राजा ने इसके लिए बहुत प्रयत्न किया कि उसमें पानी ठहरे परन्तु वह सफल नहीं हुआ। अन्त में उसने पंडितों को बुलवाया और उनसे तालाब में पानी ठहरे रहने का उपाय पूछा। पंडितों ने प्रकट किया कि राजा अपने परिवार में से किसी एक व्यक्ति की तालाब पर बलि देवे तो उसमें पानी ठहर सकता है। राजा ऐसा करने के लिए राजी हो गया।

प्रश्न उपस्थित हुआ कि राजा अपने परिवार में से तालाब पर किसकी बलि देवे? यदि राजा अपनी स्वयं की बलि देता है तो राज्य भंग होता है और रानी की बलि देने से राज्यलक्ष्मी के रुष्ट होने का भय था। यदि राजकुमार की बलि दी जावे तो राज्य का भविष्य अंधकारमय होता है। अब उस परिवार में केवल पुत्रवधू और थी। अतः राजा ने निश्चय किया कि पुत्रवधू को तालाब की भेंट कर दिया जावे।

अपने पिता के इस निश्चय की खबर राजकुमार के पास पहुँची। वह अपनी स्त्री के प्रेम में लीन था। अतः रात्रि के समय उसने अपनी प्रियतमा के सामने सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए प्रस्ताव रखा कि उनको उसी रात चुपचाप कहीं दूर देश में चला जाना चाहिए। तदनुसार उन्होंने प्र[illegible]

[illegible] पूजिता भवन्ती [illegible] ।
मदीयाराध्य[illegible] [illegible] ॥
[illegible] कर्तव्यं मम [illegible] ॥
यदि जीवेत् मे [illegible] ।
(श्रीमद्देवीभागवत २/९, ३३-३५)

सम्पत्ति साथ ली और दिन निकलने से काफी पहिले ही एक घोड़े पर सवार होकर वे दोनो अपने नगर से भाग निकले।

घोडा दिन भर दौड़ता रहा। सायंकाल वे अपने नगर से बहुत दूर निकल गए और एक जगल में किसी कुए के पास उन्होने विश्राम लिया। घोडे को चरने के लिए जगल मे छोड दिया गया और वे दोनों कुएँ के चबूतरे (चोपडे) पर सो गए। सयोग ऐसा हुआ कि रात को वहाँ एक साँप आया और उसने निद्रित अवस्था मे राजकुमार की पत्नी को डस लिया। प्रातःकाल राजकुमार उठा तो उसने अपनी प्रियतमा को मृतक अवस्था मे पाया। अब उसके शोक का कोई पार न था। अतः उसने जंगल में से लकड़ियां चुनकर एक चिता तैयार की और अपनी पत्नी के साथ स्वय भी जल मरने के लिए चिता पर बैठ गया।

इसी समय उधर से शिव पार्वती निकले और उन्होने अपनी प्रियतमा के साथ जलने के लिए तैयार उस राजकुमार को देखा। पार्वती ने शिव से हठ किया कि उस स्त्री को जीवित कर दिया जावे। शिव ने पार्वती को समझाया कि वह स्त्री जीवित नही हो सकती क्योंकि वह अपनी आयु समाप्त होने के कारण मरी है। परन्तु पार्वती ने अपना हठ नहीं छोड़ा, त्रियाहठ की गभीरता समझते हुए शिव ने एक उपाय बतलाया कि यदि साथ जलने को तैयार पुरुष अपनी आधी उम्र मृतक स्त्री को प्रदान कर देवे तो वह जीवित हो सकती है। इस पर पार्वती ने राजकुमार को सारी बात समझा दी। राजकुमार ने अपनी आधी उम्र पत्नी को देना सहर्ष स्वीकार कर लिया। तदनुसार राजकुमार ने जल हाथ मे लिया। उसने अपने पुण्य प्रभाव का स्मरण करके सूर्य की साक्षी से अपनी आधी आयु देते हुए मृत पत्नी को पुनर्जीवित करने के लिए पृथ्वी पर जल छोड़ा। उसकी वधू तत्काल जी उठी। उसके आनन्द का कोई पार न रहा। शिव पार्वती लुप्त हो गए और वे दोनो उसी समय घोडे पर सवार होकर वहाँ से चल पड़े परन्तु सारी घटना राजकुमार ने अपनी स्त्री से छिपाये रखी।

आगे चलने पर सायकाल वे एक नगर के निकट पहुँचे। राजकुमार ने एक कुए के पास अपनी स्त्री को ठहरा दिया और वह स्वय खाने का सामान लाने के लिये नगर मे गया। पास ही नटो का डेरा था। डे से राजकुमार की स्त्री की नजर एक नट-युवक पर पड़ी और वह के शरीर सौष्ठव पर मुग्ध होकर उसके पास चली गई। जब राजकुमार टकर आया तो वहाँ उसको अपनी स्त्री नही मिली। उसने इधर-उधर तलाश की तो वह नटो के डेरे मे बैठी हुई देखी गई। राजकुमार ने उसे

अपने साथ चलने के लिए कहा तो उसे उत्तर मिला कि वह तो उस नट की विवाहिता पत्नी है और उससे (राजकुमार से) उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा उत्तर सुनकर राजकुमार के होश उड़ गए और वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वहीं पड़ गया।

अगले दिन राजकुमार परिवाद लेकर उस नगर के राजा के सम्मुख उपस्थित हुआ कि एक नट ने उसकी स्त्री छीन ली है। इस पर राजा ने उस नट को और स्त्री को बुलवाया। स्त्री ने राजा के प्रश्न करने पर यहाँ भी यही प्रकट किया कि वह नट की विवाहिता पत्नी है। राजा ने नवागन्तुक से प्रमाण माँगा कि वह उस स्त्री को अपनी पत्नी किस आधार पर कहता है? राजकुमार अपना पूर्व वृत्तान्त वहाँ सुना नहीं सकता था क्योंकि वह घर से भागा हुआ था परन्तु उसके ध्यान में आया कि जो व्यक्ति अपनी आधी उम्र किसी को दे सकता है, वह उससे उसे वापिस भी ले सकता है। अतः उसने राजा से निवेदन किया कि उसके पास अकाट्य प्रमाण है। उसके लिए एक लोटा शुद्ध जल का मंगवाया जावे। उसी समय जल का लोटा हाजिर किया गया। राजकुमार ने जल अपने हाथ में लिया और पहिले की तरह ही अपनी दी हुई आधी उम्र वापिस लेने के लिए सूर्य की साक्षी से पृथ्वी पर जल छोड़ा। वह जल पृथ्वी पर गिरते ही अपने को नट की विवाहिता कहने वाली स्त्री तत्काल मर कर जमीन पर गिर पड़ी। दर्शकों के आश्चर्य की सीमा न रही। राजा ने नवागन्तुक की सत्यनिष्ठा की अत्यन्त प्रशंसा की।

वहाँ से चलकर राजकुमार सीधा अपनी राजधानी में आ गया। उसके पहुँचते ही बादल आए, अच्छी वर्षा हुई और तालाब ऊपर तक पानी से भर गया। अब उस तालाब का पानी समाप्त नहीं होता था।

इस लोककथा में तालाब भरने के लिए जो नर-बलि का प्रस्ताव है, वह एक कथानक रूढ़ि है जिसका अनेक राजस्थानी लोककथाओं में प्रयोग हुआ है। यहाँ यह भूमिका के रूप में प्रयुक्त हुई है। इस कहानी में मुनिकुमार रुरु के स्थान पर राजकुमार है और प्रमद्वरा की जगह उसकी स्त्री ने ली है। पौराणिक कथा में जो काम देवदूत करता है, कथा सरित्सागर में वही काम आकाशवाणी से लिया गया है। राजस्थानी लोककथा में शिव पार्वती उस काम को करते हैं। यह भी एक कथानक रूढ़ि है जो अनेक राजस्थानी लोककथाओं में देखी जाती है। पौराणिक कथा में 'सत्यक्रिया' का प्रयोग एक बार हुआ है जबकि राजस्थानी लोककथा में उसका प्रयोग दो बार देखा जाता है। इतना सब होने पर भी राज-स्थानी लोककथा में प्रमद्वरा के चरित्र का विलक्षण परिवर्तन हुआ है, जो विशेषरूप से विचारणीय है।

संस्कृत उपन्यास 'दशकुमार चरितम्' की मित्रगुप्त वाली कथा में एक ब्रह्म-राक्षस मित्रगुप्त से प्रश्न करता है कि क्रूर कौन है? इसके उत्तर में मित्रगुप्त कहता है कि नारी का हृदय क्रूर है और फिर वह अपने कथन के लिए 'धूमिनी' की कथा सुनाता है। उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

त्रिगर्त जनपद में धनक, धान्यक और धन्यक नामक तीन सगे भाई रहते थे जो अत्यन्त धनी थे। एक बार बारह वर्ष तक उनके प्रदेश में वर्षा नहीं हुई और दुर्भिक्ष का ऐसा प्रकोप हुआ कि अन्त में हार कर लोग पशुओं का तो प्रश्न ही क्या अपने बच्चों और स्त्रियों तक को मार कर खाने लगे। उन तीनों भाइयों ने पहले अपनी धनराशि समाप्त की और फिर अपने बच्चों को खा डाला। इसके बाद उन्होंने अपनी स्त्रियों को खाना प्रारम्भ किया। अन्त में सबसे छोटे भाई धन्यक की स्त्री की बारी आई, जिसका नाम धूमिनी था और जिसे वह अत्यधिक प्रेम करता था। वह अपनी प्रियतमा की हत्या नहीं देख सकता था। अतः उसने रात्रि के समय धूमिनी को अपने कंधे पर रखा और वह चुपचाप अपने घर से भाग निकला।

चलते चलते मार्ग में एक जंगल आया और वहाँ एक घायल तथा लँगड़ा आदमी पड़ा मिला। धन्यक ने उसे भी दया करके अपने कंधे पर रख लिया। आगे चलकर उसने एक कुटिया बनाई और वे तीनों उसमें रहने लगे तथा जंगली फलों एवं आखेट से उदर पोषण करने लगे। धन्यक ने उपचार करके लँगड़े व्यक्ति के घाव भी ठीक कर दिए और अब वह काफी मोटा तगड़ा हो गया।

एक दिन धन्यक शिकार के लिए गया हुआ था। पीछे से धूमिनी लँगड़े के प्रति कामातुर हुई। लँगड़ा आदमी अपने उपकारी के साथ दगा करने के लिए तैयार नहीं था। इस पर धूमिनी ने बल पूर्वक उसके साथ मनचाही करली। जब धन्यक लौटकर आया तो उसने धूमिनी से पीने के लिए पानी माँगा। धूमिनी ने सिर दर्द का बहाना किया और जब धन्यक पानी लाने कुएँ पर गया तो उसने चुपके से उसे धक्का देकर कुएँ में गिरा दिया। अब धूमिनी ने लँगड़े को अपने कंधे पर बिठा लिया और वहाँ से चल कर वह एक नगर में आगई। यहाँ वह लँगड़े पति की सेवा करने के कारण

रूप में प्रसिद्ध हो गई और उसके पास काफी धन हो गया।

से जंगल के कुएँ पर कुछ राहगीर पानी निकालने के लिए आए

धन्यक को बाहर निकाला। वह बेचारा कहीं का न रहा और

भीख माँगकर अपना पेट भरने लगा। कुछ दिनों बाद वह उसी नगर में पहुँचा जहाँ धूमिनी रहती थी। उसने धन्यक को पहिचान लिया और राजा से फरियाद की कि उसके पति को घायल करने वाला व्यक्ति उसी नगर में भीख माँगता फिरता है। राजा ने धूमिनी के वचन पर विश्वास कर लिया और बिना विचारे ही उस भिखारी के लिए प्राण-दण्ड की आज्ञा दे दी।

राजपुरुषों द्वारा पकड़े जाकर धन्यक मरघट पर प्राणदण्ड के लिए लाया गया। वहाँ उसने राजपुरुषों से प्रार्थना की कि कम से कम उस लँगड़े को उसके सामने बुलाकर उसके मुँह से तो ऐसा कहलवाया जावे कि उसने उसे घायल किया है। राजपुरुष इस बात को मान गए। और लँगड़ा वहाँ लाया गया। वह अपने उपकारी को दगा देने के लिए तैयार नहीं था, अतः उसने सारा हाल खोल कर साफ-साफ सुना दिया। यह खबर राजा के पास पहुँचाई गई। फल यह हुआ कि धूमिनी के नाक कान काटे गए और उसे कुत्तों का खाना बनाने के काम पर छोड़ा गया। धन्यक को राजा की कृपा प्राप्त हुई।

दशकुमार चरित की यह कहानी राजस्थानी लोककथा में किसी अंश में मिलती है। इस कथा की 'धूमिनी' राजस्थानी लोककथा की नायिका की प्रतिमूर्त्ति है। लोककथाओं में 'त्रियाचरित्र' विषयक कहानियों का एक बहुत बड़ा वर्ग है। राजस्थानी लोककथा में इसी वर्ग की कहानियों की रचना प्रकट हुई है, इसका नायक पुराणकथा के मुनिकुमार रुरु का दूसरा रूप है परन्तु इसकी नायिका प्रमद्वरा की प्रतिमूर्त्ति नहीं है क्योंकि इसका उद्देश्य नायक की सत्यनिष्ठा के साथ ही नायिका की कठोरता दिखलाना है। फिर भी इसमें 'सत्य-क्रिया' का दूसरी बार प्रयोग करवाकर 'सत्यमेव जयते नानृतम्' की उद्घोषणा की गई है, जो प्रबल प्रेरणामयी है।

ऋग्वेद से लेकर आज तक के भारतीय साहित्य में 'सत्य-क्रिया' के बहुसंख्यक उदाहरण भरे पड़े हैं।[1] लोककथाओं में तो इसके प्रयोग की और भी अधिक बहुलता है। यह सब सत्य की महिमा है। 'सच्च भगवं, लोगम्मि सारभूयं' अर्थात् सत्य ही भगवान है और वही इस लोक में सार-भूत है। जो कुछ के अतिरिक्त है, वह सब सारहीन है।

---

1. इस सम्बन्ध में डा० कन्हैयालाल सहल ने अनेक उदाहरण प्रदर्शित किए हैं। द्रष्टव्य, वरदा (२/२) तथा शोधपत्रिका (११/२)।

१. महाराजा रघु

महाराजा रघु का गुणगौरव परम प्रसिद्ध है। भारतीय संस्कृति के अन्यतम कवि कालिदास ने अपने रघुवश काव्य मे इनका और इनके वंश का चरित्रगान करके अपनी वाणी को धन्य किया है। राजस्थानी जनता में महाराजा रघु के सम्बन्ध मे जो कथा प्रचलित है उसे सक्षिप्त रूप मे यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :—

महाराजा रघु (रुघ) धर्मनीति से राज्य शासन का सचालन करते थे। वे नित्य नियम से प्रातःकाल उठकर जगल में जाते। वहाँ शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर तालाब (जोहड) मे स्नान करते और फिर भजन-पूजन करते। इसके बाद वे अपने साथ ले गए हुए जौ एक जगह बो देते और उस स्थान को तालाब के पानी से सींच देते। तदनन्तर वे अपने महल मे आकर राज्यकार्य मे लीन हो जाते। उनके शासन मे प्रजा सर्वथा सुखी एव सन्तुष्ट थी।

महाराजा रघु अगले दिन प्रातःकाल फिर उसी तालाब पर और उन्हे पहिले दिन बोए हुए जौ पके पकाए तैयार मिलते। वे उस अन्न का सग्रह करके साथ ले आते और अगले दिन के लिए उसी प्रकार जौ बो आते। इस प्रकार प्राप्त किए हुए अन्न से ही उनका और उनके परिवार का उदर पोषण होता था। वे राज्यकोष से कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे।

एक दिन नगर सेठ की स्त्री महारानी से मिलने के लिए महल में आई। महारानी ने उसका सम्मान किया परन्तु वह सेठानी के वस्त्राभूषण देखकर चकित हो गई। उसके शरीर पर तो एक भी गहना न था और उसके एक प्रजाजन की स्त्री का प्रत्येक अग सोने के अलकारो से सजा हुआ था। इस स्थिति मे महारानी के मन मे भी अलकार लोभ प्रविष्ट हुआ परन्तु उसने सेठानी के सामने कुछ प्रकट नहीं किया।

जब सेठ की स्त्री अपने घर लौट गई तो महाराजा रघु ने अन्तःपुर मे प्रवेश किया। महारानी ने उनके सामने अपनी मनोभिलाषा प्रकट की। यह उसे सहन न हुआ कि उनके एक प्रजाजन की स्त्री के सामने स्वय महारानी कुछ भी नही। महारानी ने सेठानी से भी अधिक गहने प्राप्त करने की इच्छा की। महाराजा ने उसे बहुत समझाया कि स्वर्णालङ्कार धारण करना सेठो का काम है, राजाओं के लिए ऐसा करना उचित नही। परन्तु महारानी ने अपना हट नहीं छोडा। अन्त में महाराजा ने अत्यन्त खेदपूर्वक उसकी इच्छा की पूर्ति करना स्वीकार किया और वे अन्तःपुर से बाहर चले आए।

महाराजा रघु ने दरबार में आकर एक राजपुरुष को बुलाया और उसे सन्देश देकर स्वर्णमयी लंका के राजा रावण के पास भेजा। सन्देश मे कहा गया था कि रावण यथेष्ट सोना उनकी राजधानी मे पहुँचाने का प्रबन्ध करे। राजपुरुष ने लंका मे जाकर रावण को अपने महाराजा का सन्देश दे दिया परन्तु लंकापति ने उस सन्देश की अवज्ञा करते हुए उसे खाली हाथ लौटा दिया।

राजपुरुष ने अयोध्या आकर महाराजा रघु को सारा समाचार सुना दिया। महाराजा ने उसे फिर वही सन्देश देकर लंका भेजा और साथ ही रावण को यह भी कहलवाया कि सोना न देने का विचार हो तो वह अपने दुर्ग (गढ) की प्रधान बुर्ज की ओर दृष्टिपात कर लेवे। राजपुरुष ने लंका पहुँच कर फिर रावण को वही सन्देश सुनाया और सोना न देने की स्थिति मे उसे अपनी बुर्ज की ओर नजर डालने के लिए कहा। रावण ने अपनी बुर्ज की ओर देखा तो वह झुकी हुई विदित हुई। अब उसे महाराजा रघु की शक्ति का पता चला। जो व्यक्ति इतनी दूर बैठे हुए ही बुर्ज को झुका सकता है वह पास आकर तो चाहे जो कुछ करने की सामर्थ्य रखता है। रावण ने यथेष्ट सोना अयोध्या पहुँचा देना स्वीकार किया और राज-पुरुष लौट आया।

अब महाराजा रघु के महल मे सोने का ढेर लगा हुआ था। महारानी उसे देखकर परम प्रसन्न थी। अगले दिन महाराजा प्रातःकाल तालाब पर गए परन्तु वहाँ से जौ साथ लिए बिना ही लौटे। महारानी ने उनसे भोजन बनाने के लिए जौ मांगे तो उन्होंने उत्तर दिया कि अपने प्रयोग के लिए सोना सचित करने वाले राजा की धरती फल नही देती। अब उनके लिए एक ही दिन मे जौ की खेती पक कर तैयार नही हो सकती।

इस लोककथा मे महाराजा रघु को राजस्थानी वातावरण मे प्रस्तुत किया गया है। महाराजा सगर विषयक राजस्थानी लोककथा मे भी ऐसा ही हुआ है जिसके सम्बन्ध मे विस्तृत लेख प्रकाशित करवाया जा चुका है।[1] जनसाधारण की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इससे कथा के पात्रो के साथ श्रोताओ की एक विशेष प्रकार की आत्मीयता स्थापित होती है। इस कथा

---

1. इस विषय की जानकारी के लिए शोधपत्रिका (भाग ६ अंक ३) मे लेखक का 'एक राजस्थानी लोककथा, राजा मुगट' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

उद्देश्य की सिद्धि भी सुन्दर रूप में हो गई है और महाराजा रघु का पुराण-वर्णित उदात्त चरित्र भी अक्षुण्ण रह गया है। यही इस लोककथा की सबसे बड़ी विशेषता है।

महाभारत पाँचवें वेद के रूप में समादृत है। राजधर्म के इसी तत्व को प्रकट करते हुए इसमें कहा गया है—

> कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा काल कारणम्।
> इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्।।
> (महाभारत शा० प० ६९/६)

३—नलोपाख्यान

नल और दमयन्ती की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके आधार पर काव्य रचना करके अनेक कवियों ने रसधारा प्रवाहित की है। राजस्थानी महिला समाज में यह साँपदा व्रत की कहानी के रूप में कही जाती है। उसका सारांश इस प्रकार है—

राजा नल की रानी ने 'साँपदा माता' के व्रत का डोरा[1] (नागो) धारण किया। राजा ने उस डोरे को यह कह कर तोड़ दिया कि रानी के गले में सूत का डोरा शोभा नहीं पाता, उसे तो सोने का डोरा धारण करना चाहिए। उसी रात को साँपदा माता ने नल को स्वप्न में कहा कि राजा ने उसके व्रत का डोरा तोड़कर उसका अपमान किया है, इसलिए वह उसके यहाँ से जा रही है। दूसरे दिन से राजा के सब काम बिगड़ने लगे और जल्दी ही उसका वैभव समाप्त हो गया। ऐसी स्थिति में नल ने अपनी राजधानी में ठहरना उचित नहीं समझा। उसने अपने महल में एक ब्राह्मण की लड़की को दीपक जलाने के लिये और एक नाई की लड़की को बुहारी निकालने के लिए नियुक्त कर दिया और फिर वह अपनी रानी सहित वहाँ से दुरवास पर देश के लिए चल पड़ा।

---

1. साँपदा व्रत के लिए होली के दूसरे दिन हल्दी में रंग कर एक डोरा गले में धारण किया जाता है और वह एक साल से अधिक समय तक रखा जाता है। अन्त में कहानी सुनकर वह डोरा खोला जाता है। इसके समय के दिन में एक बार ही भोजन किया जाता है। वह भी केवल एक ही अन्न का होता है। उसमें या तो गेहूँ होता है या जौ। राजस्थानी में इसी व्रत के अनुसार 'नागो लेलो' मुहावरा प्रचलित हो गया है जिसका अभिप्राय 'नियम धारण करना' होता है।

वे दोनों एक वन में पहुँचे। नल ने तीतर मार कर अपनी रानी को भूनने के लिए दिए और स्वयं जोहड़ पर स्नान करने के लिए गया। वहाँ नहा कर राजा ने अपनी धोती जोहड़ की पाळ पर सुखाने के लिए धूप में फैलाई। उसी समय यह धोती पाळ में प्रवेश कर गई और राजा देखता ही रह गया। उसने अपनी रानी को पुकार कर उसकी धोती का आधा हिस्सा लिया और उससे अपना तन ढँका। फिर वह भोजन करने के लिए आया तो रानी ने पीछे का विवरण सुनाया कि तीतर भून लिए गए थे मगर इस पर भी वे पुनर्जीवित होकर उड़ गए। इसके बाद राजा-रानी बिना कुछ खाए ही वहाँ से आगे चल पड़े।

आगे राजा को एक गूजरी मिली जो मटके में छाछ भर कर बेचने के लिए ले जा रही थी। राजा ने उससे कुछ छाछ माँगी। परन्तु गुजरी दो टूक इन्कार हो गई।[1] वहाँ से चल कर राजा अपनी बहिन के नगर में पहुँचा। बहिन ने भाई की स्थिति का पता लगवाकर उसे एक पुराने से मकान में ठहरा दिया। राजा रानी एक कमरे में विश्राम करने लगे। उस कमरे की खूँटी पर नल की बहिन का नौलखा हार टँगा हुआ था। पास की दीवार पर एक मोरनी चित्रित थी। वह चित्रित मोरनी जीवित होकर उस हार को निगल गई[2] और फिर उसी रूप में बदल गई। राजा-रानी ने यह घटना भी अपनी आँख से देखी, परन्तु हार की चोरी का दोष उन्हीं के सिर लगा और वे वहाँ से रवाना हो गये। वहाँ से चल कर वे दोनों किसी गाँव में एक खाती के घर में ठहरे। खतौड़ में खाती के काम करने के औजार पड़े थे। धरती ने उन सबको निगल लिया और यह चोरी भी नल के ही सिर पर आई। दोनों वहाँ से आगे बढ़े।

---

1. इस प्रसंग का एक दोहा लोक प्रचलित है—

गरबं मतना गुजरी, देख मटूकि छाछ।
नव सौ हाथी हीडता, नळ राज रँ बास॥

2 राजस्थान में इसी प्रसंग के आधार पर कहावत प्रचलित है—"के मोरडी हार निगळगी ?" इस घटना का एक रूपान्तर भी है जिसमें बहिन का चरित्र उज्ज्वल दिखाया गया है। बहिन अपने भाई के लिए हीरे-मोतियों से भर कर थाल भेजती है मगर वह सब नळ के छूते ही कंकर-पत्थर के हो जाते हैं। राजा-रानी उनको वहीं जमीन में गाड़ कर चले जाते हैं और फिर लौटते समय वह जमीन खोदी जाती है तो वे हीरे मोती के रूप में मिल जाते हैं।

अन्त में राजा ने किसी गाँव में पहुँचकर एक माली के यहाँ कुए पर बारा लेने की नौकरी शुरू की और रानी उसी माली की वाडी के फूल बाजार में लेजाकर बेचने लगी। उन्होंने किसी को अपना परिचय नहीं दिया। इस प्रकार समय निकलने लगा। एक रात 'सापदा माता' राजा नल को फिर स्वप्न में दर्शन देकर बोली—"राजा मैं तुम्हारे यहाँ फिर आना चाहती हूँ।" नल ने हाथ जोड़े और देवी के पैर पकड़ लिए। माता ने आदेश दिया—"कल बारा लेते समय पहले बारे में कच्चे सूत का 'कूकडिया' निकलेगा दूसरे बारे में हल्दी की गाँठ निकलेगी और इसी प्रकार तीसरे में जौ की देंहूगी (बाल) आएगी। तू उनमें अपनी रानी को मेरे व्रत का डोरा धारण करवा देना।" देवी के वचन के अनुसार ही सब काम हुआ और रानी ने व्रत का डोरा धारण किया।

अगले दिन उस नगर के राजा के कुछ घोड़े छूट कर भाग निकले। उनको पकड़ने की बहुत चेष्टा की गई परन्तु कोई उन्हें पकड नहीं सका। अन्त में नल ने उनको पकड कर राजा के सामने ला खड़ा किया[1]। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने नल का परिचय पूछा। नल ने पूरी आप बीती कह सुनाई। इस पर राजा ने अपनी बड़कँवार (बड़ी पुत्री) बेटी का नल के साथ विवाह किया और दहेज में बहुत धन दिया। कुछ दिनों बाद नल वहाँ से दोनो रानियो सहित अपनी राजधानी के लिए बड़े ठाठ से रवाना हो गया।

मार्ग में खाती का घर आया। नल को देखते ही धरती ने, पहिले वाले सारे औजार उगल दिए। राजा का एक कलक सिर से उतरा। इसके बाद बहिन का नगर आया। राजा ने उसी मकान में विश्राम किया। चित्रित मोरनी ने राजा की बहिन के सामने ही वह हार उगल दिया। यह कलक भी दूर हुआ। वहा से आगे बढ़ने पर वही गूजरी फिर मिली। उसने राजा को दही की मटकी भेंट की। फिर वे वन में पहुँचे। वे ही तीतर राजा के रथ पर अपने आप आकर बैठ गए और जोहड की पाळ ने धोती वापिस बाहर करदी। अन्त में नल अपनी राजधानी में आन पहुँचा। वहाँ उसने अपने महल में जिस ब्राह्मण की लड़की को दीपक जलाने के लिए तथा जिस नाई की लडकी को

---

1. कथा के इस प्रसग का एक रूपान्तर भी है जिसमे नगर के राजा की पुत्री का स्वयवर होता है और वहा नळ भी चला जाता है। राजपुत्री वरमाला नळ के गले मे डालती है। इसके बाद नळ पीछे की कहानी सुनाता है और राजा बडा प्रसन्न होता है।

बुहारी निकालने के लिए जाते समय छोड़ा था उन्होंने इतने समय तक अपना काम यथाविधि पूरा किया। राजा ने उनको काफी धन दिया और फिर अपनी तरफ से उन दोनों का विवाह कर दिया। नल के सब ठाठ वापिस ज्यों के त्यों जम गए और हर प्रकार का आनन्द हो गया।

राजस्थानी लोककथा मे प्राचीन कथानक काफी अश मे बदला हुआ है। लोककथा मे दमयन्ती के स्वयवर की चर्चा नहीं है और न इसमें रानी का नाम ही है। साथ ही इसमे नल की द्यूतक्रीडा का प्रसग भी नही है और उसके वैभवनाश का कारण कुछ और ही प्रकट किया गया है। इसके बाद के कई प्रसगो मे प्राचीन उपाख्यान की घटनाओ की झलक प्रकट हुई है परन्तु साथ ही कई प्रसगो की नई उद्भावना भी है। इतना होने पर भी इन सभी प्रसंगों मे एक ही मूलतत्व समाया हुआ है और वह है, अनहोनी घटना का घटित होना। लोककथा मे राजा-रानी का वियोग भी नही होता और ऐसी स्थिति मे दमयन्ती के पिता द्वारा उसका दूसरा स्वयवर किए जाने की घोषणा भी सामने नही आती है। नल की अश्वविद्या अवश्य प्रकट हुई है और वह एक रानी के स्थान पर दो रानियाँ लेकर राजधानी लौटता है। विपन्नावस्था मे जो अनहोनी घटनाएँ घटित हुई थी वे अपने आप ही सब बदल जाती हैं। राजा का कलंक पूर्णरूप से उतर जाता है।

लोककथा मे पूरा वातावरण राजस्थान का प्रकट हुआ है। इससे ऐसा मालूम होता है मानो नल यही का कोई राजा हो। महिला समाज की इस व्रतकथा का कथानक पुरुष वर्ग मे भी इसी रूप में प्रकट किया जाता है। कई स्थानो में इस कथा के डोरे को 'दशा का डोरा' भी कहते हैं। विक्रमादित्य और शनिदेव सम्बन्धी कथा मे मोरनी के द्वारा हार निगलने का प्रसंग इसी रूप में है। नल की बहिन द्वारा उसका अपमान किए जाने की घटना मे राजस्थानी कहावत 'होत की भाण अणहोत को भाई' चित्रित हुई है जिसके सम्बन्ध मे यहाँ अन्य लोककथा प्रचलित है। इसी प्रकार अनेक राजस्थानी लोककथाओ में राजा द्वारा किसी व्यक्ति के असाधारण गुणोत्कर्ष पर प्रसन्न होकर उसके साथ अपनी 'वडकँवार' बेटी का विवाह करने का प्रसग आता है।

प्राचीन उपाख्यान को राजस्थान मे व्रतकथा का रूप प्राप्त हुआ है, फलतः इसमें पुण्यमय वातावरण है और कथा मे जो अनहोनी घटनाएँ प्रकट हुई हैं उन सबका कारण स्पष्ट ही 'सापदा माता' का परोक्ष प्रभाव है। सापदा माता सम्पत्ति की देवी अर्थात् लक्ष्मी है। राजा नल के सम्बन्ध मे उसे राज्य-

लक्ष्मी कहा जा सकता है। प्राचीन कथा में नल की दुरावस्था का कारण उसका जुआ खेलना है जिससे उसकी सम्पत्ति समाप्त हो जाती है। राजस्थानी लोककथा में इसका कारण उसका धनगर्व प्रकट किया गया है। सच है, घमण्डी आदमी के पास धन नहीं टिकता और किसी भी प्रकार उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। धन की रक्षा के लिए विनम्रता आवश्यक है। लोककथा के नल में यह गुण नहीं है, अत: वह धन की देवी का अनादर करता है और फलस्वरूप उसे अपना घर तक छोड़ना पड़ता है। उस पर अनेक विपत्तियाँ एक के बाद एक पड़ती हैं और उसका गर्व मिट जाता है। अब उसे एक माली के अधीन रहकर बाग सेने का काम करने में भी एतराज नहीं। न जाने कितने लोगों ने परदेश जाकर अपनी भाग्यलक्ष्मी को जगाया है। यही हालत लोक-कथा के नायक की हुई है।

भारतीय प्रजा अति प्राचीन काल से 'सूत्र धारण' को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग समझती आई है। यह अनेक रूपों में धारण किया जाता है। रक्षासूत्र, वैवाहिक सूत्र एवं यज्ञोपवीत आदि इसके अनेक रूप हैं। स्पष्ट ही सूत्रधारण का अभिप्राय 'नियमधारण' करना है। इसे ही व्रत लेना भी कहा जा सकता है। राजस्थानी लोककथा का डोरा भी यही प्रकट करता है। उसे कथा की नायिका धारण करती है जो स्वयं गृहलक्ष्मी है। घर की सम्पन्नता उसके नियमधारण पर ही टिकी रह सकती है। गृहसंचालन में उसके पुण्य-प्रभाव का असाधारण महत्त्व है। कथा नायक उसका व्रत भंग करता है। अपनी गृहलक्ष्मी का व्रत भंग करके कोई व्यक्ति कैसे सुखी रह सकता है। कथानायक ने ऐसा ही किया और उस पर विपत्ति पड़ी। अन्त में उसका उद्धार भी गृहलक्ष्मी के व्रत धारण करने से ही हुआ जिसका पालन कथा-नायक ने स्वयं करवाया है।

लोक-कथा का नायक अपने घर से विपन्नावस्था में बाहर जाते समय एक विशेष व्यवस्था करता है। वह एक ब्राह्मण की लड़की को दीपक जलाने के लिए तथा एक नाई की लड़की को बुहारी लगाने के लिए नियुक्त करता है। नायक द्वारा की गई यह व्यवस्था विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जिस घर में स्वच्छता एवं प्रकाश रहता है उसमें सम्पन्नता अपने आप आती है। इसी बात को दूसरे रूप में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिस व्यक्ति के हृदय की शुद्धता एवं ज्ञान का प्रकाश रहता है, उसकी सभी क्रियायें फलवती होती हैं। यही इस लोक-कथा का नियम अथवा व्रत है।

राजस्थानी लोक-कथा एक अन्य प्राचीन कथा का भी स्मरण करवाती है जिसका सारांश इस प्रकार है.—

दानवराज प्रह्लाद अपने शील के कारण तीनों लोकों के वैभव के अधिकारी बन गए। आचार्य शुक्र की सम्मति से देवराज इन्द्र उनके पास ऐश्वर्य प्राप्ति का उपाय पूछने के लिए आए। इस समय देवराज ने ब्राह्मण का वेष धारण कर लिया था। अतः प्रह्लाद उनकी वास्तविकता जान नहीं पाए और उन्हें अपने साथ रखकर जीवन के व्यावहारिक रूप द्वारा शील की महिमा प्रकट करने लगे। कुछ समय बाद दानवराज ने ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र से वर माँगने के लिए कहा। देवराज ने उनसे उनका 'शील संचय' माँग लिया। दानवराज अपने वचन को कैसे पलट सकते थे ? उन्होंने स्वीकार किया और फल यह हुआ कि एक तेज पुञ्ज उनके शरीर से निकल कर देवराज की काया में प्रविष्ट हो गया। यह उनका शील था। इसी प्रकार उनके शरीर से धर्म, सत्य और बल तेजपुञ्ज के रूप में निकल कर इन्द्र के तन में समा गए। अन्त में दानवराज के शरीर से एक तेजपुञ्ज और निकला। यह तेजोमयी लक्ष्मी थी। उसने देवराज के शरीर में प्रवेश करते समय उनके ब्राह्मण वेष का भेद प्रकट कर दिया। इस प्रकार प्रह्लाद सर्वथा तेजहीन होकर ठगे से रह गये। फिर उन्होंने अपना शेष जीवन 'शील सचय' के निमित्त लगाया।

राजस्थानी लोक-कथा का नल गर्व के वशीभूत होकर लक्ष्मी से वंचित हो गया। और फिर उसने 'शील सचय' करना प्रारम्भ किया। यही उसके द्वारा की गयी 'स्वच्छता एव प्रकाश' सम्बन्धी व्यवस्था का रहस्य है। और यही इस राजस्थानी व्रतकथा का सार सदेश है।

४. कालधर्म

डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने अपने 'महर्षि व्यास' शीर्षक लेख में लिखा है[1]:—

"वेदव्यास के आध्यात्मिक दर्शन मे कालधर्म का बडा स्थान है। उनकी आँखों ने समंत पचक मे हुए कुरु पाडवो के दारुणनाश को देखा। बडे कुशाग्र-बुद्धि और कल्याणाभिनिवेशी व्यक्ति इच्छा रहते हुए भी उस क्षय को नही रोक सके। यह कालचक्र की ही महिमा है। कर्म के साथ मिलकर काल ही ससार में बहुत तरह के उलट फेर करता है (शा० २१३/१२) काल के पर्याय धर्म के सामने सब अनित्य ठहरता है। कभी एक की बारी, कभी दूसरे की।

1. द्रष्टव्य, कला और सस्कृति नामक ग्रन्थ, पृष्ठ ४२–४३।

महाभारत के ग्रन्त मे जो व्यक्ति स्त्री-पर्व को देखे, वह इसके सिवाय ग्रौर क्या कह सकता है।

न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्।
घटतापि चिरकालं नियन्तुमिति मे मतिः॥

कोई प्राणी कितनी भी कोशिश करे, दैव के रास्ते को नही रोक सकता। यह दैव या उत्कट काल विश्व का नित्य विधान है। इसी का नामान्तर सनातन ब्रह्म है। वेदव्यास मानव-जीवन की घटनाग्रो की ऊहापोह करते हुए उसके अन्तिम कारण की खोज मे *यही विश्राम लेते हैं।*"

इस उद्धरण के ग्रनुसार महाभारत मे सर्व साधारण को जो सार सदेश *दिया गया है यह भारतीय प्रजा के जीवन मे कितनी गहराई के साथ* रमा हुग्रा है, इस तत्व के स्पष्टीकरण के लिए यहाँ एक राजस्थानी लोककथा पर प्रकाश डाला जाता है, जो वीर ग्रर्जुन के युद्धोत्तर जीवन के सम्बन्ध मे कही जाती है। कथा इस प्रकार है—

महाभारत के युद्ध मे विजय प्राप्त करके पाण्डव राज्य के स्वामी हुए ग्रौर उस महा-विनाश के बाद जो कुछ शेष बचा था उसकी उचित व्यवस्था मे उन्होने ध्यान दिया। ग्रब समस्त राज्य मे महाराजा युधिष्ठिर की 'दुहाई' फिरती थी। इस प्रकार कुछ समय बीता।

एक दिन सायकाल श्रीकृष्ण ग्रौर ग्रर्जुन घूमने के लिए निकले। बीती हुई घटनाग्रो की चर्चा करते हुए दोनो मे यह विवाद उपस्थित हुग्रा कि ससार मे काल की प्रधानता है या मनुष्य की? श्रीकृष्ण ने प्रकट किया कि काल ही सर्वोपरि है। परन्तु ग्रर्जुन ने इस कथन का विरोध करते हुए कहा कि काल प्रधान नही है, मनुष्य उससे बलवान है। थोडी देर तक उत्तर प्रत्युत्तर चलता रहा, फिर दो मार्ग ग्राए। श्रीकृष्ण ने ग्रर्जुन से कहा, "मैं दायें मार्ग से जाता हू ग्रौर तुम बायें रास्ते से ग्राग्रो। थोडी दूर चलने पर ये दोनो मार्ग फिर ग्रापस मे मिल जाएँगे ग्रौर हम दोनो का साथ हो जायगा।" ग्रर्जुन ने ऐसा ही किया ग्रौर वह बायें रास्ते पर चल पडा। श्रीकृष्ण दायें मार्ग से ग्रागे बढ गये।

ग्रर्जुन ग्रपने रास्ते पर कुछ दूर चला। ग्रागे उसने देखा कि रक्त की एक धारा बहती हुई ग्रा रही है। उसे बडा ग्राश्चर्य हुग्रा कि वह रक्त का प्रवाह ग्राखिर ग्रा कहाँ से रहा है? वह उसी के कारण की खोज करने के लिए तदनुसार चलने लगा। कुछ दूर चलने पर उसने देखा कि दूरी पर एक महाकाय दानव सो रहा है ग्रौर एक सुन्दर युवती उसके पास बैठी हुई उसके

पैर दबा रही है। युवती की आँखों से खून के आँसू टपक रहे हैं और वे ही एक धारा के रूप में बह चले हैं।[1] महावीर अर्जुन ने निर्णय किया कि निश्चय ही यह दानव कहीं से इस युवती को बलात् पकड़ कर ले आया है और उससे सेवा करवा रहा है। उसे यह स्थिति सहन न हो सकी और तत्काल उसने दानव को लक्ष्य बनाकर एक तीर छोड़ा। वह तीर दानव के लगा और उसने सोये हुए ही अपने शरीर पर हाथ फिरा कर कहा कि मच्छर नींद भी नहीं लेने देते।[2] इन शब्दों से अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ—"इस दानव के लिए उसका बाण एक मच्छर के समान है!" उसने फिर एक तीर और भी ज्यादा कसकर दानव पर छोड़ा। इस बार भी दानव ने वैसा ही किया और वह सोता ही रहा। अर्जुन का जोश बढ़ा और उसने तीसरा तीर और मारा। अबकी बार दानव की आँखें खुली और उसने अर्जुन को तरफ देखकर क्रोध से पुकारा—"अरे दुष्ट, खड़ा रहना, कहीं भाग न जाना।" ऐसा कहकर वह अर्जुन की तरफ दौड़ा। अर्जुन का जोश ठण्डा पड़ गया और दानव को सामने आते देख वह भयभीत होकर भाग चला।

अर्जुन आगे था और दानव पीछे। अर्जुन ने सोचा, "आज उसका अन्तिम समय आ गया है और यह दानव उसे मार कर खा जायेगा।" परन्तु वह प्राणों के मोह में भागा जा रहा था कि कहीं कोई शरण मिल जाए तो वह जीवित रह सके। आगे उसने देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक चौरंगा (जिसके दोनों हाथ और दोनों पैर कटे हुए हैं) पड़ा है। अर्जुन उसी की तरफ दौड़ा। चौरंगे ने देखा कि एक आदमी भयभीत होकर भागा आ रहा है और उसके पीछे एक दानव लगा है। उसे भयार्त मनुष्य पर दया आई और उसने वहीं पड़े हुए गर्ज कर दानव से कहा कि वह वहीं ठहर जावे अन्यथा अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा। चौरंगे की आवाज सुनकर दानव जहाँ का तहाँ रुक गया और बोला—'अरे मनुष्य तू शक्तिशाली की शरण में चला गया नहीं तो आज मैं तुझे तीर चलाने का मजा चखा देता।" इतना कहकर दानव वापिस लौट गया।

---

1. मुसलमान सूफी कवियों की रचनाओं में 'खून के आँसू रोना' एक साहित्यिक अभिप्राय है। जायसी इन 'पद्मावत' काव्य में यह कई जगह प्रयुक्त हुआ है।

2. श्री शुभशीलगणि विरचित विक्रम चरित्र ग्रन्थ में विक्रमादित्य के गर्वहरण विषयक कथानक में भी ऐसा ही प्रसंग प्रकट किया गया है।

चौरंगे ने अर्जुन को अपने पास बिठलाकर धीरज दिया। अब उसके प्राण सुरक्षित थे। परन्तु वह चकित था कि जिस दानव के आगे वह पैर नहीं रोक सका, वह इस चौरंगे की आवाज मात्र से डर कर लौट गया! अतः निश्चय ही यह मनुष्य हाथ पैरों से विहीन होने पर भी महापराक्रमी है। कुछ देर बाद अर्जुन ने चौरंगे से हाथ जोड़ कर पूछा "हे प्राणदाता आपकी शक्ति अपार है। कृपा करके मुझे यह समझाइए कि आपके हाथ-पैर कैसे कटे?" अर्जुन का ऐसा वचन सुनकर चौरंगा कुछ गंभीर हुआ। फिर उसने कहा, "अरे भाई, मुझे अपने बल और वीरता पर बड़ा घमंड था। महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तब मैं यहीं बैठा था। कुछ बाण मेरे पास से सनसनाते हुए निकले। वे बाण युद्ध क्षेत्र से छोड़े हुए चले आ रहे थे। मैंने अपने बल के गर्व मे एक बाण को बैठे-बैठे ही दोनों हाथों से पकड़ कर रोकने की चेष्टा की। उस बाण का वेग बड़ा तीव्र था। उसे पकडने की चेष्टा में मेरे दोनों हाथ और दोनों पैर कट कर गिर गए और वह आगे निकल गया। मुझे अपने किए पर बड़ा पछतावा हुआ परन्तु अब क्या हो सकता था? असल में वह बाण महारथी अर्जुन का था। मैंने उसे पकड़ने की चेष्टा करके बड़ी भूल की। इसी से आज मेरी यह दशा है कि धरती पर लोट-लोट कर इधर उधर सरक सकता हूँ।" चौरंगे की बात सुनकर अर्जुन तो मानो आश्चर्य के समुद्र में ही डूबने लगा। जिसके दूर से छोड़े हुए अजान बाण को पकड़ने की चेष्टा में इस व्यक्ति के हाथ पैर कटकर गिर गए, आज वही अर्जुन न इसकी शरण में आकर जीवित बच सका! इतना ही नहीं, जिस दानव के भय से वह स्वयं भाग छूटा, वही दानव इस चौरंगे से डर कर लौट गया और उसके प्राणों की रक्षा हुई। अन्त में अर्जुन की समझ में आया कि यह सब काल की महिमा है। काल सर्वोपरि है, मनुष्य उसके सामने कुछ भी नहीं।

अर्जुन अपने प्राण-रक्षक को धन्यवाद देकर वहाँ से चल पड़ा। कुछ दूर जाने पर उस रास्ते में दूसरा रास्ता आ कर मिल गया। उधर से श्रीकृष्ण आये और दोनों का साथ हो गया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा—"कहो अर्जुन, मनुष्य बलवान है या काल?" अर्जुन ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "भगवान, काल सर्वोपरि है। मनुष्य उसके सामने कुछ भी नहीं। आज आपकी कृपा से मेरा भ्रम दूर होकर मुझे वास्तविक ज्ञान मिला है।" इसके बाद श्रीकृष्ण और अर्जुन लौटकर राजधानी में आ गए।

यह लोककथा भारतीय कथानक की उद्भावना शक्ति का विलक्षण

नमूना है। जो बात सिद्धान्त रूप मे कही जाती है। वह उतनी प्रभावशाली नहीं होती जितनी कि वह कथा रूप मे होती है। प्रस्तुत लोककथा अत्यन्त कौतूहलमयी एव चित्रात्मक है।[1] फलत: इसमे रोचकता भर गई है। परन्तु इस कथा की सब मे बडी विशेषता इसकी प्रतीकात्मकता है जिसकी व्याख्या बडी सारगर्भित है।

श्रीकृष्ण विश्वनियन्ता हैं। महाभारत विजेता अर्जुन को मानवी शक्ति पर गर्व होना स्वाभाविक है। वह काल की अपेक्षा मनुष्य को अधिक शक्तिशाली समझता है। इसीलिए कथा में उसे बायें रास्ते पर चलने वाला प्रकट किया गया है। काल-धर्म की महिमा का समर्थन करने वाले श्रीकृष्ण दायें मार्ग पर चलते हैं। कथा का दानव महाकाल का रौद्ररूप है। इसकी युवती मानवी शक्ति का प्रतीक है जो रौद्र-रूप दानव के पैर दबाती है और अपनी विषम स्थिति के कारण आंसू बहाती है। मानवी शक्ति का समर्थक अर्जुन उसके उद्धार के लिए चेष्टा करता है परन्तु उसकी पूरी ताकत भी काल के रौद्र रूप दानव के लिए मच्छर के समान है। जब दानव आँखें खोलता है तो बेचारे मनुष्य की समस्त शक्ति शून्य हो जाती है और वह प्राण रक्षा के लिए किसी की शरण में जाना चाहता है। कथा का चौरंगा महाकाल का सौम्यरूप है जो बिना हाथ पैर का होने पर भी बडा शक्तिशाली है और भयभीत मनुष्य उसकी शरण मे आकर त्राण पाता है। अर्जुन के बाण से चौरंगे के हाथ पैर कट जाने का अभिप्राय मनुष्य की शक्ति को चरम रूप मे दिखाना है परन्तु यह सब महाकाल के सौम्य रूप के सामने ही हो सकता है। उसके रौद्र रूप के सामने मनुष्य सर्वथा शक्तिशून्य है। लोककथा मे महाकाल के रौद्र-रूप की अपेक्षा उसके सौम्य-रूप को प्रधानता दी गई है और इसी मे पृथ्वी पर मनुष्य के समस्त विकास का रहस्य भरा हुआ है। अन्त में मानवी शक्ति का समर्थक अर्जुन गर्व-रहित होकर महाकाल के आगे हाथ जोडता है और फिर उसकी श्रीकृष्ण से भेंट होती है। अब दायाँ और बायाँ दोनों रास्ते एक हो जाते हैं और अर्जुन सकुशल घर लौट आता है।

इस राजस्थानी लोककथा मे महर्षि व्यास द्वारा प्रकट किया हुआ निम्न सार सन्देश गूंज रहा है :—

> कालमूलमिद सर्वं जगद् बीज धनञ्जय।
> काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया।
> स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः।
> (मौसल पर्व ८, ३३, ३४)

---

1. यक्ष प्रश्नोत्तरी का चित्रात्मक रूप वरदा के वर्ष २ अंक ४ में दिया जा चुका है।

४. नागयज्ञ

जनमेजय के नागयज्ञ की कथा सुप्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध मे राजस्थान मे प्रचलित लोककथा का साराश निम्न प्रकार है :—

महाराज परीक्षित ने शिकार खेलते समय विनोद मे एक तपस्वी के गले मे मरा हुआ सांप डाल दिया। इस अपमान से क्रोधित होकर तपस्वी ने परीक्षित को शाप दिया कि निश्चित अवधि के भीतर सांप के काटे से राजा की मृत्यु होगी। परीक्षित को अपनी भूल ज्ञात हुई परन्तु अब क्या हो सकता था? तपस्वी का वचन टल नही सकता। महाराजा अपने महल मे आ गए और पुण्य कर्म मे समय व्यतीत करने लगे। साथ ही उन्होंने सांप से अपनी रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया।

अवधि पूरी होने को आई और तक्षक नाग तपस्वी का वचन सच्चा सिद्ध करने के लिए चला। मार्ग मे उसकी धन्वन्तरि वैद्य से भेंट हुई। वैद्य ने बातचीत मे प्रकट किया कि वह महाराजा परीक्षित की सर्प-दश से प्राण रक्षा करने के लिए जा रहा है। इस पर धन्वन्तरि के गुण की जांच करने के लिए तक्षक ने एक हरे-भरे वृक्ष को अपने दश से भस्मीभूत कर दिया और तत्काल ही वैद्य ने अपने उपचार से उसे पहिले जैसा ही कर दिखाया। अब तक्षक को विश्वास हो गया कि यह वैद्य तपस्वी के वचन को झूठा सिद्ध कर देगा। अत. उसने कुछ आगे बढ़कर एक सुन्दर सी लाठी का रूप धारण किया और मार्ग मे पड गया। वैद्य ने वहाँ पहुँच कर उस लाठी को अपने कन्धे पर रख लिया। उसी समय तक्षक ने सर्प बनकर धन्वन्तरि की पीठ मे काटा और घाव न दिखलाई देने के कारण वैद्य कुछ उपचार नही कर सका तथा वही उसका प्राणान्त हो गया। यह खबर धन्वन्तरि के परिवार वालों के पास पहुँची। वे उसे उठाकर घर ले आए। धन्वन्तरि ने अपने परिवार वालो को कह रखा था कि जब कभी उसका शरीर शान्त हो जाए, उसे जलाया न जावे बल्कि उसे खा लिया जावे क्योंकि औषधियो के प्रयोग से उसमे अपरिमित गुण भर दिए गए है। परिवार वाले उस मृतक देह को खा नही सके और उसे श्मशान मे छोड दिया। उसे बालवेलियो (सपेरों), कुत्तो एव चील-कौवो आदि ने खाया। फलत. बालवेलियो पर सर्पदश का प्रभाव नही होता, कुत्तो की जीभ मे अमृत-गुण आ गया और चील-कौवो की स्वाभाविक आयु बढ़ गई।

तक्षक नाग अपना काम पूरा करने के लिए महाराजा परीक्षित की राजधानी मे पहुँचा। वहाँ सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध देखकर उसने पूजा करने

के लिए चुने हुए फूलों मे एक अति लघु कीट के रूप में प्रवेश किया। महाराजा ने उस फूल को पूजा के लिए उठाया कि तक्षक ने उन्हे डस लिया और तत्काल उनका प्राणान्त हो गया। राज्य भर मे हाहाकार मच गया।

परीक्षित के बाद जनमेजय राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। उन्होने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए नागो के सर्वसंहार की योजना चालू की। प्रतिदिन अगणित नाग पकड़कर हवनकुण्ड में स्वाहा किए जाने लगे। यही जनमेजन का नागयज्ञ था। राजसेवकों ने तक्षक के लिए बडी खोज की परन्तु वह कही भी नही मिला। अतः जनमेजय ने उसकी तलाश करने का काम गरुड़ पर छोड़ा।

तक्षक को नागयज्ञ का समाचार पाकर अपने प्राणो की चिन्ता हुई। उसने ब्राह्मणकुमार का रूप धारण किया और किसी गाँव मे जाकर एक ब्राह्मण के घर मे वह अतिथि की तरह रहने लगा। उस ब्राह्मण के विवाह योग्य कन्या थी। उसने अतिथि को सर्वगुण सम्पन्न समझ कर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। अब तक्षक ने सारा रहस्य स्पष्ट किया। इस पर ब्राह्मण ने अपने जामात को घर मे छिपा लिया और समय निकलने लगा।

नागपूजा का दिन आया। सब स्त्रियाँ सर्प की बाँबी के पास जाकर नागपूजा किया करती थी। ब्राह्मण की पुत्री की सहेलियों ने उसे बाँबी पर चलने के लिए कहा। भोलेपन से उसके मुँह से निकल गया—"घर आयो नाग न पूजिए, बाँबी पूजन जाय"।[1] अर्थात् उसे नागपूजा के लिए बाँबी पर जाने की क्या आवश्यकता है जबकि उसके घर मे ही नाग आया हुआ है। इस प्रकार नासमझी मे रहस्य खुल गया और धीरे-धीरे यह चर्चा फैल गई।

गरुड खोज करते करते उसी गाव मे आए। उन्होंने भी वहाँ फैली हुई चर्चा सुनी। ब्राह्मण पुत्री एक दिन कुँए से अपने सिर पर पानी के दो घड़े (एक के ऊपर दूसरा घड़ा) रख कर घर आ रही थी। उसकी दोवड़ पर एक चिड़िया (चीड़ी) आकर बैठ गई। ब्राह्मण की पुत्री ने उसे हाथ के इशारे से उड़ाना चाहा। इस पर चिड़िया ने कहा—"वै चीडी और हैंगी, जिकी हाथड़ै उडज्या।[2] अर्थात् वह चिड़िया दूसरी ही होती है, जो हाथ की आवाज करते ही तत्काल उड़ जाती है। चिड़िया ने आगे कहा—"मैं गरुड़ हूँ। तुमने तक्षक नाग को घर में छिपा रखा है। मैं उसे पकड़ने आया हूँ।" तत्काल ब्राह्मण

1. 2 ये दोनों वाक्य कहावतो के रूप मे लोक प्रचलित है।

पुत्री ने उत्तर दिया—"यदि तुम गरुड़ हो, तो मेरा बल अपना सती धर्म है जिसके आगे संसार में किसी की सामर्थ्य नहीं कि मेरे पति को कोई हाथ भी छुआ सके।" गरुड़ सती-धर्म की महिमा से अनजान न थे। उन्होंने सारी स्थिति को जान लिया और ब्राह्मण पुत्री के आगे हाथ जोड़ कर बोले, "देवी तुम अपने पति को मेरे साथ भेज दो। मैं वचन देता हूँ कि उसका बाल भी बांका नहीं होगा।" तदनुसार तक्षकनाग गरुड़ के साथ जनमेजय के सम्मुख उपस्थित हुआ और गरुड़ ने वहाँ सारी स्थिति स्पष्ट करदी। फल यह हुआ कि तक्षक को क्षमा किया गया और नाग-यज्ञ बन्द हो गया।

नाग लोगों का 'आनुवंशिक पावन प्रतीक' (टोटेम) भी नाग (सर्प) ही था। फलस्वरूप भारतीय कथा साहित्य में बड़ा ही रंगीन वातावरण उपस्थित हो गया है। जनसाधारण ने नाग (मानव) और सर्प (सरीसृप) को एक ही चीज मान लिया। नाग जाति अति प्राचीन है। इस जाति का आर्यों से प्राचीन काल से सम्बन्ध होता रहा है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दू संस्कृति के अध्ययन के उपादान' शीर्षक लेख[1] में इस विषय में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है—"अनेक आर्य-पूर्व जातियों के साथ आर्य राजाओं और ऋषियों के विवाह सम्बन्ध का पता पुराने ग्रन्थों से चलता है। नाग सुपर्ण आदि जातियाँ दुर्दान्त पराक्रमी थी। पुराने ग्रन्थों में नाग कन्याओं के साथ अनेक आर्य राजाओं और ऋषियों के विवाह की चर्चा मिलती है। इन विवाहों से उत्पन्न सन्तानें श्रेष्ठ होती थी। कद्रू पुत्र नागों के वंश में उत्पन्न अर्बुद नामक ऋषि ऋग्वेद के १० वें मण्डल के ६४ सूक्त के रचयिता बताये गये हैं। एक और मन्त्र-द्रष्टा ऋषि इरावत् के पुत्र जरत्कर्ण थे, जिन्हें सायण ने सर्प जाति का बताया है। नागों के प्रसिद्ध शत्रु माने जाने वाले जनमेजय के पुरोहित सोमश्रवा थे, जिनके विषय में परिचय देते हुए उनके पिता श्रुतश्रुवा ने कहा था कि 'यह मेरा पुत्र नागकन्या के गर्भ से सम्भूत महातपस्वी, स्वाध्याय सम्पन्न और मेरे तपोवीर्य से उत्पन्न हुआ है।' पुराने ग्रन्थों में इन नाग-कन्याओं का बहुत उल्लेख मिलता है। सम्भवतः यह कन्यायें अन्यान्य आर्येतर जातियों की कन्याओं से अधिक रूप-गुण सम्पन्न होती थी। आर्यों और नागों के साथ बहुत दिनों तक संघर्ष और सम्मिलन चलता रहा। बहुत बाद के इतिहास में भी इन नाग राजाओं का परिचय मिलता है।"

कथा सरित्सागर में वसुनेमिनाग द्वारा उदयन को वीणा, ताम्बूल और

---

1. विचार और वितर्क ग्रन्थ, पृष्ठ १८८।

कभी न मुरझाने वाली माला भेंट किए जाने का प्रसंग है।[1] साथ ही वसुनेमि ने उदयन को कभी मलिन न होने वाले तिलक के लगाने की विधि भी समझाई थी। इन सबका कारण था किसी साँप को एक मदारी द्वारा पकड़े जाने से बचाया जाना। यही सांप अपने रक्षक उदयन के सामने वसुनेमिनाग के रूप में प्रकट हुआ। इसी प्रकार के दृश्य अनेक लोक-कथाओं में देखे जाते हैं। यह है कथा साहित्य का रंगीन वातावरण।

राजस्थानी लोक-कथा का खुलासा इस प्रकार है कि तक्षक नाग ने गुप्त रूप से महाराजा परीक्षित का प्राणहरण किया। इससे क्रुद्ध होकर उनका पुत्र जनमेजय नाग जाति के सर्वनाश के लिए तत्पर हुआ। लोककथा के अनुसार सम्राट को इस संहारपरता को एक नारी ने शान्त किया और उसका बल था, उसका सतीधर्म। इतिहास, पुराण एवं लोककथाओं में नारी के कारण हुए महाविनाशकारी युद्धों के विवरण भरे पड़े हैं परन्तु इस कथा की नायिका भयंकर विनाशलीला को रोकने वाली प्रकट की गई है। यह सब उसके सतीत्व का फल है जिसका प्रभाव अपरिमित माना गया है। उसके द्वारा गरुड़ को दिया गया उत्तर महाभारत-कथा की उस सती नारी का स्मरण करवाता है जिसने कोप दृष्टि से बगुली को भस्म करने वाले सन्यासी को त्यौरी चढ़ाते देखकर कहा था, "मुनिवर मैं बगुली नहीं हूं।"

इस लोककथा का उद्देश्य सतीधर्म की महिमा प्रकट करना है। राजस्थान सतियों एवं जुझारों के देश के रूप में विख्यात है। यहां गाँव-गाँव में इनके *'स्थान'* बने हुए हैं *जिनको लोग आदर के साथ पूजते* हैं। यही तत्त्व इस लोक-कथा में समाया हुआ है। यह सब भारतीय लोक-संस्कृति की महिमा है।

---

1. वसुनेमिरिति ख्यातो ज्येष्ठो भ्रातास्मि वासुकेः।
   इमां वीणां गृहाण त्वं मत्तः संरक्षितात्त्वया॥
   तन्त्री निर्घोषरम्या च श्रुति विभाग विभाजितम्।
   ताम्बूलीश्च सहाम्लानमाला तिलक युक्तिभिः॥
   (कथा० २/१)

राजस्थान का लोकगीत "विनायक"

लोकगीत मे लोकहृदय का राग रहता है। उसमे एक व्यक्ति का नहीं बल्कि एक समुदाय का स्वर समाया हुआ मिलता है। किसी समाज के हृदय का परिचय पाने के लिए उसके लोकगीतों से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं होता। लोकगीतो मे जनता के हृदय की सहज भावनाएं अत्यन्त सरल रूप मे प्रकट होती है, उन मे किसी प्रकार की कृत्रिमता नही मिलती। लोक-गीतों की यह सबसे बड़ी विशेषता है।

राजस्थान लोक साहित्य का रत्नाकर है और यहां के लोक-गीत उसका एक परिपुष्ट अङ्ग है। राजस्थानी लोकगीतों के भी अनेक विभाग हैं। इनमे से सभी विभागो मे प्रचुर सामग्री प्राप्त है। अब तक राजस्थानी लोक-गीतो के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु केवल संग्रह की दृष्टि से भी अभी काफी काम होना बाकी पड़ा है। जितने लोकगीत प्रकाशित हुए हैं उन से कितने ही अधिक अभी तक केवल लोकमुख पर ही अवस्थित हैं और लिपिबद्ध किये जाने की प्रतीक्षा मे हैं। समाज की इस अमूल्य साहित्य-सम्पत्ति को सुरक्षित किये जाने की परमावश्यकता है।

अभी तक जितने लोकगीत प्रकाशित हुए हैं, उनका व्यवस्थित अध्ययन भी नहीं हुआ है। लोक-गीतों पर गहराई से विचार करने से अनेक नई-नई बातें प्रकाश मे आती हैं। यहां तक कि उनके प्रयुक्त कई शब्दों के पीछे भी बहुत कुछ छिपा रहता है। लोक-गीतों के अनुसन्धान अथवा विशेष विचार करने

पर जन-जीवन के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। ऐसे एक शब्द के पीछे कुछ निगूढ़ तत्व मिलते हैं, जिन पर विचार किया जाना बड़ा उपयोगी है।

इस लेख मे राजस्थान के एक लोक-गीत 'विनायक' पर कुछ विस्तार से चर्चा करने की चेष्टा की जाती है। भारतीय जनता प्रत्येक मांगलिक कार्य के प्रारम्भ में उसकी निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए विनायक का स्मरण करती है। यहाँ सभी कार्य गणेश-पूजा से प्रारम्भ होते हैं। वैवाहिक कार्यों की सुन्दर सम्पन्नता का तो पूरा भार गणेश पर ही रहता है। राजस्थान का 'विनायक' लोक-गीत यहाँ के वैवाहिक गीतों में सर्वप्रथम है। इसके गायन के साथ विवाह-कार्य प्रारम्भ होता है। गीत कुछ बड़ा सा है और उसका ऐसा होना भी सकारण है, जो आगे प्रकट होगा। सर्वप्रथम मूलगीत हिन्दी अर्थ सहित प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही विषय की स्पष्टता के लिए प्रसगानुसार गीत के विभाग[1] प्रकट कर दिए गए हैं और रूपान्तरों को कोष्ठों में दिखलाया गया है।

विनायक

१.
गढ़ रणतभँवर सूँ आवो विनायक,
करो ए अखीनी विरदड़ी।
विरद विनायक दोनूँ जी आया,
आय पधारया सीढ़ें चढ़ हर्षं।
कुमकुम कुमकुम नगर पधेरया,
पीठ बणायो माहेश्या रे बारणीं।
ऊंचो सो मंडो साम सिवारी,
बैठ मनावें माहेश्या रे बारणें।

२
पहलो तो बाधो कागद बाँचियो,
कंकर लिखे मोहर बाधरो।
(दूजो तो बाधो गणपत बाँचियो,
मरदर भरियो ठाठे नीर सूँ।

नीर भरै जी पणिहारियाँ ।)
दूजो तो वासो वाडी जी वसियो,
वाडी भरी ए खिजूर सैं ।
फळ फूल वाडी सो फळ फळिया,
कुंजा जी मरवा केवडा ।
(प्रगणो तो वासो वड तळै बसियो,
वड नारेळा जी छादयो ।)
प्रगणो तो वासो नगरी जी बसियो,
नगरी मे बैठ्या बामण-वाणिया ।
चोथो तो वासो तोरण बसियो,
तोरण छायो रूडी चिडकल्या ।
ये तो एवड-छेवड सात चिडकली,
विच हरियाळो जी सूवटो ।
ये तो चग-चग बोलै सात चिडकली,
इमरत बोलै हरियो सूवटो ।
पँचवो तो वासो फेरा जी वसियो,
फेरा मे बैठ्या लाडो-लाडली ।
म्हारी लाडली को वीर बधज्यो,
राईवर को वाधो बीटळो ।
बधज्यो बधज्यो ए लाडी गोत तुमारो,
एक पिवर दूजो सासरो ।
छट्टो तो वासो थापैं जी वसियो;
थापैं मे बैठ्या देई-देवता ।
सातवो तो वासो ओवरै बसियो,
ओवरडो घी गुड भरयो ।

एक कोथळडी उस देई विनायक,
लाडजं र्दं लाउ-कार नै ।
ये तो लाय सरवें हो धन दिगमं,
जस रैवे परवार मे ।

हे न्यात के सब दुल्हे पूछने प्रश्नित हुए कि कोई हमें दुलहे के पिता की 'पोल' (घर का प्रधान दरवाजा) बतावे।

उन्हें ऐसा उत्तर मिला—''दुलहे के घर की 'मेडी' ऊँची सी है, उसके किवाड़ लाल रंग के हैं और दरवाजे के पास बैठा हुआ मैं [illegible] रहा है।''

(२)

उन्होंने पहला ठहराव सीमाना पर किया। वहाँ के खेतों में मोठ और बाजरा प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता है।

(उन्होंने दूसरा ठहराव सरोवर के पास किया। वह सरोवर ठंडे पानी से भरा हुआ है। उसमें लहरें उठ रही हैं और पनिहारिनें जल भर रही हैं।)

उन्होंने दूसरा ठहराव 'बाड़ी' (वाटिका) में किया। बाड़ी खजूर से भरी पूरी है। उसमें फल भी नाना प्रकार के फल हैं और कुँज, मरवा तथा केवड़ा आदि फूले हुए हैं।

(उन्होंने अगला, अर्थात् तीसरा ठहराव वड के नीचे किया। वह वड नारियलों से छाया हुआ है।)

उन्होंने अगला, अर्थात् तीसरा ठहराव नगरी में किया। नगरी में स्थान-स्थान पर बाह्मण और बनिये बैठे हुए हैं।

उन्होंने चौथा ठहराव 'तोरण' के पास किया। 'तोरण' सुन्दर चिड़ियों से छाया हुआ है। उसमें इधर-उधर सात चिड़ियाँ हैं और बीच में हरा सुग्गा है। वे चिड़ियाँ चहचहा रही हैं और वह सुग्गा अमृत वाणी बोल रहा है।

उन्होंने पाँचवा ठहराव 'फेरों' में (भावर) में किया। वहाँ दुलहा और दुलहिन बैठे हुए हैं। हमारी दुलारी दुलहिन का 'चीर' (ओढ़ना) तथा 'राईवर' (दुलहे) का 'वागा' और 'पीटळी' (पगड़ी) वृद्धि को प्राप्त हो। हे दुलहिन, तुम्हारे पीहर और ससुराल के दोनों के ही 'गोत' (गोत्र) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो।

उन्होंने छठा ठहराव 'थापे' के पास किया। 'थापे' में समस्त देवी और देवता विराजमान हैं।

उन्होंने सातवाँ ठहराव 'ओबरे' में किया। 'ओबरा' गुड़ और घी से भरपूर है।

(३)

हे विनायक, दुलहे के ताऊ और पिता की 'कोथळी' (थैली) को यश

देना अर्थात् उसे सदैव भरी पूरी रखना। वे अपने धन का अच्छी तरह आनन्द लेवें, उसे खावें और खरचें, जिससे पूरे परिवार में उनको यश प्राप्त हो।

हे विनायक, दुलहे के चाचा और भाइयों को भुजा का बल देना।

हे विनायक दुलहे की दादी और मा को जीभ सम्बन्धी यश देना। वे मधुर वाणी बोलें और नम्रता का व्यवहार करें, जिससे पूरे परिवार में सरसता का प्रचार रहे।

हे विनायक, दुलहे के नाना और मामों को 'मात' (मामेरा) में यश देना।

हे विनायक, दुलहे की बूआ और बहिन को 'मारते' में यश देना।

(४)

हे विनायक, सावन के मेघ के समान घोर गर्जना करते हुए आना।

हे विनायक, बनजारे के बैल की तरह सब प्रकार से भरे-पूरे होकर आना।

हे विनायक, सर्वसुहागिन स्त्री के हाथ जिस प्रकार मेंहदी के 'मांडनों' से सुन्दर बन जाते हैं, उसी प्रकार सब तरह से मंडित होकर आना।

हे विनायक, पवन जल और अग्नि इन तीनों की बाधा का निवारण करना।

हे विनायक, इधर-उधर की गलियों में न चले जाना, सीधे हमारे घर की सामने वाली 'साळ' में ही आना।

(५)

गूगल की सुगन्ध फैल रही है। किसी सुहागिन ने गणपति की पूजा की है।

(दुलहे की माता सुहागिन गणपति की पूजा कर रही है जिसके घर में वैवाहिक कार्य के लिए उतावली हो रही है।)

लोक-गीत के प्रथम विभाग में विनायक का रणथंभोर गढ़ से आह्वान किया गया है। रणथंभोर का गणेश अत्यन्त प्रसिद्ध है, अतः गीत में इस स्थान के महत्व का प्रकाशन हुआ है। यह स्थान जिस प्रकार 'हठीले हमीर' के कारण प्रसिद्ध है, उसी प्रकार यहां के गणेश के लिए भी विख्यात है। लोकविश्वास में गणेश यहां साक्षात् विराजमान रहते हैं। उनसे प्रार्थना की गई है कि वे स्वयं पधार कर 'बिड़दड़ी' को चिन्ता रहित करें। लोक-गीतों

मे 'विडद' का अर्थ सामान्यतया 'विवाह' लिया जाता है। वैसे 'विड़द विनायक' यह प्रचलित है। बोलचाल मे 'गणेश-स्थापना' को भी 'विडद बिठावणो' कहा जाता है। विवाह का गणेश से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः 'बिडद' शब्द विवाह के लिए प्रयुक्त होने लगा प्रतीत होता है। कुछ अन्य उदाहरण देखिए—

१. रुकमण, उठो धण करो सिणगार, थारै बाबुल घर रळी ए बधावणा। रामजी, भूठा थे भूठ म बोल, सांवण मासा किसी जी ब्रिडदडी।

(दातण गीत)

२. बपडा तो बोलै दरजी घरां,
कद घडस्या परवार बनै रै अग विड़द बधावणा।

(स्नान का गीत)

३. मा का रै जाया मेरै वेगो रै आए,
म्हा घर विड्द उतावली। (भात का गीत)

'विड्द विनायक दोनू जो आया' प्रयोग मे 'विडद' को सामान्यतया 'विरद्व' का विकसित रूप बतलाया जाता है। परन्तु यहां यह 'वृद्धि' का विकसित रूप प्रतीत होता है। बोलचाल मे 'वृद्धि' का विकसित रूप 'विडद' है। गणेश के चित्र मे उनके दोनो तरफ दो स्त्रिया दिखलाई जाती हैं और उनको ऋद्धि तथा सिद्धि कहा जाता है। पुराणकथा के अनुसार गणेश का विवाह विश्वकर्मा की दो पुत्रियो सिद्धि और बुद्धि के साथ हुआ था, जिनसे उनको 'लक्ष्य' और 'लाभ' दो पुत्र प्राप्त हुए। स्पष्ट ही यह कथा प्रतीकात्मक है। यहां गीत मे प्रयुक्त 'विडद' अर्थात् वृद्धि का अभिप्राय सिद्धि से लिया जा सकता है, जो सब प्रकार की सम्पन्नता पर आधारित रहती है और सम्पूर्ण गीत मे यही भाव व्याप्त है।

गीत के इसी भाग मे मार्ग पूछे जाने की चर्चा है। यह प्रसग राजस्थानी लोकगीतो मे स्थिर सा है और एक 'साहित्यिक अभिप्राय' बन गया है। प्रस्तुत गीत मे यह अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे प्रकट हुआ है।[1]

1. पूरे रूप मे यह प्रसग इस प्रकार देखा जाता है—
बूज्यो भँवरजी गाया रो गुवाळ, बूज्यो भँवरजी गाया रो गुवाळ,
मोजी राज, मारगियो बतावो म्हारै सुसराजी रो कूणसो जी राज।
बायो मारग जाळापर नै जाय, बायो मारग जाळापर नै जाय,
मोजी राज, सीधो तो जासी थारै सुसराजी रै देस नै जी राज।

'केळ भवरगं लाहेने रं वारणं' प्रयोग सहज ही कालिदास के यक्ष के द्वारा मेघ के प्रति कहे गये।

इस वचन का स्मरण करवा देता है—

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमदारवृक्षः॥ (मेघदूतम् २।१२)

लोकगीत के दूसरे विभाग मे राजस्थान की धरती और यहा के जनजीवन की विस्तृत झाकी प्रकट हुई है। इसमें विनायक के विभिन्न सात 'वासो' (ठहरावो) का विवरण दिया गया है जिनमे 'बोल' की दृष्टि से अनेक रूपान्तर हैं। ये सात 'वासे' क्रमश. काकड, बाडी, नगर, तोरण, फेरा, थापा और ओवरी हैं। इनके रूपान्तरो मे सरोवर तथा बड़ की चर्चा है। इसमे यहा की धरती, वृक्ष, फल, फूल आदि का प्रसग तो आता ही है, साथ ही निवास स्थान, भोजन, वस्त्र, प्रथाएँ एव लोकविश्वासों तक की चर्चा हुई है। विवाह का तो लगभग पूरा ही रूप इस गीत मे प्रकट हुआ है।

ध्यान रखना चाहिए कि यह गीत वर और कन्या दोनो ही पक्षो से सम्बन्धित है परन्तु प्रधानता इसमे कन्यापक्ष की प्रकट हुई है। लड़की के

बूज्यो भँवरजी पाणी री पणिहार, बूज्यो भँवरजी पाणी री पणिहार,
ओजी राज, देस बताओ म्हारं सुसरांजी रो कूणसो जी राज।
यो ई भँवर थारं सुसराजी रो देस, यो ई भँवर थारं साळाजी रो देस।
ओ जी राज, सालर थोडा जी सरवर भी घणा जी राज।
बूज्यो भँवरजी माळीडा रो पूत, बूज्यो भँवरजी माळीडां रो पूत।
ओ जी राज, बाग बतावो म्हारं सुसराजी रो कूणसो जी राज।
यो ई भँवर थारं सुसराजी रो बाग, यो ई भँवर थारं साळाजी रो बाग
ओ जी राज, आमा तां पाकया निमुंवा रस भरया जी राज।
बूज्यो भँवरजी चेजारं रो पूत, बूज्यो भँवरजी चेजारं रो पूत,
ओ जी राज, पोळ बतावो म्हारं सुसराजी री कूणसो जी राज।
या ई भँवर थारं सुसराजी री पोळ, या ई भँवर थारं सुसराजी री पोळ,
ओ जी राज, केळा भवरवं थारं सुसराजी रं वारणं जी राज,
ओ जी राज, जाळी सो झरोखा बारी झुक रया जी राज।
ओ जी राज, (जंवाई गीत)

विवाह मे 'मांदेना' की जगह 'लाडनी' शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है। विनायक जहां बड़ी 'दामा सेते' है, वही सुख, समृद्धि एव सम्पन्नता दिखाई देती है। यह उनके प्रभाव एव शक्ति की सूचक है। उनका एक 'बागा' तोरण के पास बतलाया गया है। राजस्थान में इस प्रथा को विशेष महत्व प्राप्त है और इसे 'तुकाव' कहा जाता है। तोरण मुख्यद्वार का नाम है परन्तु राजस्थान मे खातो के द्वारा अलकरण के रूप मे एक छोटा सा 'तोरण' इस अवसर के लिए बनवाया जाता है। उसके ऊपर काठ की बनी हुई सात चिड़िया बिठाई जाती है और मध्य मे सुग्गे की आकृति रहती है। कही-कहीं सुग्गे के स्थान पर मोर दिखलाया जाता है। इनके अतिरिक्त फूल पत्तियो का अलंकरण प्रकट किया जाता है। इस तोरण को दरवाजे के ऊपर लगा दिया जाता है और दुलहा इसे हरी डाली से छूता है, जिसे 'तोरण मारना' कहा जाता है। असल मे यह तोरण अथवा तोरण के देवता की वदना है। राजस्थान मे घर के प्रवेशद्वार की ताक पर गणेश प्रतिमा स्थापित करने की विशेष प्रथा भी है। यह घर के आरक्ष-देवता की सूचक है। राजस्थान मे राजाओ अथवा ठाकुरो के यहाँ बरात आती थी तो कई बार 'तोरण' को गढ़ के प्रवेशद्वार पर बहुत ऊंचा जानबूझ कर लगा दिया जाता था, जिससे कि वर की शक्ति-परीक्षा हो सके। ऐसे अवसर पर वर अपनी घोड़ी को दूर से दौड़ाते हुए तोरण के पास ऊँची छलाग लगवाता था और तोरण को अपनी तलवार से छूता था। यही कारण है कि तोरण-वदना के स्थान पर जनसाधारण मे 'तोरण-मारना' प्रयोग प्रचलित हो गया। कही-कही प्रवेश-द्वार पर एक वृक्षाकृति भी खड़ी की जाती है। उसमे भी कृत्रिम सुगा और चिड़िया बिठाई जाती हैं। इसे 'माणिक थभ' कहा जाता है। तोरण के पक्षी एव लता आदि 'वृक्ष-पूजा' की ओर सकेत करते हैं, जो भारतीय प्रजा मे प्राचीन काल से प्रचलित है। आरक्ष देवता यक्ष का स्थान वृक्ष ही था और अब भी भारत मे और विशेष रूप से राजस्थान में यक्षपूजा परिवर्तित रूप में प्रचलित है[1]। गणेश भी आरक्ष देवता के रूप मे ही पूजित हैं।

तोरण-वदना के बाद 'फेरे' होते हैं और तदनतर वर वधू 'थापे' के सामने ले जाए जाते हैं। 'थापा' विवाह के घर मे एक अलग स्थान पर बनाया जाता है जिसमे दीवार पर 'मागलिक चिन्ह' अंकित किया जाता है। यह देव-स्थापना है। यहाँ सभी देवी देवता विराजमान माने जाते हैं।

---

1. इस विषय मे 'वरदा' वर्ष २ अंक २ मे विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा चुकी है।

इस प्रकार विवाह को यज्ञ का रूप मिलता है। इसमे भारतीय प्रजा का वैदिक जीवन कुछ परिवर्तित रूप मे प्रकट होता है। थापे का दीपक ज्योति, जीवन एवं सत्य का प्रतीक है। वर वधू थापे के सामने 'धोक देते' हैं अर्थात् वन्दना करते हैं। विवाह के घर मे 'थापा' सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। 'रातीजगा' (रात्रिजागरण) भी थापे के पास ही होता है, जिसमे प्रधान रूप से देवी देवताओ सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इनमें उन 'लोक देवताओ' के गीत भी सम्मिलित हैं, जिनको जनसाधारण में विशेष मान्यता प्राप्त है।

गीत में सातवा और अंतिम 'वासा' ओवरे में बतलाया गया है। ओवरा (अपवरक) शब्द राजस्थानी लोकगीतों में अनेकशः देखा जाता है। इसका अर्थ शयनागार अथवा विशेष रूप से सजा हुआ कमरा होता है। उदाहरण देखिए—

१. उड रे म्हारा हरियल बन का काग,
जाय बोलो ठाकुर हर के ओवरे। (दांतणगीत)

२ लीप्यो-चाक्यो ओवरो जी मांय बिछाई सेज।
(कातिग का हरजस)

३. घटयो तो मास गोरी धण मैं लाग्यो,
तो ओवरडे जिय जावै, ए म्हारी नई ए विहायी।
(विहायी गीत)

आजकल देहातों में 'ओवरे' का एक नया रूप भी है, जिसमें घर का सामान रखा जाता है।

लोकगीत के इस अंश मे प्रयुक्त 'राईवर' शब्द भी विशेष ध्यान देने योग्य है। राजस्थानी लोकगीतो मे दूल्हे को 'राईवर' कहा जाता है। यह श्री कृष्ण का नाम है। लोक-गीतों के अनुसार 'राई' एक गोपी थी, जिसका श्री कृष्ण के साथ विवाह हुआ था[1]। परन्तु यह सामग्री लौकिक है। राई-दामोदर पद प्रसिद्ध है। दूल्हे को श्रीकृष्ण का नाम देना विशेष महत्त्व-पूर्ण है।

गीत के तीसरे विभाग में [illegible], मुस्कान, मधुर व्यवहार, पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावना की चर्चा की गई है और वे सब प्रकार

---

1. इस विषय मे 'वरदा' वर्ष ४ अंक १ में विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है।

करने के लिए विनायक से विनय की गई है। यहा परिवार का अत्यंत उज्ज्वल एव सुखपूर्ण चित्र प्रकट हुआ है। यह भारतीय लोक-जीवन का आदर्श है, जो यहा वैदिक काल से चला आता है। राजस्थान के बहु-सख्यक 'वधावा' गीतो मे यही आदर्श प्रकट हुआ है[1]। इस मे एक ऐसे गृहस्थ जीवन की झाकी है, जो सब प्रकार से सम्पन्न, शक्तिशाली एव सौहार्दपूर्ण है। भारतीय गृहस्थ इसी आदर्श को प्राप्त करना चाहता है और इसी के लिए गीत मे विनायक से प्रार्थना की गई है, जो निम्न वैदिक मत्रो का स्मरण करवाती है—

> आब्रह्मन्, ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
> आराष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
> दोग्ध्री धेनु, वोढानड्वान्, आशु सप्ति, पुरन्धिर्योषा,
> जिष्णूरथेष्ठा, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
> निकामे निकामे न पर्जन्यो वर्षतु ।
> फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्ताम् ।
> योगक्षेमो न कल्पताम् । (यजु २२।२२)

गीत के चतुर्थ विभाग मे विनायक के दो रूप बतलाये गये हैं। एक रूप मे वह 'गाजन धोरत' है और दूसरे मे 'भरयो-बधूलो' और 'माडो-बू ड्यो' है। प्रथम विनायक का कठोर रूप है और दूसरा उनका सौम्य रूप है। विनायक विघ्नवर्त्ता और विघ्नहर्ता दोनो है। विद्वानो ने गणेश के वर्तमान लोकपूजित रूप पर गहरी छानबीन की है। तदनुसार प्रारभ मे उनका क्रूर रूप था[2] और कालान्तर मे वे सौम्य रूप को प्राप्त हुए। राजस्थानी महिला-समाज की एक व्रतकथा मे एक स्त्री विनायक की मनौती बोल कर पुत्र प्राप्त करती है और फिर वह अपनी मनौती को पूरा नही करती तो विनायक उसके पुत्र को उठा कर ले जाते हैं और एक वृक्ष पर रख देते है। अत मे मनौती पूरी करने पर ही वह स्त्री अपना पुत्र प्राप्त कर पाती है। इस प्रकार विनायक के लिए 'गाजन-धोरत' का प्रयोग सार्थक

---

1. इस विषय में मरुभारती वर्ष ६ अक २ मे विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

2. डाकिन्यो यातुधान्यश्च, कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहा: ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च, यक्षरक्षोविनायका. (भागवत १०।६।२८)

है। वे असन्तुष्ट होकर विघ्न पैदा करने वाले हैं और प्रसन्न होकर विघ्नों का नाश करने वाले हैं। इसीलिए गीत मे पवन, एवं अग्नि के प्रकोप से बचाये रखने के लिए विनायक से प्रार्थना की गई है क्योकि इन बाधाओं को पार करना मनुष्य की शक्ति को देखते हुए महाकठिन है।

गीत के अन्त मे गणपति-पूजा की चर्चा की गई है और गूगल की सुगन्ध फैली हुई प्रकट की गई है। यह पूजा दुलहे (अथवा दुलहिन) की माता करती है क्योंकि उसके हृदय में इस बात की बड़ी व्यग्रता है कि कहीं विवाह के कार्य मे कोई विघ्न न आ पड़े। यह भारतीय नारी का परमोज्ज्वल रूप है। वह त्यागमयी है और तपस्यामयी है। उसकी तपस्या पर ही गृहस्थ जीवन का मगल आधारित है। वह स्वयं तप कर प्रकाश प्रदान करती है। वह मगलकामना की साक्षात् देवी है। नारी का इससे अधिक सम्मान और क्या हो सकता है।

इस प्रकार विचार करने से प्रकट होता है कि राजस्थान के 'विनायक' लोकगीत मे भारतीय सस्कृति के अनेक तत्व व्याप्त हैं।

राजस्थान का लोकगीत 'पीलो'

प्रकृति सगीतमय है और लोकगीत प्रकृति के गीत हैं। उनमे लोक-गगा के हृदय का कलकल निनाद है। वहाँ रस है, मस्तिष्क का प्रपच नही। वहाँ परम स्वाभाविकता है, कृत्रिमता का नाम भी नही। लोकजीवन का अध्ययन करने के लिए लोकगीतो से उत्तम साधन कोई वस्तु नही। लोकगीत जनसाधारण के सुख दुख के अकृत्रिम उद्गार हैं। जब जनता का हृदय तरग मे आता है तो लोकगीत की अवतरणा होती है। इस प्रकार लोकगीत के पीछे लोकहृदय का सामूहिक गान रहता है। ये गीत जन-मन के समवेत स्वर को वायुमडल मे भरते हैं। इनके साथ वायु भी गाने लगती है। यही कारण है कि लोकगीत अपना रूप बदल कर भी युगो तक चलते हैं और उनके आदि उद्गम का पता नही लग सकता। न उनके कर्त्ता का ही ज्ञान हो सकता है क्योकि उनके पीछे जनता का सामूहिक कर्तव्य इस रूप मे रहता है कि वे किसी व्यक्ति द्वारा जनता जनार्दन को भेंट स्वरूप प्राप्त होकर जनता की ही वस्तु बन जाते हैं। लोकगीतों का अधिकार क्षेत्र भी लोक-हृदय बनता है।

हमारा भारत भी कई जनपदो मे विभक्त है और इसके प्रत्येक जनपद की कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। फिर भी सारे देश का समवेत स्वर एक ही है। भारतीय सस्कृति एक है। हमारे पूर्वज अति प्राचीन काल से जो पुनीत सास्कृतिक निधि सचित करते चले आ रहे हैं उसपर सबका समानाधिकार है। वह प्रत्येक जिज्ञासु विदेशी के लिए भी सुलभ है। भारत गावों का देश है। इस गावो के देश के गीत भी निराले हैं। इन गीतों मे भारतीय

संस्कृति रमी हुई है । लोकगीतों की यही सबसे बड़ी महिमा है । प्रत्येक जन-पद का मर्मनाद एक ही है और यही कारण है कि भारतीय लोकगीत भी एक प्राण है । हमारे देश के ये गीत हमारे प्राचीन मनीषी जीवननिर्माताओं के सुर में सुर मिलाकर बोलते हैं ।

राजस्थान लोकगीतों का भण्डार है । यहाँ हर प्रकार के एवं हरेक अवसर के अगणित लोकगीत प्रचलित हैं । इस जनपद में ऐसे लोगों की भी बहुत बड़ी संख्या है, जिनका पेशा ही विविध प्रकार के लोकगीत गाना है । यहाँ के लोकगीत बहुत बड़े एवं बहुत छोटे दोनों प्रकार के हैं । बहुत से लोक-गीत महिलाओं के गाने के हैं और बहुत से पुरुषों के । यहाँ धार्मिक, ऐतिहा-सिक सभी प्रकार के प्रचुर गीत लोक-प्रचलित हैं, इन सब का समुचित परिचय देने के लिए एक विशाल ग्रन्थ की आवश्यकता है । अभी तक राजस्थानी लोकगीतों की एक झलक सी ही दिखाई गई है । इनके समुचित संकलन सम्पादन के लिए कठोर तपस्या की जरूरत है । इस लेख में राजस्थानी महिलाओं के एक गीत की सांस्कृतिक विशेषता पर विचार किया जाता है । इस गीत का नाम "पीळो" है और यह राजस्थान का मांगलिक गीत है ।

राजस्थान में पीळो शब्द का सामान्य अर्थ "पीले रंग का" है । परन्तु यहाँ इस शब्द का अर्थ कुछ विशेष है पीळो[1] राजस्थानी महिलाओं के ओढ़ने के उस वस्त्र का नाम है जिसे केवल पुत्रवती स्त्रियाँ ही ओढ़ती हैं । राजस्थानी महिलाओं के ओढने कई प्रकार के होते हैं । उनके नाम पीळो, पोमचो, चूनड़ी, लँरियो,[2] धनख, इकरग, पँवरी डुपट्टो, धनसवाए, रुपेरी आदि हैं । इनमें भी रग, बँधाई एवं छपाई के हिसाब से कई प्रकार के होते हैं । राजस्थान में इनसे सम्बन्ध रखने वाले लोकगीत भी बहुत गाये जाते हैं । उन लोकगीतों के नाम भी वे ही हैं जो कि वस्त्रों के हैं । जैसे चूनरी सवल्यो ही कहलाती हैं । इसी तरह लेरियो गीत सम्बन्धी जनगीत लँरियो कहा जाता है । इन सब में पीलो और चूनडी के पीछे जन-जीवन की झाँकी है । पुत्रवती स्त्री पीलो ओढती है । भात के समय भाई अपनी बहिन को चूनड़ी ओढ़ाता है । सावण में हर

1. (प्रकृत रूप, कम से कम मेवाड़ में तो, इस शब्द का पीळो नहीं पीळियो है । पीळो शब्द गुण वाचक विशेषण मात्र है उससे सज्ञा बनाने के लिए इयो प्रत्यय जोड जाना हमारे विचार में राजस्थानी व्याकरण के अनुसार आवश्यक है ।)
2. (शुद्ध प्रकृति रूप लहरियो । पृ० मे०)

राजस्थानी महिला 'लंरियो' ओढ़ना चाहती है। पुत्रजन्म के पूर्व 'पोमचो' ओढ़ा जाता है। इन वस्त्रों की बंधाई एवं छपाई तथा रंगाई भी एक कला है। यह कला राजस्थान की एक विशेष चीज है। साथ ही राजस्थान का यह एक प्रमुख गृह भी है।

सबसे पहले यहाँ राजस्थान का लोकगीत पीळो हिन्दी सहित प्रस्तुत किया जाता है। इस गीत की धुन भी इसी के नाम पर है। पूरा गीत इस प्रकार है।

(१)

सांवण बाडी बाइया जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, भादूडै करघो छे निनाण जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं केशरी रँगाद्यो जी ॥१॥
आस्योज बाडी फूल भरी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, कातिग करघो छे कपास जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं नारगी रँगाद्यो ॥२॥
लोढणहालो लोढणो जी गडमारू जी,
गुण सायर ढोला, पीनी चतरसुजान जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं केसरी रँगाद्यो जी ॥३॥
कात्यो छै नानी मावसी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, माय अटेरघो छै सूत जी,
बाइ का बीरा, पीलो धण नैं केशरी रँगाद्यो जी ॥४॥
ताणो तो तणियो मेहतै गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, नळा ए भरघा अजमेर जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं नारगी रँगाद्यो जी ॥५॥
बणियो तो गड तलहटी जी गडमारू जी,
गुण सायर ढोला, रंगियो तो जैसलमेर जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं केशरी रँगाद्यो जी ॥६॥
माय सखीरी बूँदडी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, जीरै हरी भात जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं नारंगी रँगाद्यो जी ॥७॥
पल्ला तो पल्ला पधराजो गडमारू जी,

गुणसायर ढोला, दिन दिन चाढ इताव जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं केसरी रँगाद्यो जी ।।८।।
रग्यो-रँगायो म्हे सुण्यो गढमारू जी,
गुणसायर ढोला, जच्चा कै महल पहुचाय जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नै नारगी रँगाद्यो जी ।।९।।

(२)

हरिए किनव को मामरो जी गढमारू जी,
गुणसायर ढोला, पगनूठ्या री चीर जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं केशरी रँगाद्यो जी ।।१०।।
गल मैं मखमल कांचवो जी गढमारू जी,
गुणसायर ढोला और मोतियन का हार जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं नारगी रँगाद्यो जी ।।११।।
पै'र ओढ जच्चा नीसरी जी गढमारू जी,
गुणसायर ढोला, सहर बिसाऊ कै बजार जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं नारगी रँगाद्यो जी ।।१२।।
लोग महाजन पूछियो जी गढमारू जी,
गुण सायर ढोला, कुण्या जी री कुलबहू जाय जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं नारगी रँगाद्यो जी ।।१३।।
सुसरा जी री जच्चा कुळबहू जी गढमारू जी,
गुणसायर ढोला, कोटण ममधी री धीय जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं केशरी रँगाद्यो जी ।।१४।।
रामलाल घर चँदरावली जी गढ मारू जी,
गुणसायर ढोला, छोटँ गोमँ री माय जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं नारगी रँगाद्यो जी ।।१५।।
हाट मोही हटवा मोह्या जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, बलद गुमाया भेडू जाट जी,
बाई का बीरा, पीलो धण नैं केशरी रँगाद्यो जी ।।१६।।
लेखो तो करता कायथ मोह लिया जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, सरवर मोही पणिहार जी,

बाई का बीरा, पीलो घण नं नारंगी रँगाद्यो जी ॥१७॥
राजा की राणी यूँ कवै जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, जच्चा की बगस्या म्हे माण जी,
बाई का बीरा, पीलो घण नं केशरी रँगाद्यो जी ॥१८॥
जच्चा की कूख सुलागणी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, नित उठ जलमं या पूत जी,
बाई का बीरा, पीळो घण नं नारगी रँगाद्यो जी ॥१९॥
जलवा तो पूजार पाछी वावडी जी, गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, लागं सासू जी के पाय जी,
बाई का बीरा, पीळो घण नं केशरी रँगाद्यो जी ॥२०॥
सीळी हो ए सपूतियाँ जी गडमारू जी,
बाई की भाभी, नित उठ जणज्यो यँ पूत जी,
बाई का बीरा, पीळो घण नं केशरी रँगाद्यो जी ॥२१॥

हिन्दी भावार्थ

(१)

सावण मास मे खेत मे बीज डाला गया और भाद्रपद मे उसे निराया गया। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग के पीले ओढने का बडा चाव है। हे मेरी ननद के भाई, मुझे केशरी रग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥१॥

आश्विन मे खेत मे फूल निकले और कार्तिक मे कपास तैयार हुआ। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, हे मेरी ननद के भाई, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥२॥

कपास लोढने वाले ने कपास लोढी और चतुर सुजान ने उसकी पिनाई की। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का ओढ़ना मँगवा दो ॥३॥

नानी और मौसी ने उसकी कताई की तथा माता ने सूत को अटेरा। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥४॥

मेड़ते मे उसका ताना तना गया और उसकी नाळ अजमेर मे भरी गई। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति मुझे केशरी रंग का पीला ओढना मँगवा दो ॥५॥

यह गढ़ (चित्तौड़) की तलहटी में बुना गया और जैसलमेर में उसकी रँगाई हुई। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे नारंगी रंग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥६॥

उसमें लखीणी बूँदों की बँधाई हुई वह जीरे की भाँति का तैयार हुआ। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे केशरी रंग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥७॥

उसके पल्लों पर घुघरू लगाए गए और उसके बीच के भाग में चाँद बनाए गए। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे नारंगी रंग का पीला ओढना मँगवा दो ॥८॥

पीळा तैयार होकर आया और उसे चच्चा के महल में पहुँचाया गया। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे केशरी रंग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥९॥

(२)

हरे रंग का घाघरा पहिना और पीले रंग का ओढना ओढा। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे केशरी रंग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥१०॥

कसुमल रंग की (लाल) कांचली पहिनी और गले में मोतियों का हार पहिना। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे नारंगी रंग का पीला ओढना मँगवा दो ॥११॥

जच्चा वस्त्राभूषण धारण करके तैयार हुई और वह जलाशय पूजन के लिए अपने शहर के बाजार में होकर बाजे तथा मंगल गीत के साथ (जलवा के लिए) निकली। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे केशरी रंग का पीला ओढना मँगवा दो ॥१२॥

महाजन लोगों ने उसे देखकर पूछा, यह किसकी कुलवधू जा रही ? हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे नारंगी रंग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥१३॥

यह अपने श्वसुर की कुलवधु है और कोट वाले समधी की बेटी है। हे मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे केशरी रंग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥१४॥

यह अपने पति की चन्द्रावली है और छोटे शिशु की माता है। मेरे गुणी एवं चतुर पति, मुझे नारंगी रंग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ॥१५॥

उसे देखकर दुकानें प्रसन्न हो गईं, दुकानदार प्रसन्न हो गए जाट इतना प्रसन्न हुआ कि उसे अपने बैलों तक की सुध न रही

ग्रौर वे कहीं खोए गए। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रंग का पीला ग्रोढ़ना मँगवा दो ॥१६॥

उसे देखकर हिसाब की फैलावट करते हुए कायस्थ प्रसन्न हो गए ग्रौर कुएँ की पनिहारियाँ प्रसन्न हो गई। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ग्रोढ़ना मँगवा दो ॥१७॥

राजा की रानी ने उसे देखकर कहा, मैं जच्चा की (धर्म) बहिन बनूँगी। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ग्रोढना मँगवा दो ॥१८॥

इस जच्चा की कूख सुलक्षणवती है। यह हर समय पुत्र को जन्म देती है। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ग्रोढना मँगवा दो ॥१९॥

जच्चा जलाशय का पूजन करके वापिस घर ग्राई ग्रौर उसने ग्रपनी सास के चरण छूए। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ग्रोढ़ना मँगवा दो ॥२०॥

उसकी सास ने कहा तेरा चित्त सदा प्रसन्न रहे। (मूल मे शब्द 'सीवो' पड़ा है जिसका जो सभवत: संस्कृत शीलवती बनाद स०) तू पुत्रवती हो। हे मेरी बेटी की भावी, तू सदा पुत्र को ही जन्म देना। हे मेरी ननद के भाई, मुझे केशरी रग का पीला ग्रोढना मँगवा दो ॥२१॥

इस लोकगीत के दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध मे पीलो ग्रोढ़ने की सारी प्रक्रिया कपास की बुनाई से लेकर उसके गोटा किनारी लगाने तक का पूरा विवरण दिया है। उत्तरार्द्ध मे उसे ग्रोढ कर प्रसूता के जलाशय पूजन का वर्णन है, जो कि राजस्थान का एक प्रसिद्ध एव महत्वपूर्ण लोकाचार है। विषय-वर्णन गीत की महत्ता के ग्रनुसार ही है। मेड़ता, ग्रजमेर, [illegible] तथा जैसलमेर के साथ पीळो ग्रोढ़ने का सम्बन्ध दिखाकर राजस्थान जनपद का एकात्म्य प्रकट किया गया है। जलाशय पूजन के लिए जाते हुए प्रसूता की साज सज्जा को देखकर लोगों का प्रसन्न होना इस विषय की सर्वजनोपयोगिता प्रकट करता है। इसमे भारतीय जीवन का उच्चादर्श है, "न कर [illegible]" राजा की रानी तक पुत्रवती को देख उसकी बहिन बनने की ग्रभिलाषा करती है। गीत मे ढोला एव मारवणी प्रकट व्यक्तिवाचक होकर भी जातिवाचक के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। राजस्थान मे ढोला एव मारवणी के जीवन के गीत भी बहुत ज्यादा गाये जाते हैं। इनके व्यक्तित्व की विशेषता के कारण ये [illegible]

और नायिका के रूप में प्रयुक्त हुए है। गीत के याड़ी, बीरो, घरण, बून्दी, चरणतूठियो, काचवो, जलवा आदि शब्दों में राजस्थानी जनजीवन का राग है।

राजस्थान मे पीलो नामक यह एक ही गीत नहीं है। यहाँ इस नाम के विविध ढालों मे अनेक गीत हैं। उनका विषय वर्णन भी लगभग एक ही है। यहाँ उनमे से कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं जिससे कि राजस्थानी जनता ने इस विषय को कितना महत्वपूर्ण माना है इसका कुछ अनुमान हो सके।

(१)

दिल्ली ए सहर से सायबा पोत मँगावो जी,
तो हाथ इकीसी गज बीसी गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥१॥

दिल्ली ए सहर सै सायबा मोडी बुलावो जी,
तो नान्ही सी बूंदी बँधावो गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥२॥

अल्लां तो पल्लां सायबा मोर पपैया जी,
तो बिच बिच चांद छपावो गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥३॥

राय आगरण बिच सायबा रणी ए घलावो जी,
तो छज्जा की छांय रँगावो गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी॥४॥

आप सरीसा दोय छैल बुलावो जी,
तो दे फटकार सुकावो गड मारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥५॥

रँग्यो ए रँगायो सायबा होयो ए सँजोतो जी,
तो जच्चा कै म्हैल पूँचावो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥६॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा पाटै पर बैठी जी,
तो घोर-जिठाण्या मुगडो मोड्यो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी॥७॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा पाटै पर बैठी जी,
तो सास नणद भोन सरायो गड मारू जी,
पीळो भल ओढो जी॥८॥

के बहुमड थारी माव रँगायो जी,
तो के मतमाला में भायो बहुमड म्हारा जी,
पीळो भल ओढो जी ॥६॥

ना सासू जी म्हारी माय रँगायो जी,
तो ना मनसाळा सें आयो सासू म्हारा जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१०॥

सासू को जायो नणद बाई को बीरो जी,
तो पीळो म्हारो मनभरियो रँगायो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥११॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा सरवर चाली जी,
तो सगळो सहर सरायो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१२॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा म्हैल पधारी जी,
तो पीळो म्हारो माए जी सरायो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१३॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा म्हैल पधारी जी,
तो कूण निरासी नजर लगाई जच्चा म्हारी जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१४॥

आरयाँ ना चोघें म्हारी जच्चा मुखडैं ना बोले जी,
तो जच्चा को राजन बिलख्यो डोलै गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१५॥

दिल्ली ए सहर सें सायबा बँद बुलावो जी,
तो जच्चा को हाथ दिखावो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१६॥

भाडै तो भाडै सायबा म्हारे रुपैया जी,
तो हाथ दिखाई म्हारे पचासा गड मारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१७॥

आप चढ़ए को सायबा घुड़लो बकसावो जी,
तो जच्चा कै जी की बधाई गडमारू जी,
पीळो मल ओढो जी ॥१८॥

आएया भी चोथै म्हारी जच्चा मुखड़ै भी बोलै जी,
तो जच्चा को राजन हरख्यो डालै गडमारू जी,
पीळो मल ओढो जी ॥१६॥

तूँ छै बंदए का बेटा असल ठगोरो जी,
तो म्हारो भोलो सो राजिन ठग लीन्यो गडमारू जी,
पीळो मल ओढो जी ॥२०॥

तूँ छै साजन की बेटी असल चिरताळी जी,
तो छल कर बैंद बुलायो जच्चा राणी ए,
पीळो मल ओढो जी ॥२१॥

इण बैंदा नै सायबा सीख दिरावो जी,
तो जतां नै मेड़तो बकसावो गडमारू जी,
पीळो मल ओढो जी ॥२२॥

(२)

धण बोलै ढोलो सुणै जी,
सुण म्हारा भँवर सुजान ।
मोय चनणूख्यो री मन रली जी,
लेद्यो म्हारी लाल नणद रा बीर ॥
यो चनणूख्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन बसै जी ॥ १ ॥

गैली ए मूरख बावली जी,
थे धण असल गँवार ।
बिन जायां थ्यूँ ओढिया जी,
हँसै ए महाजन लोग ॥
यो चनणूख्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन बसै जी ॥ २ ॥

मन कुंमली म्हैला चढी जी,
हरख नही मन मांय।
राजिन मानी नही बीननी जी,
तो भट जलम्या ए म्हारी माय ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ॥ ३ ॥

कुण्या रै ग्रागै बीनती जी,
कूण सुणंगो पुकार।
कुण्या रै ग्रागै बीनती जी,
तो कूण सुणंगो पुकार ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारै मन बस्यो जी ॥ ४ ॥

वेमाता ग्रागै बीनती जी,
राम सुणंगो पुकार ॥
वेमाता ग्रागै बीनती जी,
तो राम सुणंगो पुकार ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारै मन बस्यो जी ॥ ५ ॥

सूती छी सुख नींद मैं जी,
तो सुपनो भयो ए अजाल ॥
सूती छी सुख नींद मैं जी,
तो सुपनो भयो ए अजाल ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारै मन बस्यो जी ॥ ६ ॥

साठा रै देस्या गोवन सांथिया जी,
तो आगण पूरयो जी चौक।
गोदी मैं देस्यो गीगलो जी,
तो सिर चनणूठ्या गे जी चीर ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारै मन बस्यो जी ॥ ७ ॥

मै नो मे दश लागिया जी,
हींई ए होलरिया री मास ।
पुन्यूं तो पधं पड़वा ध्यानणी जी,
जायो धण लाडण पूत ॥
यो चनणूड्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारं मन वस्यो जी ॥ ८ ॥

म्हे चनणूठ्यो गोरी लायस्यां जी,
थे म्हानं भांति बताय ।
म्हे चनणूठ्यो गोरी लायस्यां जी,
तो थे म्हानं भात वताय ॥
यो चनणूठ्य जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारं मन वस्यो जी ॥ ९ ॥

ताणो तो तणियो मेड़तं जी,
नळा ए भरचा ग्रजमेर ।
बणियो तो गढ री तलहटीजी,
तो रँगियो सायब जैसलमेर ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारं मन वस्यो जी ॥ १० ॥

ग्रल्ला तो पल्लां घूघरा जी,
बिच बिच चाद छपाय ।
माय लखीणी बूँदड़ी जी,
तो जीरं हुंदी जी भात ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारं मन वस्यो जी ॥ ११ ॥

हरिए किसब को घाघरो जी,
सिर चनणूठ्यो रो चोर ।
गळ मैं कसूमल काचवो जी,
तो गळ मोतियन को जी हार ॥
यो चनणूठ्या जी केसरिया ग्रो सायब,
म्हारं मन वस्यो जी ॥ १२ ॥

पैर मोड़ जच्चा नीसरी जी,
शहर बिसाऊ कै बजार।
लोग महाजन पूछियो जी,
तो कूण्या जी री कुळबहू जाय ॥
यो चनणूऴ्यो जी केसरिया थो सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ॥ १२ ॥
सुसरा जी री कुल बहू जी,
कोटए समधी री धीय।
रामलाल घर चँदरावळी जी,
तो छोटै गीगै की जी माय ॥
यो चनणूऴ्यो जी केसरिया थो सायब
म्हारै मन वस्यो जी ॥ १३ ॥
हाट मोही हटवा मोह्या जी,
सरवर मोह्या जी हस।
लेखो तो करता कायथ मोह लिया जी,
तो बलद गुमाया भेदू जाट ॥
यो चनणूऴ्यो जी केसरिया थो सायब
म्हारै मन बस्यो जी ॥ १५ ॥
राजा की राणी यूँ कवै जी,
जच्चा की वणस्या म्हे भाण।
जच्चा की कूख सुलाखणी जी,
जो नित उठ जलमँगी पूत ॥
यो चनणूऴ्यो जी केसरिया थो सायब,
म्हारै मन बस्यो जी ॥ १६ ॥
जळवा तो पूजर पाछी बावड़ी जी,
लागै सासू जी कै पाय।
सीली तो हो ए सपूनियां जी,
तो नित उठ जणज्यो थे पूत ॥
यो चनणूऴ्यो जी केसरिया थो सायब,
म्हारै मन बस्यो जी ॥ १७ ॥

मन हरखी म्हैला चढी जी,
हरख घणो मन मांय ।
राजिन मानी म्हारी बीनती जी,
तो भल जलस्या ए म्हारी माय ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया श्रो सायव,
म्हारै मन वस्यो जी ॥ १८ ॥

इनके अतिरिक्त और भी कई लय में ये गीत गाये जाते हैं। इन गीतों के बोल प्राय. समान ही रहते हैं फिर भी इनकी धुनें कई प्रकार की होती हैं। यह लोक सगीत की विशेषता है। एक पीलो गीत राजस्थान के प्रसिद्ध लोक गीत "कूंजा" की लय पर है। उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

धण बोलै ढोलो सुणै जी,
सुण म्हारा भँवर सुजान ।
म्हे चनणूठ्यां री मन रळी जी,
लेद्यो नणद बाई रा बीर ॥
भँवर पीळो हळदी को ल्याद्यो जी,
चतर पीळो केसरिया ल्याद्यो जी ॥ १ ॥

इसी प्रकार एक पीलो लोक गीत राजस्थान के डफ की राग पर भी गाया जाता है। उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है।

पहलो मास गोरी धण नै लाग्यो
दूजो मास प्यारी धण नै लाग्यो
बालभोल जिय जावै रमिया
पीलो हलदी को,
पीलो हलदी को रंगाद्यो जी बालम रसिया
पीलो हलदी को ॥ १ ॥

राजस्थान का एक पीलो लोक गीत यहा के प्रसिद्ध गीत घूमरी की राग मे गाया जाता है। उसके प्रारम्भ के बोल इस प्रकार हैं—

घर घर मारूजी गावै छै गीत,
मनोखो पीलो म्हे सुण्यो जी म्हारा राज।
घर घर सायधण जाया छै पूत,
कोई थे धण जाई डीकरी जी म्हारा राज।

एक ही लोकगीत का इतनी हानी से स्पष्ट अर्थ प्रकट करता है कि इसमें राजस्थानी महिला समाज का कितना गहरा प्रदर्शन है। वास्तव में यह भारतीय राजस्थानी नारी का शुद्ध स्वाभाविक उद्गार है। इसके साथ ही प्रसूता एवं नवजात शिशु के सम्बन्ध में भी बहुत बड़ी संख्या में लोकगीत प्रचलित हैं। ये स्त्र ऊँची श्रेणी के साहित्यिक गीत हैं। इनमें भी जो शिशु सम्बन्धी गीत हैं उनमें तो रस की धारा बड़ी ही वेगवती है। जब ये गीत गाये जाते हैं तो मानो वात्सल्य रस का प्रवाह सा उमड़ पड़ता है। बड़े-बड़े कवियों के वात्सल्य सम्बन्धी काव्य में भी वैसी रसधारा मिलनी कठिन है। यही जनकाव्य की सब से बड़ी विशेषता है। इन गीतों में हमें लोक संगीत का अमृत पीने को तो मिलता ही है साथ ही लोक हृदय का उज्ज्वल चित्र भी प्रकट होता है। मानव हृदय-तन्त्री के स्पन्दन सुकोमल तार इन गीतों की धुनों में झंकृत होते हैं। ये सब गीत राजस्थानी महिला समाज के पीलो नामक गीत में समन्वित हैं क्योंकि इस गीत में नारी समाज की अन्तरतम कामना पनपती होती है।

इस गीत में भारतीय नारी के अन्तरतम की अभिलाषा प्रगट हुई। वह कुलवधू बनना चाहती है, वह माता का गौरवमय पद पाना चाहती है। पुत्रवती बनना ही उसके जीवन की चरम सफलता है। पूर्व और पश्चिम का यही विभेद है। पश्चिम की नारी परम सुन्दरी बनना चाहती है। उसके लिए वधु एवं माता बनना उतना महत्व नहीं रखता। इसके विपरीत भारतीय नारी के अन्तरतम की अभिलाषा है, मातृपद पाना। भारतीय नारी की इसी अभिलाषा का प्रतीक है "पीलो ओढ़ना।" वह अपना सर्वाधिक सौन्दर्य भी पीलो ओढ़ने में ही अनुभव करती है। यही इस लोकगीत में भी प्रकट हुआ है। जब जच्चा पीलो ओढ़ कर जलाशय पूजन के लिए जाती है, तो सभी उसे देख कर परम प्रसन्न होते हैं। इससे भारतीय प्रजा के हृदय की भावना प्रकट होती है। यही भावना भारतीय साहित्य में भी स्थान-स्थान पर प्रकट की गई। साहित्य समाज का दर्पण होता है। नीचे इस विषय के उदाहरण देखिए। थोड़े से शब्दों में कितनी गहरी बात कही गई है—

माता भवतु समनाः —अथर्ववेद

मातृदेवो भव —तैत्तिरीयोपनिषद्

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता—दुर्गासप्तशती

भारत के विधि निर्माता मनु ने भारतीय नारी का जो यशोगान किया है उसके पीछे भी भावना काम कर रही है। यह यशोगीत भारतीय संस्कृति के प्राणों का स्पन्दन है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः ।।
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषुत्सवेषु च ।।
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ।।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ।।

साथ ही मनु के निम्न वचन भी इस विषय में विशेष ध्यान देकर मनन करने योग्य हैं ।

एतावानेव पुरुषो यज्जायाऽऽत्मा प्रजेति है ।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृतांगना ।।
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ।

ऊपर कहा गया है कि भारत का समवेत स्वर एक ही है। जो विचार धारा हमारे साहित्य में प्राचीन काल से चली आ रही है, उसी की राग अब भी भारतीय प्रजा गाती है। भारत के सभी जनपदों के लोक गीत इस दृष्टि से एक प्राण हैं, ऊपर बोली गीत के विविध रूपों में भारतीय नारी की जो अमर अभिलाषा रमी हुई है उसकी गूंज सारे देश मे पाई जाती है। पुत्र की कामना के गीत भारत के सभी जनपदों में मंगल के साथ गाये जाते हैं। यहाँ इस विषय मे एक उदाहरण आगे प्रस्तुत किया जाता है।

उत्तर प्रदेश का एक लोग गीत देखिए। इस गीत की वस्तु के अनुसार एक भारतीय नारी पुत्र की कामना से तपस्या करती है और फिर अपनी मनोकामना सिद्ध करती है। इस गीत का भाव बड़ा गभीर है। पूरा गीत इस प्रकार है—

गगा जमुनवाँ के बिचवा,
तेइवयाँ एक तपु करइ हो ।
गंगा अपनी लहर हमे देनिउ,
मैं मंझधार डूबित हो ।।१।।

की तोहि सास समुर दुख,
कि नेंहर दूरि बसें ।
तेवई की तोरे हरि परदेस,
कवन दुख डूबउ हो ।। २ ।।
गगा ना मोरे सास समुर दुख,
नाही नेंहर दूरि बसें ।
गगा ना मोरे हरी परदेस,
कोखि दुखि दुख डूबब हो ।। ३ ।।
जाहु तेवइया घर अपने,
हम न लहर देबर हो ।
तेवई आजु के नवए महिनवा,
होरिल तोरे होई हैं हो ।। ४ ।।
गगा गहबरि पियरी पहउवें,
होरिल जब होइ हैं हो ।
गगा देहु भगीरथ पूत,
जगत जस गावइ हो ।।५ ।।

लोकगीत भात का सांस्कृतिक अध्ययन

लोकगीतो मे जनजीवन का स्वाभाविक एव सरल रूप प्रकट होता है। यहाँ किसी प्रकार की कृत्रिमता का निशान भी नही रहता। अतः किसी प्रदेश की जनता के हृदय को पहिचानने के लोकगीत उत्तम साधन सिद्ध होते हैं। ऐसे गीतो मे लोक हृदय की आशा-अभिलाषा, चाव-उमग एवं दु.ख-दर्द आदि सभी कुछ परिलक्षित होते हैं।

राजस्थान तो लोकगीतो का रत्नाकर है। यहां अगणित लोकगीत हैं। साथ ही उनमे रूप तथा विषय की दृष्टि से वैविध्य भी है। इसी प्रकार विवाह के गीतो की सख्या भी काफी बड़ी है। वैवाहिक आयोजन से सम्बन्धित एक भी ऐसा दस्तूर नहीं, जिसके विषय मे एक अथवा अनेक गीत न हो। सभी परम्पराएँ गीत गाकर पूर्ण मागलिक रूप में निभाई जाती हैं।

विवाह के गीतों मे ही एक विशिष्ट वर्ग 'भात' के गीतो का है। भाई अपनी बहिन के पुत्र अथवा पुत्री के विवाह के समय भात भरता है। भात भरना बडा ही पुण्य कार्य माना गया है। इस अवसर पर भाई अपनी बहिन को वस्त्र, आभूषण एव रुपये आदि भेंट करता है। राजस्थानी गृहस्थ जीवन मे यह एक विशेष अवसर है। इसके सम्बन्ध में अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। ये गीत बड़े ही सरस तथा मार्मिक हैं। इनमे से एक गीत का सास्कृतिक अध्ययन किया जाता है। यह गीत कुछ बड़ा सा है और भात भरने का अच्छा

चित्र प्रकट करता है। साथ ही इसमे साधारण सा कथासूत्र भी है। सर्व-प्रथम गीत अपने मूल रूप मे दिया जाता है—

भात

काळी काळी म्रो बीरा काजळिया री रेख,
घटा प पचाधी बीरा ऊमटी जी।
जेठा रै म्रो बीरा पहलै जी मास ज म्रो,
मिरघा पीया म्रो बीरा छाक लिया जी।
साढां रै म्रो बीरा दूजै जी मास ज म्रो,
हाळीडा हळ बीरा जोड़िया जी।
सावणियं रै म्रो बीरा अगणै जी मास ज म्रो,
धोरा धामण म्रो बीरा मुक रयो जी।
भादूडं रै म्रो बीरा चोथै जी मास ज म्रो,
बेलडियाँ म्रो बीरा फळ लागिया जी,
गहरा बाजै म्रो बीरा बिलोवणा जी।
श्रासोजा रै म्रो बीरा पंचवै जी मास ज म्रो,
लाख मिट्टै म्रो बीरा बाजरो जी।
कातिगड़ै रै म्रो बीरा छट्ठ जी मास ज म्रो,
मूग चुग कोठा म्रो बीरा सैं भरया जी।

(२)

मगसरिया रै म्रो बीरा सतवै जी मास ज म्रो,
घण मूहनै पिव पालिगै जी।
मासरां म्रो सायब सात बरस की धीय ज म्रो,
थानै म्युंभा म्रो सायब क्यूं सरै जी।
इनो ए गोरी थारो जळहरजामी बाप ज ए,
राम दई थारी माय नें ए,
इनो ए गोरी थारो सागर बबर सो बीर ज ए,
भाई रखमण थारी भावजा जी,
इनो ए गोरी थारा ताऊ-चाचा की जोड़ ज ए,
काकी-ताता को ए गोरी भूमको ए।
इनो ए गोरी थारी मा की जाई भैण ज ए,
कद्रू रै घरांई गोरी झालरा ए।

म्हानैं श्रो सायब थैंन जुड़ाय ज श्रो,
मैं थारा करस्या बखाण ह्यों जी।
ल्यायो श्रो सायब पावटिया मुलाय ज श्रो,
गुड़ श्री तो भेली पूरी पान जी।

(३)

रळाया ए गोरी ढळती सी रात ज ए,
दिन तो उगायो थारं पी'र मे जी।
थाई थाई श्रो सायब-बाप-दादा री पोळ ज श्रो,
भेली बधाऊ वीरा भीत गं जी।
मिलगो श्रो वीरा जामण जायो वीर ज श्रो,
किसड़ं हरग वाई थे भाद्या जी।
म्हारं श्रो वीरा सात बरस की धीय ज श्रो,
थं की विड़द उतावळी जी।
रायां ए वाई थानै जिनया रा भात ज ए,
हरिया मूंग मरोड़ मे जी।
जीमा ए वाई वीरो-भंनड़ साथ ज ए,
जीम्या-जूठ्या बाई रस रया जी।
बैठ्या ए वाई तखत विछाय ज ए,
वीरो भंनड़ दोनूं बतळाइया जी।
करल्यो ए वाई लोका जी चार ज ए,
किसी ए करां बाई उढ़ावणी जी।
सुसरं नै श्रो वीरा खुल्ला ए कवाण ज श्रो,
सासू नै तील पचास की जी।
देवर-जेठां नै वीरा पिचरग पाघ ज श्रो,
चोर जिठाण्या नै वीरा पोमचा जी।
धीया रो श्रो वीरा भर-भर भात ज श्रो,
कवरां जोगी वीरा बीटळी जी।
तूठ्यो ए वाई सो परवार ज ए,
तूत चली घर श्रापणं जी।

(४)

सूती श्रो वीरा निस भर नीद ज श्रो,

देवर मगलो वीरा राळियो जी ।
करनी ए भावज वीरां री गुमान ज ए,
वीर वनीमी थारा ले रया जी ।
मनडं मे ग्रो वीरा ग्राई छं रीम ज ग्रो,
ले घडलो सरवर गई जी ।
सरवरिये री ग्रो वीरा ऊंची-नीची पाळ ज ग्रो,
एक चढूं दूजी ऊतरु' जी ।
भीणी भीणी ग्रो वीरा उडे छं गुलाल ज ग्रो,
म्हारं पीवर रं वीरा मारगां जी ।
रथ को ग्रो वीरा हो यो भिणकार ज ग्रो,
बळदा का बाज्या वीरा घूघरा जी ।
बायण को ग्रो वीरा भळकयो छं सेल ज ग्रो,
बळदा की चिलकी वीरा सीगटी जी ।
वीरा री ग्रो वीरा चिलकी पिचरग पाघ ज ग्रो,
भावजां रा चिलक्या चूडला जी ।
भावँ ग्रो वीरा कीडी को सो नाळ ज ग्रो,
विरत्या को ग्रो वीरा भूमखो जी ।
मनडं मे ग्रो वीरा धीरज धार ज ग्रो,
ले घडलो भर बावडी जी ।

(५)

घडलो ग्रो वीरा दियो ए उतार ज ग्रो,
जाय'र चढ गई वीरा डागळं जी ।
वजारा मे ग्रो वीरा डेरा जी ढाळ ज ग्रो,
लाल तम्बू वीरा ताणिया जी ।
के कोई ग्रो वीरा मुगल-पठाण ज ग्रो,
के सोदागर वीरा ऊतरयो जी ।
ना कोई ए बाई मुगल-पठाण ज ए,
ना सोदागर वीरा ऊतरयो जी ।
म्हे छा ए बाई वसदेवजी रा सींव ज ए,
राजीडं ग्ररजन जी रा बड-भानई जी ।
म्हे छा ए बाई सोदरा रा वीर ज ए,
कवर लाडेसर रा बाई मामला जी ।

एक वर श्रो देवर बायर श्राव ज श्रो,
थांनै श्रो दिराबूं मेरा भातई जी ।
विसारो ए भावज मनड़ै रो रौसा ज ए,
वै परवारा श्रागळा जी ।

(६)

भात ज ए बाई भरस्यां विसवा बीस ज ए,
सहर बजारां बाई उढावणी जी ।
बजारा मे श्रो बीरा नारेळां री भात ज श्रो,
छूंग-सुपारी बीरा वोघणी जी ।
पहली श्रो बीरा काकड़ियो उढ़ाय ज श्रो,
पाछै उढाई कूवा-बावड़ी जी ।
पहली श्रो बीरा पोळ उढाय ज श्रो,
पाछै गिगन पहरावणी जी ।
सुसरै नै बीरा खुल्ला ए कवाण ज श्रो,
सासू नै तीळ पचास की जी ।
देवर-जेठां नै बीरा पिचरग पाघ ज श्रो,
चोर-जिठाण्या नै बीरा पोमचा जी ।
धीया रो श्रो बीरा भर भर भात ज श्रो,
कवरां जोगी बीरा बीटळी जी ।
सायब नै श्रो बीरा पाचूं जी धोक ज श्रो,
हम भ्रण मोली बीरा चूनड़ी जी ।
देस्या ए बाई म्होर पचास ज ए,
रिपिया तो देस्या बाई क्रोड सै जी ।
भाएजी नै ए बाई चोळा-चूनड़ ल्याय ज ए,
म्हे परवारा बाई श्रागळा जी ।

स्पष्ट ही इस गीत की वस्तु कई भागों में विभक्त है। इन विभागों को ऊपर संख्या द्वारा प्रकट कर दिया गया है। प्रथम विभाग में जलागम से लेकर खेती का सम्पूर्ण विवरण है। इस कार्य में सात मास का समय लगा है। गीत मे प्रत्येक मास के लिए एक 'कड़ी' है। द्वितीय विभाग मे पति-पत्नी का वार्तालाप है। ये दोनो अपनी पुत्री का विवाह करने का निश्चय करते हैं और पत्नी के पीहर निमन्त्रण देने की चर्चा होती है। तृतीय विभाग मे गीत की नायिका अपने पीहर पहुंच कर अपने भाई को

पुत्री-परिणय हेतु निमंत्रित करती है। वहां भात की भेंट का विवरण है। चतुर्थ विभाग में नायिका अपने घर लौट आती है। विवाह का दिन निकट आ जाता है तब उसका देवर उसे ताना देता है कि उसका भाई नहीं पहुंच पाया है। इस ताने से वह दुखी होकर सरोवर चली जाती है और वहां चिन्तित अवस्था में अपने पीहर के मार्ग की ओर देखती है। उसे दूर से अपना भाई सपरिवार आता हुआ नजर आता है और प्रसन्न चित्त होकर वह अपने घर लौट आती है। पांचवें विभाग में उसके भाई के आने और उसके द्वारा देवर के ताने का उत्तर दिए जाने की चर्चा है। अन्त में छठे विभाग में भात भरने की क्रिया का वर्णन किया गया है। इस प्रकार संक्षिप्त रूप में विविध दृश्य प्रकट करके गीत की कथावस्तु संपूर्ण होती है।

प्रस्तुत लोकगीतिका की प्रस्तावना ध्यान देने योग्य है। उसमें कृषि कर्म द्वारा गृहस्थ-जीवन की सम्पन्नता का चित्र प्रकट किया गया है। इसके बाद पुत्री के विवाह की चर्चा आती है। गावों के लोग खेती में अच्छी पैदावार होने पर ही इस प्रकार के आयोजन करते हैं। अकाल के समय वहां विवाह-शादी का कार्य-क्रम भी मंद सा ही रहता है। राजस्थान के बहुसंख्यक 'बधावा' गीतों में घर की जो समृद्धि चित्रित की जाती है, उसी की एक झलक प्रस्तुत गीत के प्रारम्भ में दिखलाई देती है।

विवाह-प्रस्ताव के समय हम पति को पलंग पर और पत्नी को छोटे से 'मुड्ढे' पर विराजमान देखते हैं। यह चित्र बड़ा सुन्दर है। इसमें विचार-विमर्श की मुद्रा स्वयं ही बन जाती है और दाम्पत्य जीवन का एक विशेष पक्ष उभर कर सामने आता है। गीत में पीहर और सासुराल के अनेक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। इन सभी सम्बन्धों में सौहार्द की भावना व्याप्त है। असल में राजस्थानी लोकगीतों में सम्मिलित-परिवार के रस की राग समाई हुई है। यह राग बड़ी सरस और मधुर है। इसके पीछे समवेत स्वरों की शक्ति भी है। भारतीय गृहस्थ-जीवन का यह ध्येय रहा है कि विविध सम्बन्धों के लोग सुमधुर-बंधन के द्वारा शक्ति सम्पन्न बने रहें।

प्रस्तुत गीत 'मां बीरा' और 'ए बाई' के संबोधनों से आद्यन्त भरा-पूरा है। अनेक 'कड़ियों' (पंक्तियों का समूह) में तो ऐसा प्रयोग गीत को गति देने के लिए अथवा 'धुन' को बनाए रखने के लिए हुआ है। इन प्रयोगों पर ध्यान देने से सहज ही स्पष्ट होता है कि इस गीत में भाई बहिन के प्रबल प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित है। असल में भात भरने की प्रथा ही भाई-बहिन के प्रेम का उज्ज्वल रूप है। जब गीत-नायिका को देवर ताना देता

है तो उसको बड़ी मानसिक पीड़ा होती है और वह भाई का मार्ग देखने के लिए सरोवर की ओर चली जाती है। वेदना की इस तीव्रता में भी भाई-बहिन के प्रेम की वास्तविक स्थिति सामने आती है। पुत्री अथवा पुत्र के विवाह में उसका अपना भाई उपस्थित न हो, यह असहनीय है। राजस्थान में भाई के लिए 'वीर' शब्द का प्रयोग प्रचलित है। गीत में भी सर्वत्र 'वीर' शब्द ही ग्रहण किया गया है। यह प्रयोग सर्वथा सार्थक है। नारी के लिए पति रक्षा करने वाला है तो उसका वीर सुरक्षा करने वाला है। इन दोनों के बल से वह स्वयं भी सबला है।

गीत में मध्यकालीन राजस्थान का वातावरण चित्रित है। इससे गीत की प्राचीनता प्रकट होती है। कन्या के विवाह के लिए सात वर्ष की अवस्था समुचित मानली गई है और घर में तैयारी होने लगी है। कन्या का विवाह गृहस्थ-जीवन के लिए विशेष महत्व का विषय है। यह पुण्य कार्य है। फिर भी यह पुण्य कार्य समय की विचारधारा के अनुसार जल्दी ही कर लिया गया है। लोकगीतों में यह स्थिति अप्रकट नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त जब 'भतई' (भात भरने वाला) पूरे दल-बल के साथ अपनी बहिन के यहां आता है तो उसे देखकर किसी ससैन्य डेरा करने वाले सेनापति (मुगल-पठान) या सौदागर को स्मरण किया गया है। यह भी राजस्थान का मध्यकालीन चित्रण है। सेनापतियों का डेरा उस जमाने में जहां-तहां होता ही रहता था और मैदान में तम्बू तन जाते थे। व्यापारी लोग भी उन दिनों पूरे दलबल के साथ यात्रा करते थे। वे एक स्थान से माल खरीदते और दूसरे पर बेचते थे। कई बनजारों अथवा सौदागारों का तो राजस्थानी लोककथाओं में बड़ा नाम है। इनमें 'लक्खी बिणजारा' तो सुप्रसिद्ध है।

गीत का एक पक्ष और भी विशेष ध्यान देने योग्य है। भात के दस्तूर में भाई अपनी बहन के सब ससुराल वालों को वस्त्र भेंट करता है। इसके पहिले काकड, कूवा-बावडी और पोळ (दरवाजा) को वस्त्र ओढ़ाने के लिए भाई को कहा गया है। काकड (सीमा) में क्षेत्र विशेष के आरक्ष देवता का निवास माना जाता है। यह प्राचीन काल का यक्ष है, जो आज भी राजस्थान में अनेक नामों से लोक पूजित है। इसे वर्तमान में खेतरपाळ अथवा 'सेंई को भोमियो' कह दिया जाता है। किसी क्षेत्र विशेष में प्रवेश करते समय के आरक्ष देवता का सम्मान करना आवश्यक है। कूवा-बावडी का भी [illegible] देवता होता है। वर्तमान में इस पद पर हनुमान की प्रतिष्ठा है। इसी [illegible]ार घर का आरक्ष देवता दरवाजे पर स्थापित रहता है। इसका वर्तमान

रूप गणेश है। गीत मे इन तीनो स्थानो के आरक्ष देवताओ को वस्त्र भेंट करने के बाद अन्य किसी व्यक्ति को सम्मिलित करने का कार्य होता है। यह प्रसग भारतीय जनजीवन के प्रति प्राचीन पूजा-विधान की ओर सकेत करता है। कहा जाता है कि जब लाखा फूलाणी भात भरने के लिए चला तो उसने मार्ग के प्रत्येक वृक्ष को वस्त्र भेंट किया था। प्राचीन काल मे यक्ष देवता का निवास स्थान प्रायः कोई वृक्ष या जलाशय ही माना जाता था। राजस्थान मे अब भी वृक्ष-पूजा का बड़ा प्रचार है। इससे प्रकट होता है कि भारतीय सस्कृति समयानुसार ऊपरी रूप परिवर्तित करके अपनी मूल-आत्मा को सुरक्षित रखती रही है।

गीत मे कुल चार पात्र प्रकट है—पति, पत्नि, भाई और देवर। पति विचारशील और गम्भीर है। पत्नि आदर्श गृहणी है। भाई उदार तथा स्वाभिमानी है। देवर थोड़ा सा चचल एव विनोदी है। पात्रो का वार्तालाप गीत को गति प्रदान करता है। इस प्रकार गीत का नाटकीय तत्व बड़ा आकर्षक एव रोचक बन गया है। भात सम्बन्धी अन्य गीतो मे भी लगभग ऐसा ही वार्तालाप मिलता है। प्रस्तुत गीत के प्रारम्भिक अश को छोड़कर उसका शेष भाग इस गीत मे सहज ही देखा जा सकता है—

> थोे बीरा, भेरयो-भेरयो बरसँलो मेह, जामणजाया,
> नान्ही सी बूँद सुहावणी जी।
> थोरा बीरा, तूँ किस लाई छै बार, जामणजाया,
> सारा पहली नूतियो जी।

इस प्रकार अन्य लोकगीतो मे भी विषय के अनुसार कड़ियो की समानता देखी जाती है। इस सम्बन्ध मे 'पीळो' (पुत्रवती के ओढ़ने का वस्त्र) नामक अनेक गीतो की तुलना विशेष उपयोगी है। वर्ग विशेष के गीतो की यह आन्तरिक एव प्रासंगिक लोकहृदय की सरलता के साथ स्वर-सौन्दर्य के विभिन्न रूपो के प्रति अभिरुचि का भी परिचय देती है।

इस गीत मे कई शब्द इस प्रकार के प्रयुक्त हैं, जिनका प्रचलन आजकल सामान्य व्यवहार मे कम है। साथ ही अनेक प्रयोग ऐसे भी है, जो विशेष रूप से अर्थपूर्ण है। आगे ऐसे प्रयोगो का स्पष्टीकरण किया जाता है—

१ पचाधी—राजस्थान मे दिशाओ के अलग-अलग स्थानीय नाम है। उनमे एक दिशा का नाम 'पचाध' है। उत्तर और वायव्य कोण के बीच की दिशा को पचाध कहते है।

२. धामण—एक प्रकार की घास।

३. जळहरजामी बाप—जामी शब्द जन्म देने वाले पिता के लिए प्रयुक्त होता है। इसकी समता जीवनदाता एवं पोषणकर्त्ता जलधर (बादल) से की जाती है। लोकगीतों में इसका प्रयोग अत्यधिक है। बाप शब्द समानार्थक होने पर भी इसके साथ अतिरिक्त जुड़ गया है।

४. रातादेई माय—माता को रात्रि देवी विशेष कारण से कहा गया है। माता बहुत अधिक देती है। अतः उसे रात्रि की देवी बतलाया है। परन्तु यहां उसे कार्तिक की रात्रि के रूप में ग्रहण करना चाहिए। कार्तिक की रात्रि में किसान अपनी फसल घर लाता है और उससे घर भर जाता है। इसलिए कार्तिक की रात को विशेष महत्व प्राप्त है। स्पष्टीकरण हेतु निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:—

> कोयल आज मेरी रतादेई चायजं,
> रातादेइ कातिगड़ा री रात,
> अमल्या ऊणा-कूणा सैं भरै. (भात का गीत)

५. राई-रुकमण—भाई को कान्हकँवर कहा गया है और भाभी के लिए राई तथा रुकमण का प्रयोग है। राई एक गोपी का नाम है, जो राधा, रुक्मिणी तथा सत्यभामा आदि से भिन्न है। 'हरजसों' में राई की चर्चा अनेकशः आती है। गीतों में दुल्हे को 'राईवर' कहा जाता है। व्रतकथाओं में 'राई-दामोदर' का स्मरण होता ही है। प्रयोग द्रष्टव्य है—

> नारायण कै आरतं जी च्यार जणी रखवाळ,
> राई, रुकमण, राधकाजी, चोथी जशोदा हर की माय,
> नारायण को आरतो, हरे राम। (कातिग को हरजस)

६. बिड़द—राजस्थानी में 'विरुद' के अतिरिक्त वृद्धि का विकसित रूप भी 'बिड़द' ही है। वृद्धिवाचक प्रयोग देखिए—

> बिड़द-विनायक दीनू जी आया,
> आय पवास्या सीळं बड तळं।

यहीं विनायक के साथ वृद्धि का प्रसंग है। विवाह की सानन्द सम्पन्नता का श्रेय आरक्ष देवता विनायक को ही दिया जाता है। उसके साथ वृद्धि का रहना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में बिड़द शब्द का प्रयोग 'विवाह' के अर्थ में हो चला है। विवाह के प्रारम्भ में विनायक की स्थापना करने को 'बिड़द बंटाणो' कहा जाता है।

७. कबाग—'कबा' लम्बे और बड़े कोट को कहा जाता था। बादशाहों की पोशाक में 'कबा' का मुख्य स्थान था। उनकी नकल पर अन्य लोग भी इसे पहिनते रहे हैं। यह गीत 'भात' के दस्तूर का है। अतः इसमें अन्य भी कई मर्दाना तथा जनाना वस्त्रों के नाम आये हैं उनके नाम इस प्रकार है—तीळ (जनाना पोशाक इसमें ओढ़णो कबजो, तथा लहंगो या घाघरो तीनों सम्मिलित रहते हैं), पाग (मर्दाना वस्त्र, सिर पर धारण करने का। पाग इज्जत की निशानी है), पोमचो (स्त्री की ओढ़णी पुत्रवती महिला 'पीळो' ओढ़ती है और अन्य 'पोमचो'), धोटळी (चादर या दुपट्टा, बागो-धोटळी का संयुक्त प्रयोग बोलचाल में प्रचलित है), चूनड़ी (ओढ़णी, यह लाल रंग की होती है और इसमें बंधाई का काम पूरे स्थान पर रहता है। अन्य ओढ़णी के समान इसमें 'चोक' नहीं होता), घोळो (घाघरा अथवा लहंगा, चोळो-चूनड़ी तथा घाट-चोलो प्रयोग भी प्रचलित है। मीरा की यह पंक्ति प्रसिद्ध है-पचरंग चोळा पहर सखी मैं झिरमिट रमवा जाती।)

८ उड़ै छै गुलाल—मार्ग में जब जनसमूह तेज सवारी पर आता है तो धूल उड़ती है और आकाश में छा जाती है। गीत में मांगलिकता को ध्यान में रखकर उसे गुलाल उड़ाना कहा गया है। राजस्थानी के पुराने साहित्य में एक मुहावरा 'गुड़ी ऊछळी' भी अनेकश देखा जाता है। 'गुडी' छोटी ध्वजा और गुलाल दोनों को कहते हैं। विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर रंग और गुलाल का प्रयोग होता है। अतः 'गुडी ऊछली' मुहावरा आनन्द मनाने के अर्थ में लिया जाता है। जहाँ ध्वजा का प्रयोग होता है, वहाँ यह मुहावरा न बनकर अभिधेय अर्थ में ग्रहण किया जाता है।

९. बतीसी—भात के निमन्त्रण-स्वरूप भाई को 'बत्तीसी' भेंट की जाती है। इसमें गोळी, मोळी, चावळ, गुड़, खोपरा, नारेळ वस्त्र तथा कुछ नकद रखा जाता है। संभवतः वस्तुओं की संख्या के अनुसार इस भेंट का ऐसा नाम पड़ा है।

१० किरत्या को झूमको—कृतिका नक्षत्र। सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए महिला समूह की उपमा कृत्तिका नक्षत्र से दी जाती है। यह उपमान बड़ा ही सुन्दर है। इसी प्रकार गीत में लम्बी कतार को 'कीडी री सो नाळ' कहा गया है।

११. भेली वधाऊँ—गुड़ के चपटे और गोलाकार खण्ड को भेली कहते है। मांगलिकता के विचार से 'भेली' को

'वधारणा' (अर्थात् बढ़ाना) कहा है। इस प्रकार गीत में सर्वत्र मांगलिकता को दृष्टि मे रखा गया है। गीत में नायिका सरोवर पर से अपने घड़े को भर कर घर लौटती है क्योंकि खाली घडा लेकर आना अशुभ माना जाता है।

प्रस्तुत गीत के प्रारम्भ मे वर्षागम, कृषि-कार्य, घर की समृद्धि और कन्यादान रूपी यज्ञ के आयोजन का प्रसग है। इसमे प्राचीन भारत की इन्द्र-पूजा की झलक है। पौराणिक संदर्भ तो गीत में स्पष्ट ही है। साथ ही इसमे बौद्धकालीन भारत की अति विस्तृत यक्षपूजा भी अपने परिवर्तित रूप मे प्रकट है। मुसलमानी शासनकाल के भारतीय जीवन का सकेत भी इस गीत में प्राप्त है। इस प्रकार भारतीय सस्कृति के अनेक तत्वों का सुन्दर समन्वय इस राजस्थानी लोकगीत (भात) मे दर्शनीय है।

महाकवि कालिदास वर्णित शकुन्तला की विदाई और राजस्थानी लोकगीत

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है लोके वेदे च। जो चीज वेद अर्थात् शास्त्र में है वही लोक में भी है। यह सत्य ही कहा गया है कि भारतीय संस्कृति का एक चरण वेद (शास्त्र) में है तो उसका दूसरा चरण लोक है। यही कारण है कि यहाँ का लोक साहित्य और आभिजात्य साहित्य परस्पर घुले-मिले हैं। यह विषय विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

महाकवि कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक विश्वविख्यात है। इस नाटक के चौथे अंक में पारिवारिक जीवन का एक अत्यन्त सुकोमल प्रसंग चित्रित है। यही प्रसंग विविध लोक गीतों में भी अनेकश: वर्णित है। लोक गीत तो है ही प्रधानतया पारिवारिक जीवन के रस की राग। ऐसी स्थिति में महाकवि वर्णित इस प्रसंग की लोक गीतों से तुलना करना एक रोचक विषय है। प्रस्तुत लेख में राजस्थानी लोक गीतों के सन्दर्भ में इस विषय पर कुछ विस्तार से चर्चा करने की चेष्टा की जाती है।

ध्यान रखना चाहिए कि कालिदास की शकुन्तला एक आश्रम में निवास करती है और साधारण गृहस्थ का वातावरण इससे भिन्न प्रकार का होता है। इन दोनों में स्थान भेद और काल भेद अवश्य है परन्तु इनकी अन्तर्धारा लगभग समान ही है। देश-काल की भिन्नता को दृष्टि में रखते हुए हम

रिपिया देस्यां राजकंवर को दात, धरा गोरी,
कोई ज्यूं घर सोव्है आपणो जी ।
उठ बाई सीता, पैर पटोळो, कर गठजोड़ो,
थारा बाबोजी वचना हारिया जी ।
उठ बाई सीता, पैर पटोळो, कर गठजोडो,
थारा बापूजी वचनां हारिया जी ।
उठ बाई सीता, पैर पटोळो, कर गंठजोड़ो,
थारा वीरोजी वचना हारिया जी ।
कोट तळो वर बाई सीता, म्हारा पिवजी,
म्हारो जिवड़ो कायर हो रैयो जी ।
पाळी पोसी प्यायो काचो दूध, म्हारा पिवजी,
कोई आयो समधी ले गयो जी ।
राजकवर छो सान भाया वी भैण, म्हारा पिवजी,
कोई ऊभी सोव्है आँगणां जी ।
तू धरा इतरो कायर मतना होय, म्हारी गोरी,
कोई होनी आई ससार मे जी ।
पहली हारयो तीन भवन को राजा, धरा गोरी,
कोई पाई देई-देवता जी ।
पहली हारयो थारो जी बाप, धरा गोरी,
कोई पाछै म्हे भी हारिया जी ।
स्यावा स्यावा कई ए साजन की धीय, धरा गोरी,
कोई पाछो बदलो म्होड़ग्या जी ।

यह गीत कथात्मक है । इसमे एक कथा के रूप मे सगाई से लेकर विवाह तथा विदाई तक की चर्चा है । लड़की का पिता और लड़के का पिता चौपड़ खेलते है, जिसमे लड़की वाला अपनी पुत्री को हार जाता है फिर वह घर लौटता है तो उसकी पत्नी के साथ उसका वार्तालाप होता है, जो बड़ा ही हृदय द्रावक है । लोक मानस मे बेटी की सगाई के प्रसग को चौपड़ के खेल के रूप मे उपस्थित करके एक नवीन तथा रोचक उद्भावना की गई है ।

इस गीत से माता के हृदय की वेदना टपकी पड़ती है और वह सहज

ही महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के निम्न श्लोक का स्मरण करवा देती है—

> यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
> कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
> वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
> पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥५॥

श्लोक में महामुनि का यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है कि मुक्त वनवासी को ही इस प्रसंग पर इतनी पीड़ा अनुभव हो रही है तो गृहस्थ लोगों को न जाने बेटी को विदा करते समय कितना दुःख होता होगा! यही वेदना लोक गीत की इस एक पंक्ति में यह चली है—'म्हारो ढिवड़ो कायर होय रयो जी।' अन्त में यह कहकर बेटी की मां को धीरज दिया गया है कि समय पर पुत्री को ससुराल भेजना तो सदा की परम्परा है। वह स्वयं किसी घर की पुत्री है और वहाँ पत्नी के रूप में आई है। अब उस घर में इसी प्रकार पुत्र वधू भी लाई जाएगी। महाकवि कालिदास के निम्न श्लोक में भी परम्परा की ओर संकेत है—

> ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
> सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥६॥

मेंदी

मैंदी निपजे माळवें, आई ऊमरकोट,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
लाय उतारी चौक मे, सौदागर फिर फिर जाय,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
लेसी बामण-वाणिया, लेसी धींवड़िया री माय,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
सोवन सिलाड़ियाँ बाटस्या झीणै कपड़ छाण,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
रतन कचोळे घोळस्याँ, मांय गंगा जळ नीर,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
दो बायाँ दो बैनड़िया, दो भोजायां रो साथ,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।

वीरं री चिटली आंगळी, बाई रो डावो हाथ,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
राची वीरं री आंगली, सुरगा बाई रा हाथ,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
थों लो बाजीसा बिलोवणो, कर लीन्यो दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
थों लो भाभीजी हालरो, हिलाय दीनो दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल ।
थो लो माताजी रसोवडो, कर लीनो दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
थो लो बाई जी मालियो, पोढ लिया दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
थो लो सायणिया चोवटो, हम खेल्या दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
थो लो भोजायां ढूलिया, रम लीनी दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।
थो लो बाभीसा चानणो, घूमर लीनी दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल ।
थो लो वीरोसा गलियारो, दौड लिया दिन च्यार,
मैंदी म्हे बाई रे लाल।

(दोरो धीया नें सासरो)

प्रथम गीत मे जिस प्रकार 'चिरमठडी' के पौधे को प्रधानता दी गई है, इसी प्रकार उपर्युक्त गीत मे मेंहदी को प्रमुख स्थान दिया गया है। मेंहदी प्रेम और सुहाग की सूचक है। अतः वैवाहिक गीत मे उसे प्रधानता दिया जाना स्वाभाविक ही है।

गीत का पूर्व भाग मेंहदी बोने से लेकर उसके माडने तक की क्रिया को प्रकट करता है, जो स्पष्ट ही कन्या-जीवन की एक सरल झांकी सी दिखलाता है। इसका उत्तर भाग बडा ही मार्मिक है। स्थान एव स्वजनों के मोह का बधन बडा मजबूत होता है। उसे सहज ही नही छोडा जा सकता। यही वेदना इस लोकगीत मे ओत-प्रोत है। विदा लेती हुई बेटी के उपर्युक्त

वचन भिन्न वातावरण में स्थित कालिदास की शकुन्तला के निम्न-वाक्य सहज ही याद दिला देते हैं–

१. ताद, लदाबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्सं। (तात, लताभगिनी वनज्योत्स्ना तावदामंत्रयिष्ये।)

२. वणजोसिणि, चूदसंगता वि मं पच्चालिङ्ग इतोगदाहिं साहावाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी भविस्सं। (वनज्योत्स्ने, चूतसंगतापि मां प्रत्यालिङ्ग इतोगताभिः शाखाबाहुभिः। अद्यप्रभृति दूर परिवर्तिनी भविष्यामि।

३. ताद, ऐसा उडजपज्जन्त चारिणी गब्भमन्थरा मअ वहू जदा अणघप्पसवा होइ तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह।

(तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदानघप्रसवा भवति तदा

मह्यं कमपि प्रिय निवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ)।

४. वच्छ, किं सहवास परिच्चाइणिं मं अणुसरसि। अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। णिवत्तेहि दाव।

(वत्स, किं सहवासपरित्यागिनी मामनुसरसि। अचिर प्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहित त्वां तातश्चिन्तयिष्यति, निवर्तयस्व तावत्।)

तपोवन मे निवास करने वाली शकुन्तला के उपर्युक्त वचनों में यही मनोवेदना व्याप्त है, जो एक साधारण गृहस्थ की विदा लेती हुई बेटी के वचनों में इस गीत में समाई हुई है।

सूवटो

घोवरा ऊपर सूवटो जी बोल्यो
घण कतवारी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग वन मे सूवटो जी बोल्यो।
रोट्या तो पोवन्ती माता बाई री बोली,
माट्या री जीमाणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग वन मे सूवटो जी बोल्यो।
भैंम्यां तो दुवन्ता भाभा बाई रा बोल्या,
पाडा री पखदाणी घरे चाली, म्हारी माय,

बाग बन मे सूवटो जी बोल्यो ।
पाणी ने जावन्ती भाभी बाई री बोली,
घड़ो री भराणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग बन मे सूवटो जी बोल्यो ।
म्हैतो घमोड़ना वीरो बाई री बोल्यो,
मागण री सवराणी घरे चाली, म्हारी माया,
बाग बन मे सूवटो जी बोल्यो ।
दूल्या तो रमन्ती साथण बाई री बोली,
दूल्या री रमाणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग बन मे सूवटो जी बोल्यो ।

(राजस्थानी-लोक गीत)

इस गीत में एक सरल और सुखी ग्रामीण गृहस्थ के जीवन का चित्रण है। पुत्री की विदाई ने इसके समस्त वातावरण में हलचल पैदा कर डाली है और घर के सभी लोग इस पीड़ा को अनुभव कर रहे हैं। पिछले गीत में जहां पुत्री के हृदयोद्गार प्रकट हैं, वहां इस में घर के अन्य सभी लोगों की वियोग-वेदना बह चली है। वे सभी उसके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले दैनिक कार्यों का स्मरण करते हैं, जिनके कारण वह उनके जीवन में रमी हुई और एकरस बनी हुई थी। यह गीत अनेक चित्रों की सरल झांकी प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही अभिज्ञान शाकुन्तलम् का निम्न श्लोक ध्यान देने योग्य है—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

इस श्लोक में जहां शकुन्तला के द्वारा तपोवन में किये जाने वाले कार्यों की ओर संकेत है, वहां गीत में एक राजस्थानी कुटुम्ब के दैनिक जीवन में पुत्री को विविध कार्य करते हुए प्रस्तुत किया गया है। [illegible] समान ही है।

मिजन्दो

म्हारो मिजन्दो ए [illegible]
[illegible]

देई म्हारा बाबुल बोलावणी, थोडी थोडी जी दूर
माले छोड़ी ए गुड़ियां, दीज्यो म्हारी सहेल्या नें बांट
छीके छोड्यो ए चूरमो, दीज्यो म्हारै भाई-भतीजां बांट
बाबुल छोड्यो ए आपणो, जिसो ए गढ गुजरात
मायड छोडी ए आपणी, जिसी ए कातिगड़ा री रात
काका-ताऊ छोड्या ए आपण, जिसा ए आसोज्या रा मेह
काकी-ताई छोड़ी ए आपणी, जिसी ए बजाजां री धीय
बीरो छोड्यो ए आपणो, जिसो ए सावणियां रो मेह
भावज छोडी ए आपणी, जिसी ए गांधीडा री धीय
भैनड छोडी ए आपणी, जिसी ए सांवणिया री तीज
आडा डूंगर किण करया, किण री पीवर दूर
आडा डूंगर धण करया, धण री पीवर दूर

भीभलीयो

अरणा रे लागोडा हे फूल,
राये बगड़ी रे छाई भाभे मोतीये रे।
भाभलीया रे, तूं तो पग पग पाछल फोर,
राये रूं खड़ला बताये रे डाडाणे रे देस रा रे।
भीभलीया रे, तूं तो खंच कर पाणीडो पीव,
राये सरवरीया सुणीजे रे बाई रे बाप रो रे।
भीभलीया रे, तूं तो रे कोण जो असवार,
राये कंवर साले रे सिगरत ओमणा रे।
भीभलीया रे, तूं तो रे पीतलीये हे पलाण,
राये सरब सोने रा रे थारे पागडा रे।
भीभलीया रे तू तो रे कसण कसूम्बल डोर,
राये लाल लोगी रो रे भाभलीये रे धासीयो रे।
भीभलीया रे तूं तो रे भपटो देवतो आयो,
राय जाय न मिलाई रे माजी मायना रे।
भीभलीया रे, तूं तो रे सरसणीयो रे मत खाय,
राये हाले तो तनां नीरो रे डोडा-एलची रे।

मोमलीया रे, तूं तो रे घोड़लीयो घोड़ो रे टाण,
राचे करेंहलीया मुकावां रे सुसरेजी री प्रोल मां रे।
(संगीत रत्नाकर, पहला भाग)

ये गीत विवाह के समय बेटी को विदा करती हुई महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं और बड़े ही मार्मिक हैं। इस समय सब की आखें भरी आती है और हृदय उलभता है। राजस्थान में बेटी को रथ मे या ऊँट पर विदा किया जाता रहा है। अतः गीतों मे इनका वर्णन मिलना स्वाभाविक है। विदा लेते समय बेटी का हृदय अपने पीहर के लोगों के स्नेह को याद करके उनके वियोग की पीडा मे फटा पडता है। गीत मे सभी लोगों के लिए जो भिन्न-भिन्न विशेषण या उपमान प्रकट किए गए हैं, वे पूर्णतया सार्थक हैं। ये उपमान उन सब की विशेषताओं को प्रकट करते हैं और पारिवारिक गीतों में 'वर्णनात्मक-रूढि' के रूप मे प्रयुक्त हो चले हैं। इस अवसर की पीडा को कालिदास के निम्न शब्दों मे स्मरण किया जा सकता है—

ण केवल तवोवण विरहकादरी सही एव्व। तुए उवट्ठिद-विओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीस—

उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।
ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ ॥११॥

(न केवल तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थित-वियोगस्य तपोवनस्यापि तावत्समवस्था दृश्यते—

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥)

तपोवन की सम्पूर्ण प्रकृति ही जब शकुन्तला की विदाई के समय वेदनामयी है तो फिर गीत मे प्राकृत-जन की स्थिति तो पुत्री की विदा के समय दुःखमयी होगी ही। यही वेदनाधारा इस गीत मे तीव्ररूप से प्रवाहित है, जो सहज ही हृदय को पानी-पानी कर देती है।

बायरो

बा।मण्यिा रे तूं भीणो भीणो चाल,
चढतं भो जवायां री उडसी पिचरंग पागड़ी जी म्हारा राज
पून ज ए बंरण मधरी मधरी चाल,
चढती भो बाई री उडसी बोरंग चूनड़ी जी म्हारा राज।
तीतरिया रे तूं बायो-दंणो बोल,

चढतं ओ जंवायां नैं सूण भला होया जी म्हारा राज ।
डूंगरिया रै तूं नीचो झुक जाय,
चढतं ओ जंवाया री दीखं पचरंग पागड़ी जी म्हारा राज,
बाई ओ लाडेसर री दीखं बोरंग चूनड़ी जी म्हारा राज ।
सूरज राजा मोड़ो मोड़ो ऊग,
चढतं ओ जंवाया नै होसी स्वामी तावड़ो जी म्हारा राज ।
कोयलड़ी ए तूं मधरी-मधरी बोल,
ज्यूं चित आवं म्हारं लाडजवाई नैं सासरो जी म्हारा राज ।

इस गीत में पुत्री की ससुराल-यात्रा सुखमय होने की कामना प्रकट की गई है, अतः इस में मानव-हृदय प्रकृति के साथ एकप्राण बन गया है। गीत मे व्यक्त भावों को अभिज्ञानशाकुन्तलम् के निम्न श्लोको में सहज ही देखा जा सकता है—

अनुमतगमना शकुन्तला
तरुभिरिय वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुत कल यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥९॥
रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखताप :
भूयात्कुशेशयरजो मृदुरेणुरस्या :
शान्तानुकुलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥१०॥

मोर्‌यूं

बरसा मारूजी, पाछा जी म्होड़,
मारूजी, मोरयू हो तो आवं म्हारं जमवलू जामी बाप री जी राज ।
बरसा गोरी घण, म्होड़्या ए न जाय,
गोरी ए, बाबोजी भरोसं सुगरो जी थारा मानज्यो जी राज ।
बरसा मारूजी, पाछा जी म्होड़,
मारूजी, मोरयूरो तो आवं म्हारी राजाईई माय री जी राज ।
बरसा गोरी घण, म्होड़्या ए न जाय,
गोरी ए, मादड़ रं भरोसं सासूजी थारा मानज्यो जी राज ।

करला मारूजी, पाछा जी म्होड,
मारूजी, ग्रोल्यू हो तो ग्रावै म्हारै बान्दववर में बीर की जी राज।
करला गोरी धरण, म्होडया ए न जाय,
गोरी ए, बीरा रै भरोसै जेठजी थारा मानल्यो जी राज।
करला मारूजी, पाछा जी म्होड,
मारूजी, ग्रोल्यू हो तो ग्रावै म्हारी राई-रुकमण भावजां जी राज।
करला गोरी धरण, म्होडया ए न जाय,
गोरी ए, भाभी रै भरोसै जिठाणी थारा मानल्यो जी राज।

राजस्थानी शब्द 'ग्रोल्यू' का ग्रर्थ 'याद' (स्मृति) है। पति-पत्नी ऊँट पर चढ कर ग्रागे बढ़ रहे हैं ग्रौर पत्नी ग्रपने पीहर वालो को याद करके ऊँट वापिस लौटाने के लिए कहती है परन्तु ऐसा किया जाना उचित नही है, ग्रत पति उसे समुचित शिक्षा देता है। यही शिक्षातत्व ग्रभिज्ञान शाकुन्तलम् मे दूसरे रूप मे दिया गया है, जो द्रष्टव्य है—

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥१७॥

स्पष्ट ही राजस्थानी लोकगीत ग्रौर इस श्लोक मे एक ही बात दो प्रकार से कही गई है ग्रौर वह गृहिणी-पद प्राप्त करने के लिए परमोपयोगी है।

बधाव

राजस्थान मे प्रत्येक मागलिक ग्रवसर पर बधावा-गीत ग्रनिवार्यतः गाए जाते हैं। इन गीतो की सख्या बडी है ग्रौर इनमे सुखी तथा समृद्ध गृहस्थ-जीवन का चित्रण मिलता है। पुत्री को ससुराल के लिए विदा करके लौटते समय महिलाएँ निम्न बधावा गीत गाती हैं—

पहलै बधावै ए सैयो मोरी म्हे गया राज
गया म्हारै बाबाजी री पोल मोरी सैयो ए,
चढ़ती धाई नै ए सूरण भला होया राज।
लाड-जवाई नै ए सूरण भला होया राज।
बाबोजी सतोस्या ए सैयो मोरी ग्रापरणा राज
दीनी म्हानै मरुधी दवाय मोरी सैयो ए,

चढ़ती बाई नै ए सूरण भला होया राज ।
लाड-जंवाई नैं ए सूरण भला होया राज ।
दूजैं बधावैं ए संयो मोरी म्हे गया राज ।
गया म्हारैं ताऊजी री लोज़ मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नै ए सूरण भला होया राज,
ताऊजी संतोस्या ए सैंयो मोरी आपरणा राज
दीनी म्हानैं दोवड दात मोरी सैंयो ए,
चढ़ती बाई नै ए सूरण भला होय राज ।
अगरणैं बधावैं ए सैंयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारैं बीराजी री पोल मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नै ए सूरण भला होया राज ।
बीरोजी संतोल्या ए संयो मोरी आपरणा राज,
दीनी म्हानैं भूरोडी भोट मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नैं ए सूरण भला होया राज ।
चौथैं बधावैं ए सैंयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारैं सुसराजी री पोल मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नै ए सूरण भला होया राज ।
सुसरोजी संतोस्या ए सैंयो मोरी आपरणा राज,
ल्याया म्हानैं दोम दम् जोड मोरी सैंयो ए,
चढ़ती बाई नैं ए सूरण भला होया राज ।
पचवैं बधावैं ए सैंयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारैं जेठजी री पोल् मोरी सैंयो ए,
चढ़ती बाई नै ए सूरण होया राज,
जेठजी सतोस्या ए सैंया मोरी आपरणा राज,
दीन्यो म्हानैं आधो धन बांट मोरी सैंयो ए,
चढ़ती बाई नै ए सूरण भला होया राज ।
छट्ठैं बधावैं ए सैंयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारैं देवरिये री पोल् मोरी सैंयो ए,
चढ़ती बाई नै ए सूरण भला होया राज ।
देवरियो सतोस्यो ए सैंयो मोरी आपरणो राज,

दीन्या म्हानैं नीबूड़ा मंगाय मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नैं ए सूरा भला होया राज,
सातवैं बधावैं ए सैंयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारैं मारूजी री सेज मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नैं ए सूरा भला होया राज।
मारूजी सतोस्या ए सैंयो मोरी आपणा राज,
दीन्यो म्हानैं सरब सुहाग मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नैं ए सूरा भला होया राज।
स्यामी तो मिलगी ए सात सहेलड़ी जी राज,
हरी हरी दूब मनाय मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नैं ए सूरा भला होया राज,
लाड जवाई नैं ए सूरा भला होया राज।

यह बधावा गीत बड़ा सरस और जनप्रिय है। इसका एक गेय रूपान्तर भी द्रष्टव्य है—

पहले बधावे म्हे गया ए हेली,
गया म्हारैं बाबाजी री पोल,
चुड़लां पर सोहै बाला चूनड़ी जी।
बाबाजी सतोस्या आपणा ए हेली,
दीनी म्हानैं मढ़ली छवाय,
चुड़ला पर सोहै बाला चूनड़ी जी।

इस गीत की आगे की सभी 'कड़ियाँ' उपर्युक्त गीत के समान ही गाई जाती हैं, केवल इस की 'धुन' उससे भिन्न प्रकार की है।

इस बधावा गीत में उस शिक्षातत्व का व्यावहारिक रूप प्रकट हुआ है, जो ऊपर के एक गीत में दिया गया है। एक घर की सुकन्या दूसरे घर में कुलवधू के रूप में अपने गुणों के कारण सम्मानित होती है। इस प्रकार वह दो कुलों (पीहर और ससुराल) को प्रकाशमान करके आदर्श गृहिणीपद प्राप्त करती है। नारी जीवन की यही सुन्दर कल्पना गीत में प्रकट है। महाकवि कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में यही भावधारा दूसरे रूप में प्रकटित हुई है, जो ध्यातव्य है—

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।

तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥१८॥

पीहर से विवाह के बाद ससुराल के लिए विदाई लेते समय नारी-जीवन एक विशेष मोड़ है, अतः अवसर के विविध गीतों में मंगल कामना तथा शुभ शकुन की अभिलाषा का विशेष रूप से प्रकट होना स्वाभाविक है, जैसा कि इन में देखा जाता है। ऊपर श्लोकसंख्या १० में अनेक शुभ शकुनों की ओर संकेत है। गीत में लौकिक शकुनों की संख्या बढ़ी हुई है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि आश्रमनिवासिनी शकुन्तला की विदाई का वर्णन करते समय महाकवि कालिदास अपने समय के सामान्य जन-जीवन से भी पूर्णतया प्रभावित हुए हैं और यही कारण है कि उनकी रचना का यह अंश इतना अधिक मार्मिक बन पड़ा है। कालिदास-कालीन लोकगीत इस समय प्राप्त नहीं हैं परन्तु निश्चय ही आधुनिक लोकगीत तत्कालीन लोकगीतों के प्रतिनिधि हैं और उनकी भावधारा में अन्तर नहीं आया है क्योंकि लोकसाहित्य में प्राचीन तत्व समाप्त न होकर प्रायः समयानुसार ऊपरी रूप-परिवर्तन ही करता चलता है और उसमें लोकहृदय की सरल अभिव्यक्ति देखी जाती है। एक तो यह जीवन प्रसंग स्वयं ही मर्म को छूने वाला है और दूसरे लोकगीतों ने इसके रहस्य को सर्वथा खोलकर रख दिया है। इसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता अथवा ऊपरी साजसज्जा न होकर मात्र स्वाभाविकता और सरलता है। इसी हृदयस्पर्शी तत्व ने महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ-अंक को इतना अधिक महत्व प्रदान किया है कि वह आज भी विश्वसाहित्य में एक बेजोड़ चीज के रूप में समादृत है।

राजस्थानी लोकगीतों में महिला-विनोद

राजस्थान लोक कलाओं का रत्नाकर है। यह कलात्मक सामग्री अति-विस्तृत एवं बहुविध है। ऊपर से राजस्थान सूखा तथा फीका सा दृष्टिगोचर होता है परन्तु यहाँ की सौष्ठव-अभिरुचि आश्चर्यजनक है। विशेषता यह है कि यह सौष्ठव-प्रियता जनजीवन में रमी हुई है और इसने सरसता का वातावरण बनाए रखने में बड़ा योग दिया है।

लोककलाओं का प्रधान अंग लोक संगीत है, जो शब्द और स्वर दोनों की विशेषताओं से मण्डित है। संगीत में नृत्य, वाद्य तथा गायन तीनों तत्व सम्मिलित हैं। इनका अमृत जन-जीवन को सरसरता प्रदान करने के अतिरिक्त प्रेरणा भी देता है। इस सरस-प्रेरणा से जीवनधारा गतिमान होकर राष्ट्र को सबल तथा सुसंस्कृत बनाती है।

राजस्थान में अनेक प्रकार के अगणित लोकगीत प्रचलित हैं। इन में समाज की आशा-अभिलाषा, उमग-तरंग, सुख-दुःख सभी परिलक्षित हैं। किसी जनपद विशेष के जीवन का आन्तरिक अध्ययन करने के लिए सबसे अच्छा साधन वहाँ के लोकगीत होते हैं। राजस्थान की लोकगीतात्मक सामग्री अति विस्तृत एवं चित्रमयी है। उस में चित्रित जनजीवन के स्वाभाविक चित्र देखते ही बनते हैं। लोकहृदय की सरल अभिव्यक्ति का ऐसा निर्मल प्रकाशन किसी कवि या लेखक की वाणी में मिलना दुर्लभ है।

राजस्थानी लोकगीतों में प्रधानतया नारी-हृदय का स्वर मुखरित हुआ है। ऐसी स्थिति में यहाँ के नारी-जीवन की व्याख्या हेतु उनकी ओर

है परन्तु अन्य दोनों त्योहार तो केवल नारी वर्ग से ही सम्बन्धित हैं। होली-गीतों की संख्या बड़ी है। इनमें भी महिला-विनोद की महिमा व्याप्त है। सर्व प्रथम बालिकाओं का एक गीत द्रष्टव्य है—

> होली आई ए पूना की मोली, भिरमटियो ले।
> यो डूंगा मेरे ए मेगरिये बागा भिरमटियो ले।
> सिरी राम मेलें ए केसरिये बागा भिरमटियो ले।
> लाडॅम मेरे ए केसरिये बागा, भिरमटियो ले।

यह भी एक छोटा सा सरल-गीत है। इसमें प्रयुक्त 'भिरमटियो' शब्द विशेष रूप से विचारणीय है। 'भिरमिट' एक पुराना खेल है। इसमें हाथों से ताली बजाते हुए महिलाएँ गोलाकृति में नृत्य करती हुई गीत गाती हैं। एक प्रकार से इसे 'ताल-रास' समझना चाहिए। मीराबाई के गीतों में भी इस नृत्य-विनोद के प्रति नारी-हृदय का आकर्षण प्रकट हुआ है—"पचरंग चोळा[1] पहर सखी मैं भिरमट रमवा जाती।"

राजस्थानी महिला-समाज में होली की 'लूहर' के प्रति बड़ा चाव है। इसमें नृत्य और गीत दोनों साथ चलते हैं—

> आज म्हानें रमती नें लाडूडो सो लाधो ए माया,[2]
> लूहर रमवा म्हे जास्या।
> आज म्हानें देवरिये सें रंग मिलादे ए माय,
> लूहर रमवा म्हें जास्या।

गीत बड़ा है और सुप्रसिद्ध है। इसका प्रचार राजपूत घरानों में विशेष है। जन साधारण में गाने के 'लूहर' गीत अन्य भी अनेक हैं। एक उदाहरण देखिए—

> बोल्या बोल्या ए, ए सईयो मोरया ए बोल्या।
> भल होसी होसी ए, ए सईयो बेटी ए होसी।
> जाई जाई ए, ए सईयो बेटी ए जाई।

गीत में आगे नारी-जीवन के विविध प्रसंग क्रमिक रूप से आते हैं और विवाह का वर्णन विशेष विनोदपूर्ण तथा हास्यरसात्मक होता है। उसमें अपने सम्बन्धियों पर कटाक्ष करते हुए चुटकी ली जाती है—

---

1. यह शब्द राजस्थानी बोलचाल के 'घाट-चोलो' तथा 'चोळो-चूनड़ी' युग्मों में भी अर्थ विचार में ध्यातव्य है।
2. ध्यान रखना चाहिए कि यहाँ 'माय' शब्द सखी का वाचक है।

डेरा दिवाद्यो ए, ए सईया ढंरां ए वाड़ें ।
धून भिकोळ ए, ए सईयो या'ळ भिकोळ ।
डेरा दिवाद्यो ए, ए सईयो मिसरां कै घर मे ।
मिसर भला छै ए, ए सईयो मिसराणी है खोटी।
आये-गये की ए, ए सईयो पाड़ लेवै चोटी ।
वा घालैगी राव, गिणावैगी रोटी ।

इस 'लूहर-विनोद' में महिलाओं के दो वर्ग आमने-सामने खडे होकर अपनी अपनी बारी के 'बोल' सस्वर प्रकट करते हुए एक विशेष प्रकार के अभिनय का प्रदर्शन करते हैं ।

आगे होली के दिनों का एक कथात्मक राजस्थानी गीत दिया जाता है, जो विनोदपूर्ण होनेके साथ ही चारित्रिक विशेषता से भी सम्पन्न है—

चांदा जी तेरै च्यानणै खेलण जोगी छै रात,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
नणद भोजाई खेलण नीसरी, खेली छै सारी जी रात,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
सेल-माल्ह घर बावडी, पोळीडा पोळ उघाड,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
ढकिया जी पळसा नां खुलै, जित आई जित जाय,
ओ ए थे तो जावो ए गोरी थारै बाप कै ।
उपराडै होय डाकीया, टूट्यो छै नोसर हार,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
सोनचिड़ी ए मेरी मायली चुग दे तूं नोसर हार,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
पटुवै की बेटी भायली, पो दे तूं नोसर हार,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
सेल-माल्ह घर बावड्या, राजिन खोलो किवाड,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
ढकिया जी पळसा ना खुलै, जित आई जित जाय,
ओ ए थे तो जावो ए गोरी थारै बाप कै ।
सोड भराई मेरा बापजी, निसंग दियो बड बीर,

म्हो जी म्हे तो कूद कर जावां ढोला बार कै ।
मोड दरवाजे ध्यानण चौक मे, तिलक दियो सरकाय,
म्हो ए थे तो आवो ए गोरी म्हारे बार कै ।
मोड ज मीनी बाग मे तिलक दियो लटकाय,
म्हो जी म्हे तो थान्हा जी हजारी ढोला बार कै ।
म्हाडा सासूजी[1] होय ग्या, रमडी बहुवड जिनजाय,
म्हो जी थे तो रग कर जावो घड़ बार कै ।
म्हाडा सासूजी होय रया, रमडी गोरी रिस जाय,
म्हो ए थे तो रग कर जावो गोरी बार कै ।
दातण फाडा कूवा बावडी, जीमा म्हारा माऊजी रै हाथ,
म्होजी म्हे तो थाया जी हजारी ढोला बार कै ।
म्हाडा माम्जी होय रया, म्हया नै जाण न धाय,
म्हो ए थे तो रग कर जावो गोरी बार कै

इस गीत मे कथासूत्र नायिका की विनोद प्रियता से प्रारभ होता है। वह अपनी सहेलियो के साथ घर से बाहर खेल मे सारी रात व्यतीत करके लौटती है तो भीतर आने के लिए दरवाजा नही खोला जाता। इस पर वह दीवार फाद कर घर मे प्रवेश करती है। यह प्रक्रिया उसकी शारीरिक शक्ति का परिचय देती है, जो उसे खेलो के कारण प्राप्त हुई मानी जा सकती है। भीतर आने पर उसका पति रुष्ट होता है और उसे अपने पिता के घर जाने को कहता है। परन्तु जब वह जाने के लिए तैयार होती है तो उसे रोक लिया जाता है। गीत के कथासूत्र का सार इतना सा ही है परन्तु यह राजस्थानी नारी जीवन का एक अनोखा चित्र उपस्थित करता है। गीत की नायिका बलवती तो है ही, साथ ही वह ओजमयी भी है।

होली के दूसरे दिन से राजस्थान मे सोलह दिनो तक गणगौर का त्यौहार चलता है। इस पर्व मे कुमारी कन्याए श्रेष्ठ वर की प्राप्ति के लिए और विवाहिता महिलाएं सुखी दाम्पत्य-जीवन हेतु गौरी की पूजा करती हैं। इन दिनों मे वातावरण बडा ही उत्साहपूर्ण एवं उल्लासमय रहता है तथा गीतों की रसधारा तीव्र वेग से प्रवाहित होती है। इन गीतों की संख्या बहुत बडी है। उनमे धार्मिकता के साथ दाम्पत्य जीवन के रस

---

1. आगे गीत मे परिवार के अन्य भी कई लोगो के नाम लिए जाते हैं।

की राग समाई रहती है। चाव में भरकर महिलाएँ गणगोर के आगे नृत्य भी करती हैं। आगे इस प्रकार के एक नृत्य-गीत का उदाहरण दिया जाता है—

म्हारं दादोजी रं जी, म्हारं दादोजी रं जी,
म्हारं दादसराजी रं माढी गणगोर ओ रसिया,
घडी दोय खेलवा नै जायवा द्यो।
घड़ी दोय आता व, पलक दोय जावता,
पलक दोय माथण्या मे लागं ए मिरगानैणी,
थारं बिना जीवडो भरयो डोलं।
म्हारी हाबी हबकं, म्हारी झावी झबकं,
म्हारी नौगरी जडाबू झोला खाय ओ रसिया,
घड़ी दोय खेलवा नै जायवा द्यो।

यह गीत नाच के साथ गाया जाता है और इसे अन्य पारिवारिक सम्बन्धो के नामो के साथ बढा लिया जाता है। इन नामो मे पीहर और ससुराल दोनों की चर्चा एक साथ चलती है। गीत में नायिका अपने पति से निवेदन करती है कि उसे अपनी सहेलियो मे खेलने के लिए जाने की अनुमति दी जावे। पति प्रेमाधिक्य के कारण उसका इतना वियोग भी सहन नही कर सकता तो वह अपनी इच्छा की उत्कटता प्रकट करती है। इस गीत मे सबसे बड़ी चीज उसकी अभिलाषा की तीव्रता ही है।

राजस्थानी महिला-समाज का एक विशिष्ट त्योहार तीज (श्रावण शुक्ला तृतीया) है। यह पार्वती के जन्म-दिवस के रूप में मनाया जाता है परन्तु साथ ही इसे वर्षा-मंगल भी कहा जा सकता है। राजस्थान मे वर्षा का बड़ा महत्व है। गाव गाव मे तीज के मेले लगते हैं। ये मेले प्राय. तालाब के पास भरते हैं।

तीज के पर्व पर महिलाओं में बड़ा उत्साह देखा जाता है। राजस्थानी लोक गीतों मे इसका अनेकशः सकेत है—

(१)

सावण सुरगो भादवो, यो तो बरसं च्यारं कूंट,
म्हारा मुरला सावणियो सुरंगो जी।
बाई तो इमरत बाप कं,

बाई तीजा खेलण जाय,
म्हारा मुरना सावणियो सुरंगो जी। (मुरलो गीत)

(२)

और सहेली मा तीजां खेलण जाय,
मन्नै भेजी मा सासरै ए।
और सहेली मा हीडै हीडण जाय,
मन्नै जोयो मा पीसणो ए। (सावण का गीत)

सावन में राजस्थानी महिलाएं ससुराल से पीहर आने की इच्छा करती हैं और उनकी यह अभिलाषा अनेक गीतों में प्रकट हुई है। पीहर मे बहिन के लिए भाई हींडा (झूला) जरूर डलवाता है और वह अपनी सहेलियों के साथ उस पर झूलती हुई गीत गाती है। उस समय आनंद-विनोद की रसधारा भी वह चलती है।

तीज के अवसर पर महिलाएं अपनी ससुराल मे भी झूले पर झूलती हैं। इस समय उनका एक विशेष विनोद भी है। जब कोई महिला अपनी बारी से झूले पर बैठती है, तो उसके साथ ही अन्य महिलाएं उसकी रस्सी पकड़ कर उससे अपने पति का नाम बतलाने के लिए आग्रह करती हैं। सामान्यतया राजस्थानी महिला अपने पति (या जेठ, श्वसुर आदि) का नाम अपने मुख से उच्चारण नहीं करती। परन्तु इस अवसर पर वह अपनी सहेलियों के सामने इस बंधन को ढीला करके कविता रूप में अपने पति का नाम प्रकट करती है। इसके बाद उसे झूलने दिया जाता है। यही क्रिया अन्य भी सब झूलने वाली सहेलियों के साथ की जाती है और बड़ा सरस वातावरण रहता है।

महिलाएं झूलते समय अनेक प्रकार के गीत गाती हैं और ये प्रायः दाम्पत्य-जीवन से सम्बन्धित होते हैं। एक गीत का प्रारंभिक अंश उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है—

हा जी म्हारा साहवा, इण सरवरिया री पाळ हीडोळो,
हीडोळो रातन घाल द्यो जी म्हारा राज, हीडळो।
हा जी म्हारा सायबा, हीडंगी घर की जी नार झोटा दे,
झोटा दे गोरी को सायबो जी म्हारा राज, झोटा दे।

गीत लम्बा है और यह लम्बी ढाळ (टेर) मे ही गाया जाता है। इसकी प्रत्येक 'कड़ी' मे एक ही शब्द की तीन बार आवृत्ति होती है जो विशेष

ध्यान देने योग्य है। ऊपर प्रथम कड़ी मे 'हींडोलो' की द्वितीय कड़ी में 'झोटा दे' की आवृत्ति हुई है। इससे गीत की रसधारा तो तीव्र होती ही है, परन्तु साथ ही इसका स्वर-सौन्दर्य भी विशेष वृद्धि को प्राप्त करता है।

विशेष त्यौहारो के अतिरिक्त राजस्थानी महिला-वर्ग मे विनोद का एक अवसर और भी अनेकशः आता रहता है। जब मौहल्ले में किसी के यहा 'जंवाई' आता है तो वहाँ पास-पड़ोस की सभी महिलाएं इकट्ठी होती हैं और गीत गाती हैं। इसके अतिरिक्त जंवाई से पहेलिया भी पूछी जाती हैं। कई तो गीत ही पहेलीमय होते हैं। कई प्रदेशो मे या विशिष्ट घरो में जंवाई के सामने महिलाएँ नृत्य भी करती हैं। उस समय नृत्य-गीतो की रसधारा उमड चलती है। उदाहरणार्थ एक गीत द्रष्टव्य है—

आम्रो जी नणदोईजी आपा विणज करा,
आम्रो जी नणदोईजी आपा विणज करा,
म्हारै सुसराजी रो खेत रुखाळोजी,
मतीरो थानै म्हे देस्यां। म्हारै सुसराजी० ॥
आम्रो जी नणदोई जी आपा विणज करा,
आम्रोजी नणदोईजी आपा विणज करा,
म्हारै जेठजी री भैंस दुहाम्रो जी,
महीड़ो थानै म्हे देस्या। म्हारै जेठजी ॥
आम्रो जी नणदोईजी आपां विणज करां,
आम्रोजी नणदोईजी आपां विणज करा,
म्हारे देवरिये रो रेवडियो चराम्रो जी,
अळगोजा थानै म्हे देस्या। म्हारै देवरिये।
आम्रोजी नणदोईजी आपां विणज करां,
आम्रोजी नणदोईजी आपा विणज करां,
म्हारै मारूजी री सेज बिछाम्रो जी,
लाडूडो थानै म्हे देस्यां। म्हारै मारूजी।
आम्रो जी नणदोईजी आपा विणज करां,
आम्रो जी नणदोईजी आपां विणज करा,
म्हारो गोदी रो गीगलो खिलाम्रो जी,
झूंभणियो थानै म्हे देस्या ॥ म्हारी गोदी ॥

उपर्युक्त गीत में विशेषता यह है कि इसमें नृत्य के साथ अभिनय भी है। यहां सरस और सम्पन्न गृहस्थ-जीवन का अनुपम चित्रण हुआ है। साथ ही इसमें जंवाई (या नणदोई) के प्रति सरल विनोद भी किया गया है।

आगे के गीत मे ननद-भावज की विभिन्न परिस्थितियों के सम्बन्ध मे जो विनोदात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह बडा ही लुभावना है। गीत का नाम नीमोळीडो है। पूरा गीत इस प्रकार है—

बाईजी कं बा'यो रं आमूलो,
कोई म्हारं बा'यो नीम रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी सींचं रं आमूलो,
कोई म्हे सींचा म्हारो नीम रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी कं ऊग्यो रं आमूलो,
कोई म्हारं ऊग्यो रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी कं लाग्या रं आमूला,
कोई म्हारं लाग्या गुटका रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी चूसं रं आमूला,
कोई म्हे चूसा म्हारा गुटका रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी पड़गा रं आमूलं,
कोई म्हे पड़या म्हारं नीम रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी को दीसं रं सासरियो,
कोई म्हारो दीसं पीर रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी को दीसं रं देवरियो,
कोई म्हारो माइ-जायो बीर रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी कं आयो रं देवरियो,
कोई म्हारं माइ-जायो बीर रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी कं आयो रं गाडूलो,
कोई म्हारं रुणझुण बैल[1] रं, नीमोळीड़ो।
बाईजी चूरं रं चूरमो,

1. बैल=बैली (छोटा रथ, जिसे, दो बैल खींचते हैं)।

कोई म्हारै गुदळी सी सीर रै, नीमोळीड़ो ।
बाईजी कै जीमै रै देवरियो,
कोई म्हारै माई–जायो वीर रै, नीमोळीड़ो ।
बाईजी चाल्या रै सासरिये,
कोई म्हे चाल्या म्हारै पी'र रै, नीमोळीड़ो ।
बाईजी कै चाल्या रै आगूहा ।
कोई म्हारा चाल्या दात रै, नीमोळीड़ो ।
बाईजो बैठ्या रै गाडूलै,
कोई म्हे म्हारी रणझुण बैल रै, नीमोळीड़ो ।
बाईजी को आयो रै सासरियो,
कोई म्हारो आयो पी'र रै, नीमोळीडो ।
बाईजी उतरळा रै सासरिये,
कोई म्हे उतरया म्हारै पी'र रै, नीमोळीडो ।
बाईजी कै आगै रै सासूडी,
कोई म्हारै आगै माय रै, नीमोळीड़ो ।
बाईजी सारयो रै घूंघटियो,
कोई म्हे मारयो गुरमाट[1] रै, नीमोळीडो ।
बाईजी नै ढाळयो रै पीडळडो,
कोई म्हानै ढाळी खाट रै, नीमोळीडो ।
बाईजी बैठ्या रै पीडळडै,
कोई म्हे बैठ्या म्हारी खाट रै, नीमोळीड़ो ।
बाईजी नै रांध्यो रै खीचडलो,
कोई म्हानै जिनवां रा भात रै, नीमोळीडो ।
बाईजी जीमै रै खीचडलो,
कोई म्हे जिनवा रा भात रै, नीमोळीड़ो ।

इस गीत मे 'आटै-साटै' विवाही गई दो लडकियों का चित्रण है। इस रीति के अनुसार एक घर की लड़की दूसरे घर मे बहू बनती है। दोनों

1. गुरमाट=ओढ़ने के पल्ले को मुख खुला रखते हुए कंधे पर डालना ।

लडके परस्पर साला-बहनोई का रिश्ता रखते हैं। जो घर एक लडकी का पीहर होता है, वही दूसरी का ससुराल समझिए। क्रमिक विवरण के कारण गीत लम्बा हो गया है। इसमे प्रत्येक 'कडी' के साथ 'नीमोळीडो' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ 'नीमोळी'[1] फल वाला (अर्थात् नीम) होता है। यह प्रयोग 'कडी' की पूर्ति करने के लिए हुआ है, जैसा कि अन्य भी कई गीतो मे देखा जाता है। सम्पूर्ण गीत से सरल विनोद रस टपका पडता है।

ऊपर राजस्थानी महिला-समाज मे व्याप्त विनोद रस पर सोदाहरण प्रकाश डाला गया है। इन गीतो मे सामान्य जीवन का वातावरण उपस्थित है, जो सर्व साधारण के उल्लास का परिचायक है। पुरुषो के समान ही महिलाओ के लिए भी आनद-विनोद की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके बिना जीवन नीरस हो जाता है। हमारी पुरानी परम्पराओ मे यह तत्व सुन्दर रूप मे समाविष्ट है। ऐसी सशक्त परम्पराओ का सरक्षण सर्वथा उपयोगी एव आवश्यक है।

---

1. नीमोळी=नीम का कच्चा फल। पकने पर इसे 'गुटका' कहा जाता है।

लोकधुनों के अनुकरण की प्रवृत्ति

शास्त्रीय संगीत अपनी विषयगत जटिलता के कारण सामान्यतया कला मर्मज्ञों के विवेचन अथवा रसग्रहण की वस्तु होता है, जब कि लोक संगीत जन-जीवन मे रमे हुए होने के कारण समाज के एक अविच्छेद्य अंग के रूप में सामने आता है। शास्त्रीय संगीत आयोजन की चीज है और उसका अपना अलग महत्व है परन्तु लोक संगीत लोक हृदय की उमंग का स्वाभाविक प्रकाशन है। समय को सरल बनाने के लिए अथवा श्रम को सरल करने के लिए ही लोक संगीत का सहारा नहीं लिया जाता परन्तु प्रसंग आने पर अथवा अवसर उपस्थित होने पर वह स्वयं लोक हृदय से अमृतधारा के समान फूट पड़ता है। लोक संगीत की इन्हीं कुछ विशेषताओं को हृदयगम करके विद्वानों ने इसके यथार्थ महत्व को अनुभव किया है और इस दिशा में शोध कार्य की प्रवृत्ति प्रारंभ हुई है, जो असाधारण रूप से आशापूर्ण है।

सरलता लोकसंगीत का प्राण है और वह जनजीवन में समाया हुआ है, अतः जो गीतकार अपनी वाणी को लोकवाणी के रूप मे प्रतिष्ठित करने की अभिलाषा करता है, उसके लिए यह स्वाभाविक है कि वह लोकधुनों का आश्रय ग्रहण करे। अनेक लोकधुनें अपनी जनप्रियता के विस्तार के कारण विशेष पद-प्रतिष्ठा-प्राप्त करके सम्मानित होती हैं और विद्वानों के आकर्षण का विषय सहज ही बन जाती हैं। गुजरात-राजस्थान में यह प्रवृत्ति असाधारण रूप से प्रकट हुई है और काफी पुराने समय से चली आरही है। जैन विद्वानों

ने भी इसे बहुत ही अधिक अपनाया है और अपने उपदेशों को जन साधारण में फैलाने के लिए इसका सहारा लेकर गुण माना है। इस प्रकार इन विद्वानों के द्वारा लोकगीतों के क्षेत्र में जो कार्य अनायास ही सम्पन्न हो गया, उसके लिए लोकसंगीत अथवा लोकसाहित्य में अनुसंधान कार्य करने वाले व्यक्ति उनके चिर-ऋणी रहेंगे। जैन विद्वानों ने लोक प्रचलित 'देशियों' के आधार पर गीत-रचना करके साथ ही उनका नाम संकेत भी कर दिया है, जिससे उनकी प्राचीनता का पुष्ट प्रमाण सहज ही सामने आ जाता है। ऐसी बहुसंख्यक 'देशियों' की एक अति विस्तृत एवं सुसम्पादित सूचि स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने 'जैन गुर्जर कवियो' ग्रन्थ के तृतीय भाग के द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत करके सराहनीय एवं सर्वथा सफल श्रम किया है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए इस सूची के कुछ चुने हुए उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

५४. अलबेलानी—(धनजी कृत सिद्धदत्त स० १६६५ आस; समय सुन्दर कृत प्रियमेलक. ५ स० १६७२ वाली, पुण्यसागर कृत अजना. १–२ स० १६८९, जयरंग कृत अमरसेन १२ स० १७००, केसरकुशलकृत चोवीसी १६ मु स्त० स० १७०६ आस, सौजन्यसुन्दरकृत द्रौपदी ६ स० १८१८) ११७–(१) **आंबरीइं मद्द मरमइ रे ऊमादे वड चूमइ रे**–सिंधु आस्या (जिन हर्ष कृत उपमित ६७ स० १७४५ तथा शत्रुंजय रास २-२६ सं० १७५५) या (२) अबरीओने बाद गाजे हो भटीआणी राणी वड चुइ-ए भटियाणीनी (मोहनविजयकृत रत्नपाल ३-५ स० १७६०)

३४६—**काछवानी**–राग सोरठी (समय सुन्दरकृत मृगा. १-१३ स० १६६८) काछिवा वाछ तणा हो राणा, काछिव हो काछ नणा, वसे तो वासो माहिव म्हे दीधा-ए जाति (ज्ञानकुशल कृत पार्श्व० ३-२ स० १७०७) वाछवानी (जिनपर्यकृत कुमारपाल १०१ सं० १७०२; उदयरत्नकृत सुदर्शन. १३ स० १७०५)

७३५—(१) **भूंबखडानी**—वेलाउल (पुण्यसागरकृत अजना ३–१ स० १६८९) भुमखडानी (ज्ञानसागर कृत श्रीपाल. ४ स० १७२६) भुम्बखडानी (कनक सुन्दर कृत हरिश्चन्द्र, ४–७ स० १६९७) (२) झूंबखरानी (मालदेव कृत पुरन्दर चौ० ७ स० १६५२; समयसुन्दर कृत प्रत्येक, ३–४ सं० १६६५; धनजी कृत सिद्धदत्त स० १६६५ आस।)

यहाँ कुछ थोड़े से उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। सूचि अत्यन्त विस्तृत है। इससे प्रकट होता है कि किस जैन विद्वान ने किस समय अपने किस ग्रन्थ में कहाँ किस 'देशी' का प्रयोग किया है। इन पुराने लोकगीतों में से बहुत अधिक अब सर्वथा विलुप्त हो चुके हैं और उनके नाम अथवा प्रथम पंक्तियाँ

मात्र प्राप्त हैं। फिर भी लोकगीतों में अनुसंधान कार्य के लिए यह सूचि अपने आप में एक उपयोगी क्षेत्र है। इसके द्वारा अनेक वर्तमान लोकगीतों की प्राचीनता का पता भी सहज ही लग जाता है। इस सम्बन्ध में भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:—

(१) राजस्थान मे ऊँटों की कतार लादने वाले लोग 'विणजारो' नामक गीत बड़े चाव से लम्बी 'ढाळ' मे गाते हैं। इस गीत की प्राचीनता सूचि के अनुसार स्पष्ट होती है।

१७६३-वणजारानी—विणजारा रे! लोक देसाउरि धाय, तुं घर बेठो क्या करे, विणजारा रे। राग गोडी (समयसुन्दर कृत प्रत्येक. ३-७ सं० १६६५; जिनराज सूरि कृत शालि १४ स० १६७८ तथा गजसुकुमार. १६ स० १६९९; ज्ञानकुशल कृत पार्श्व ३-११ स० १७०७; ज्ञानसागर कृत शांतिनाथ ७ सं० १७२०; जिनहर्ष कृत कुमारपाल १०८ सं० १७४२ तथा महाबल। ३ २३ सं० १७५१; जिनोदयसूरि कृत हंसराज. २८ सं० १६८०; नेमविजय कृत शीलवती. ४-७ स० १७५०) इस गीत की आजकल गाई जाने वाली प्रथम कडी का सामान्य रूप इस प्रकार है:—

"विणजारा रे लोभी, लोग दिसावर जाय, तन्नें वट्या क्यूं सरै, बिणजारा ओ।" इससे सिद्ध होता है कि राजस्थान का 'विणजारो' नामक गीत अपनी एक ही 'धुन' मे और लगभग समान शब्दो मे सतरहवी शताब्दी मे गाया जाता रहा है।

(२) विवाह के बाद जब लड़का वधू सहित अपने घर लौट कर आता है, तब नियमित रूप राजस्थान मे 'टोडरमल्ल' गीत गाया जाता है। इस गीत की प्राचीनता भी सूचि से सिद्ध होती है—७३८ ख. टोडरमल्ल जीतीयो रे! (दयाशीलकृत इलाची. ४ स० १६६६) आजकल भी 'टोडरमल्ल' गीत की आद्य पक्ति लगभग इसी प्रकार गाई जाती है—'टोडरमल्ल जीत्याजी।' इससे प्रकट होता है कि वर्तमान लोकगीत सतरहवी शदाब्दी मे भी प्रचलित था।

जैन विद्वानों द्वारा लोक प्रचलित 'देशियो' के आधार पर विरचित रचनाओं की सूचना सुरक्षित है। अब भी जैन-समाज मे गाए जाने वाले ऐसे गीतो की सख्या काफी बडी है। इस प्रकार के गीतों मे धार्मिक भावना व्याप्त रहती है। इसी भावना से निर्मित एवं लोकगीतो की विविध 'ढालो' पर आधारित गीत अन्य समाजो, में भी कम नही है। इनको 'हरजस' अथवा 'भजन' के रूप में गाया जाता है और इनका मुख्य विषय भक्ति रहता है। कुछ उदाहरण देखिए—

१. बोल बोल, म्हारा नन्दजी का लाला,
बोल्या थानै सरसी ओ, मोहन मुखड़ै बोल ।
(बोल बोल, म्हारै हिवड़ै रा जिवड़ा,
बोल्या थानै सरसी ओ, पनजी मुखड़ै बोल ।)

२. छैल छबीलो म्हारो नन्दजी को लालो हे,
म्हारै मन बस रह्यो गिरधारी ।
(सात सहेल्या रो आयो हलकारो ए,
अरज सुणो सासूजी म्हारी ।)

३. कठै से आया कान्ह, कठै से राधा प्यारी ।
कठै से आया ए, शिवशंकर नेजाधारी ।
(कठै से आई सूंठ, कठै से आयो जीरो ।
कठै से आयो ए, भोळी बाई थारो बीरो ।।)

४. वन मे देख्या दोय वनवासी,
ज्यां रो मुख देख्यां दुख जासी, ए माय ।
घूमर रमबा म्हे जास्यां,
आज म्हानै रमता नै लाडूड़ो मो लाग्यो, ए माय ।

५ सूत्या राणोजी सुख भर नींद, ओ राणोजी,
कोई सूतै राणोजी नै सुपनो आइयो जी म्हारा राज ।
(बादळो भँवरजी चढ़िओ गिगनार ओ भवरजी,
कोई विरल्या झुक गढ रै कागरै जो म्हारा राज ।)

६ माता ए देवकरणजी री पाघ सलामत रासोप,
बागोरा री माय, म्हारी सेठ्ठ माय,
बहू ए नोरंग थारै चुडलै राखी बाधो, मोरी माय ।

7. आम्बाजी, सगना मायला ओ सगन बडा किरिणयाणीजी
गढ देसाणा री राय, म्हारा करणल माय,
सगना मायला ओ सगन बडा किरिणयाणी, मोटा माय ।
(जल्ला मारू म्हे तो थारा डेरा निरखण आई ओ,
म्हारी जोडी रा जलाल, मिरगानैणी रा जलाल,
म्हे तो थारा ओ डेरा निरखण आई, ओ जलाल)

इसी प्रसग मे जोधपुर के महाराजा मानसिंह के दो गीतो के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं, जो लोकगीतो की तर्ज पर बनाए गए हैं—

१. प्यालो भर दे सुघड़ कलाळ, ओ कलाळी,
कोई चौथी भट्टी रो दारू पायदी, ओ राज ।
म्हारो मद मूंघो घणो अणमोल, ओ मस्ताना,
कोई सीस उतारै यो मद पीवसी, ओ राज ।
(तर्ज कलाळी की)

२. उठो म्हारी सइयां, प्रीतम प्रेम लगावो ए,
उठयां दुख मिट ज्याय,
उठो म्हारी सइयां, प्रीतम प्रेम लगावो हो राज ।
(तर्ज जल्लै की)

ऊपर जिन गीतों की चर्चा की गई है, उनका वातावरण धार्मिक है और वे पुण्य के क्षणों में गाए जाते हैं । परन्तु लोकगीतों की 'ढाल' पर सामाजिक गीत भी बहुत अधिक बने है और वे स्वयं लोकगीतों का रूप धारण किए हुए है । ऐसे गीतों का नामकरण 'ढाल' के आधार पर हुआ है और ये मांगलिक अवसरों, संस्कार विषयक उत्सवों एवं पारिवारिक सम्बन्धों के उल्लासमय वातावरण मे गाए जाते हैं । इन गीतों के कुछ विशिष्ट वर्ग-विभाजनपूर्वक उदाहरण जापे के गीत प्रस्तुत किए जाते है—

जापे के गीत

१. घर घर मारूजी गावै छै गीत,
अनोखो पीळो म्हे सुण्योजी म्हारा राज ।
(घूघरी की ढाल)

(सूती धण सुख भर नींद,
सुपनै मे बांटी घूघरी जी म्हारा राज ।)

२. पहलो मास ज लागियो जी,
माळ भोल जिय जाय,
भंवर पीळो हलदी को ल्याद्योजी ।
(कूंजा की ढाल)

तूं छै कूंजा भायली ए,
थूं छै धरम की ए माण,
कूंजा ए म्हारो पीव मिलादेए ।

३. थीरी धण नै लाग्यो पहलो मास,
पीळो तो रंगाघो जी, मारूजी म्हानैं केसर्‌या ।
(सजना की ढाळ)

(बंदूना बार्वाडी लगत बिलाय,
बार्गादिया तो भाभाजी, बाबोजी रै हाडै राव का ।)

४ पहलो माग गोरी धण नैं लाग्यो,
दूजो माग प्यारी धण नैं लाग्यो,
घाळ भोळ जिय जावे रसिया,
पीळो हलदी को,
पीळो हळदी को रगायो जी, बालम रसिया,
पीळो हळदी को ।

(डफ की ढाळ)

(थारो डफ बाजै म्हारो इन्दरगढ गाजै,
तो सूती नार चिमक जागै
डफ काहे को,
डफ काहे को बजावोजी बालम रसिया,
डफ काहे को ।)

५ पंलो तो माम ज जी जचा राणी नैं लागियो,
जी कोई घाळ भोळ जिय जाय,
पीळो रगावोजी, जचा नैं केसर्‌या जी ।

(चनणा की ढाळ)

६. पंलो मास ज जी, जच्चा राणी नैं लागियो,
घाळ भोळ जिय जाय,
पीळो रगायो धण नैं केसर्‌या ।

(बींडलो की ढाळ)

(पाच पाना को जी, पना मारू बीडलो,
दे भेज्यो म्हारी माय,
यो बिडलो म्हारै मन सयो ।)

७ पलो तो माम जचा नै लागियो जी,
कोई घाळ भोल जिय, ए जी ए जाय,
पीळो रँगायो ढोला केसरया जी ।

(सुपनो की ढाळ)

(सुपनी तो आयो सरब सुलाखणो जी,
म्हारी बैया ए तळे कर, ए जी ए जाय
सुपनं मे देख्या भंवर जी नै आवता जी ।)

८. सूती घरा निस भर नींद,
सुपनो तो आयो ढळती रात को
जी लसकरिया, जी ओ,
सूती घरा निस भर नींद ।

(लखपत को ढाळ)

(सावरिया रे पहलं जी मास
लखपत धुड्ला सायब मोलिया,
ओ उळगाणा, जी ओ,
सांवणियां रं पहलं जी मास ।)

९. धरा बोलं ढोलो सूरां,
सुणो म्हारा भवर सुजान, जी ढोला,
हम चरणूट्या री ढोला मन रळी,
लेद्यो म्हारी लाल नणद का वीर, जी ढोला ।

(मोळ_यू की ढाळ)

(मो जी गोरी रा लसकरिया,
घडो दोय लसकर थामो, जी ढोला)

१० पंलो तो मास जचा राणी नै लागियो जी,
हा जी कोई, माळ भोळ जिय जाय,
पीळो रंगायो जचा नै केसरया जी ।

(पीळी की ढाळ)

(बाप धन्या हा भंवरजी पीळी जी,
हा जी ढोला, हेम गई घेर घुमेर,
बंटण को मन चाल्या चाकरी जी)

११ पल्लो माग ज लागियो जी, धरा नै भावं गरदो,
ए जी म्हारो माळ भोळ जिय जाय, जचा नै भावं गरदो,
खाटो ना हिंगो, ख्यारो ना गरदो ।

(गीदड़ की ढाळ)

१२. गुमराजी भागे सात सलाम जी,
कोई चँहारी मंगाद्यो हरिये बाग की ।
देस्या ए वहवड मघड़ पढ़ाय ए,
कोई चहारी ना पाकी हरिये बाग की ।

(मुरळं की ढाळ)

(चादा थारी चकमक रात जी,
कोई चांद उजाळं पाणी नीसरी ।
भागं भागं नणदळ बाई रो साप जी,
कोई लंरा नखराळी भावज नीसरी ।)

१३ पैलो तो मास ज ढोला, गोरी धण नै लाग्यो,
तो भाळ भोळ जिय जावै जी,
ढोला, पीळो रगाद्यो ।
अल्ला तो पल्ला जी ढोला, मोर पपैया,
तो बिच बिच चांद चलाद्यो जी,
ढोला, पीळो रगाद्यो ।

(जवडी की ढाळ)

(थारा ए बरसा से मम्बा पियो पर आयो
तो हरिये बागा बिच डेरा ढाळ्या जी ।
ढोला आवो ना महल में ।)

बनड़ा गीत

१ बनडो म्हारो दाऊदी को फूल,
कोई बनडी कळी ए अनार की, जी म्हारा राज ।

(घूघरी की ढाळ)

२ हगती थे ल्याज्यो बजळी देस रा,
घुड़ला रं धमर्क थे आज्यो, जी बनडा ।

(मोट्यूं की ढाळ)

३. हाथो बजळी देसां रा ल्याव,
घुड़ला थे ल्याज्यो जी बना जी घुर गुजरात रा,
बागला थे ल्याज्यो जी बना जी माळ देस रा ।

(सजना री ढाळ)

७ हमनी थे ल्याज्यो बजळी देस रा जी,
हाँडी बना डुडला रै धमकै थे भ्राय,
बनी न रगादो राजमगाहीं लँगियो जी ।

(पिपळी की ढाळ)

हमनी थे ल्याज्यो जी बना जी बज्ळी देस रा जी,
कोई डुडला रै धमकै थे आय,
बनड़ो बुलावै ए, बनी जी रंग म्हैल मे जी ।

(चनणा की ढाळ)

(तीजण घुगरो ए क चनणा म्हे गुण्यो जी,
कोई सहेल्यां मे पड़यो रमभोळ,
अम्मा तेरी पूछै ए, क चनणा के हुयो जी ।)

६. हमती बज्ळी देसा रा ल्याय ।
डुडला थे ल्याज्यो धुर खुरसाण रा,
धो गुल बनड़ा, जी, थ्रो,
हमती बज्ळी देसा रा ल्याय ।

(लखपत की ढाळ)

१०. हमती बजळी देसा रा ल्याय थ्रो,
नवल बनाजी थ्रो, म्हारा चतर बनाजी थ्रो,
कोई डुडला थे ल्याज्यो धुर खुरसाण रा जी म्हारा राज,
नवल बना, करला थे ल्याज्यो मारु देस रा जी म्हारा राज ।

(भूमादे की ढाळ)

(चादड़लो तो चढ्यो ए अकास ए
भूमादे बलाळी ए, मदछकियाँ री प्यारी ए,
कोई चाड उजाळै पाणी भीमरी जी म्हारा राज
बिलाली ढोला, चांद ऊजाळै पाणी नीसरी जी म्हारा राज)

११. नवल बनाजी हमती थे भल ल्याय,
नवल बनाजी घुड़ला थे भल ल्याय,
करला थे ल्याज्यो मारू देस रा जी राज ।

(सीकरी की ढाळ)

(सूत्या भवर जी निंग भर नींद,
सुपनो तो पायो राणी गोरड़ी रै देस को जी राज)

१२, हसती जी कजळी देसा रा ल्याय,
घुड़ला जी धुर गुरसाण रा ल्याय,
करली रै ऊंठां पे आयज्यो जी राज ।

(जच्चा की ढाळ)

(ऊंची ऊंची मंडपां रा गजड़ किंवाड़
भवर भवर दिवलो जगै जी राज ।)

१३ हसती कजळी देसा रा ल्याय,
थो जी म्हारा बाळक बनड़ा,
घुड़ला थे, ल्याज्यो धुर गुरसाण,
म्हारा बाळक बनड़ा,
मजल मजल परण पधार ।

(लोटण करलो की ढाळ)

(कया सैं बुहावा डोडा एलची,
ग्रा म्हारा लोटण करला,
कया सैं बुहावां नागर वेल,
सुसरां जी रा प्यारा
मजल मजल घर ग्राव ।)

१४. हसती तो कजली देसां रा ल्याज्यो,
घुड़ला थे भल ल्याज्यो जी,
करला तो मारू देसा रा ल्याज्यो,
बायण लाज्यो जी, नोबत भारी जी,
नोबत भारी जी, दशरथ जी रा छावा
जान ग्रटारी ल्यायाजी, नोबत भारी जी ।

(देवर का ढाळ)

(ग्रामी सामी बाग देवरिया,
नित उठ तुररा टागो जी,
इण तुररा कै कारणै देवर,

प्यारा लागो जी, देवर म्हारा जी,
देवर म्हारा जी, सीतारामजी देवर,
भाभी नै प्यारा जी, देवर म्हारा जी ।)

१५. हमनी थे भल ल्यावज्यो जो बना मुगां म्हारी,
ए जी बना घुड़ला रै रळकै थे आय,
बनाजी सोभा भारी, बनड़ै नै बनड़ी प्यारी ।

(मीठणें की ढाळ)

१६. हा जी बना, रात गई अधरात,
मोड़ा क्यूं पधारिया जी म्हारा राज ।

(जँवाई की ढाळ)

(हारे बाना, दरण मरवणिया री पाळ,
जँवाई धोवै धोतियां जी म्हारा राज)

१७ हमनी वजळी देसा रा ल्याय जी,
कोई घुड़ला थे ल्याज्यो धुर खुरसाण रा ।

(मुरळं की ढाळ)

१८ हमनी थे भल ल्यावो म्हारा बनड़ा,
घुड़ला थे भल ल्यावो जी,
करला मारू देस रा बना, वाहण ल्यावो जी,
बनो म्हारो लाखा रो,
लाखा रो बाबाजी रो प्यारो, घणो पियारो जी,
बनो म्हारो लाखा रो ।

(पनजी की ढाळ)

१९ हा जी बना, हमनी थे भल ल्याय,
घुड़ला रै घमकै आज्यो जी,
हा हा रै, घुड़ला रै घमकै आज्यो जी ।

(गीगै की ढाळ)

(हा ओ गीगा, गीगै का ताउजी दलाल,
दलाली टोपी ल्याया जी,
हा हा रै, दलाली टोपी ल्याया जी ।

२०. बना जी, थे तो हाथी पे असवार व्हाज्यो,
घुड़ला रै धमकै आज्यो जी,
म्हारा लाडला बनडाजी।

(भात की ढाल)

(सांगजी म्हारै माथै में सैमद ल्याज्यो,
म्हारी रमरी बैठ पहराज्यो जी,
म्हारा रिमक झिमक मती आज्यो)

घोड़ी गीत

१. घोड़ी तो कचन बनड़ा ब्यानणी जी,
हाँ जी बना गढ मुलतान सैं आय,
नवल बनै की घोड़ी जो चरै जी।

(पीपळी की ढाळ)

२. घोड़ी तो कहिये चचल ब्यानणी,
गढ मुलतान सैं आई जी बनड़ा।

(मोळयू की ढाळ)

३. घोड़ी ऊभी घर कै जी बा'र,
मोल मुलावो जी बनाजी घोड़ी मोलसी।

(सजनां की ढाळ)

४. घोड़ी तो चचल जी क बनड़ा ब्यानणी जी
कोई गढ मुलतान में आय,
नवल बनै की जी क घोडी जो चरै जी।

(चनणा की ढाळ)

५. घोड़ी तो चचल बनड़ा ब्यानणी जी,
कोई गढ मुलतान सें ए जी ए आय,
नवल बनै की घोड़ी जो चरै जी।

(होळी की ढाळ)

(गढ सैं तो होळी जी ऊतरी,
मारू, हाथ कँगण माथै मोड़,
जो होली आई सायब धन घड़ी।)

६. घोड़ी तो चंचल च्यानणी जी,
कोई गढ़ मुलतान सूं आवै राज,
घोड़ी जो चरै ।

(लहरिये की ढाळ)

(लैंहरयो तो लेद्यो गोरी रा सायबांजी,
थारी गोरी धण नै लैंहरयो रो चाव राज,
लैंहरयो लेद्यो जी ।)

बनड़ी गीत

१. बनड़ी ऊभी छाजलियां री छांह,
बाबुल मागै ए म्हारी बाळक बनड़ी री वीनती ।

(गजना की ढाळ)

२. बनड़ी ऊभी सरवरिया री पाळ,
बाबोजी मागै बीनती जी म्हारा राज ।

(घूघरी की ढाळ)

३ हां ए म्हारी बनड़ी माया नै मैंमद नैर,
रखड़ी थी, रखड़ी की छिब न्यारियां जी,
म्हारा राज रखड़ी थी ।

(हिंडोलै की राग)

४. माया नै मैंमद ए नवल बनी पैरल्यो जी,
थारी रखड़ी रो हद सिणगार,
बनड़ां बुलावै ए बनीजी रंग म्हैल मे जी ।

(बनड़ा की ढाळ)

५. माया नै मैंमद बनड़ी पैरल्यो,
रखड़ी रतन जड़ावो ए बनड़ी ।

(मोरूडू की ढाळ)

६. माया नै मैंमद बनड़ी पैरल्यो ए,
हां ए बनी, रखड़ी रो हद सिणगार,
बनी नै दिखाद्यो हिरड़ को सांकरो जी ।

(पीपळी की ढाळ)

७. माथा नैं मैंमद पैरल्यो ए,
रगड़ी रो भगर बणाय,
बनी ए म्हानैं प्यारा थे लागो ए।

८. बनड़ी ऊभी सरवरियां री पाळ,
बाबोजी आगैं कर रही बीनती,
म्रो म्हारी बनड़ी, जी म्रो,
बनड़ी ऊभी सरवरियां री पाळ। (कूंजा की ढाळ)

९. बाबा जी रैं गोला बैठी बनड़ी कागद लिख रही जी,
बेगो बेगा सैं म्रावो रायजादा, दादी कामण गारी जी,
करड़ा कामण करसी बना, थानैं कामण करसी ली,
बनो म्हारो लाखा रो। (सरापत की ढाळ)

१० ऊभी बनडी झाजलिया री छाह, बालक बनडी,
करैं ए दादोजी रैं ग्रागैं बीनती।
दादोजी म्हारा ऐसो वर हेर, दादोजी म्रो म्हारा,
सुहेल्यां सरावैं जोडी को बर म्रायसी। (पनजी की ढाळ)

(चादा थारी चकमक रात, बाई म्रो लाछा,
चाद उजाळैं जी पाणी नीसरी।
गई गई समद तळाव, ब.ई म्रो लाछा,
डेरा तो ढाळ्या म्रो चम्पा बाग में।) (लाछा की ढाळ)

जँवाई गीत

१. साख्या रे भाई साड पिलाण,
तडकैं सिधारा रैं म्रोठीडा सुगणैं सासरैं।

कोठे सैं म्राया जी जँवाई प्यारा पावणा जी,
कोई कोठे लियो थैं मुकाम,
बाईजी नैं लेवण जी जँवाई म्राया पावणा जी। (सजना की ढाळ)

(चनणा की ढाळ)

३. हा जी कँवरजी, कुण्या जी रा रावलिया रजपूत,
कुण्या घर, कुण्यां घर धाया पावणा जी,
म्हारा राज कुण्या घर ।

(हिंडोली की ढाळ)

४. मुरला लाल थे छो जँवाई म्हारै माथै परली मेंमद मो,
मेड़तिया मो लाल, कमधजिया मो लाल,
थे छो जँवाई म्हारा काना मांयला कुण्डळ, मुरला लाल,

(जल्लै की ढाळ)

५. जँवाईसा रे पेचो सोवँ ए,
धम्बा ए, किलँग्या री जगाजोत,
जँवाईसा नँ रात सीज्यो ए ।

(दूसरे जल्लै की ढाळ)

(जलो गिरदार म्हारो ए,
धम्बा ए, थाकड़ली मूंछ्या रो,
जलो उमराव म्हारो ए ।)

यहाँ जो अनुकरणात्मक लोकगीतों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, ये कुछ पुराने हैं और साथ ही प्रचलित भी हैं । वर्तमान युग मे भी लोकगीतो की 'ढाळो' के आधार पर अनेक गीत रचे जरूर गए हैं परन्तु वे विशेष प्रचलित नही हुए । फिर भी इनका आधार विशेष उद्देश्य से ग्रहण किया गया है, यह निसंदेह है । यहाँ 'मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत' नामक पुस्तक मे से कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं.—

१. सहेल्यो जरा विचारो ए,
कोई मूरखना बस होय न, अपणो जलम बिगाडोए ।
भीणी धोती बाध कँ स रे, घूमोसरे बजार ।
अदब दिखावो वणी निमरमी, बिलकुल वणी गँवार ।।

(जकड़ी की रँगत)

२. यो तो बनड़ो बड़ो रमीलो,
या को चमड़ो पड़ गयो ढीलो,
ए सँया देखण चाला,
बूढ़ो वर बण्यो देखण चाला ।

(खटमल की रँगत)

३. ओढो ओढो ए बड़ भागण,
ओढो देसी चूनडी।

(चूनड़ी की रंगत)

४. सैंयो मोरी प्रात समै उठ,
ईश्वर का गुण गावो ए, तज कर अळसाक,
वासी घर को काम करो हुळसावो मोरी वीर।

(जतलै की रगत)

५. ओ जी गोरी रा लसकरिया,
चरखो तो ल्याद्यो बैठ चलावा जी ढोला।

(ओळ्यूं की रगत)

ऊपर दिए गए उदाहरणो पर ध्यान देने से सहज ही प्रकट होता समयानुसार 'देशियो' के आधार पर गीत काफी पुराने समय से बनते रहे इस प्रकार बने हुए पुराने गीतों में अधिकाशत: धार्मिक वातावरण है और प्रवृत्ति अब भी चालू है। कुछ बाद के बने हुए गीतो में पारिवारिक सम्बन पर विशेष ध्यान दिया गया है और इस प्रकार बने हुए गीत स्वय लोकगीत का रूप धारण कर चुके है। वर्तमान युग मे बने हुए अनुकरणात्मक गीतों मे समाजसुधार की भावना प्रकट हुई है। इसी प्रकार 'विकासकार्य' से सम्वन्धित ऐसे गीत भी अनेकश: सुने जाते हैं, जिनमे 'लोकधुनों' का सहारा लिया गया है। इस विषय मे भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है। निम्न गीत फागुन की लूहर की तर्ज पर है:—

करसो सारा जागो भाइयो, भार देश रो आयो रे,
अन्न री तकलीफ मिटी, व्हैगो कायो रे. करसो चेतजो,
हा रे करसो चेतजो,
सहकारी खेती हाथो झेलजो, करसो चेतजो।
छोटा-छोटा खेत थोरे दूणो खरचो लागे रे,
रोज री लड़ाई होवे, धरती छीजे रे, करसो चेतजो,
हां रे करसों चेतजो,
फूट मे फजीती थोरी रे, करसों चेतजो।

(सहकारी गीत माला)

इस प्रकार इस तथ्य को कोई अस्वीकार नही कर सकता कि किस विचारधारा को लोकप्रचलित बनाने के लिए यह एक सुन्दर साधन है कि उसे

विवाह में लोकधुन का सहारा लेकर उसे जनता की किसी अंग में अपनी चीज के रूप में प्रस्तुत किया जावे। यह प्रक्रिया काफी पुराने समय से अपनाई भी जाती रही है।

ऊपर दिए गए विविध उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि चनणा, घूघरी, मोरूयू गजरा, मासा लाखन, जलाल, मुरली, हिंडोळो, पीपळी, कूंजां, बनाळी, पणिहारी आदि अनेक लोकगीतों की 'ढाळें' राजस्थानी लोकसंगीत की विशिष्ट 'चीजें' हैं और अनुकरणात्मक गीत प्राय. इन्ही के आधार पर बने हैं। पर एक प्रकार से इनको राजस्थानी लोक संगीत की 'रागों' की संज्ञा दी जा सकती है। इन 'रागों' के शास्त्रीय अध्ययन एव विवेचन की आवश्यकता है। लोक जीवन इन से रस एव प्रेरणा प्राप्त करता रहा है, अतः इनके अमृत-तत्व की शोध परम वाञ्छनीय है। आशा है, संगीत विद्या के प्रेमी एव विद्वान इस ओर अवश्य समुचित ध्यान देंगे।

संस्कृत के माध्यम से संकलित राजस्थानी लोक कथाएँ

राजस्थान की कथाएँ राजस्थानी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत के माध्यम से भी बडी संख्या मे संकलित की गई हैं। इस विषय में जैन विद्वानो द्वारा संगृहीत 'कथाकोश' ग्रन्थ बडे महत्वपूर्ण हैं। उनमे प्राचीन शास्त्रीय-कथाओ के साथ ही अनेक लोक प्रचलित कथानको को भी स्थान दिया गया है। इस दृष्टि से मुनि राजशेखर सूरि (समय पद्रहवी शती) का 'कथाकोश' (विनोद कथा संग्रह सहित), श्री शुभशील गणि का पञ्चशती प्रबोध सम्बन्ध' (सं० १५२१) तथा मुनि हेमविजय गणि का 'कथा रत्नाकर (सं० १६५७) विशेष महत्वपूर्ण हैं। ये ग्रंथ संस्कृत मे लिखे गए हैं परन्तु साथ ही इनमे यत्र तत्र लौकिक गाथाएँ भी संकलित करली गई हैं। राजस्थानी तथा गुजराती लोक कथाओ के अध्ययन हेतु ये ग्रन्थ बडे उपयोगी है। यहाँ इन्ही ग्रन्थों को मूलाधार मान कर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इन ग्रन्थों मे लौकिक कथाओं के संकलित किए जाने का जो समय सूचित किया गया है, निश्चय ही वे उससे काफी पुरानी हैं और अन्वेषण करने से उनके सूत्र और भी प्राचीन सिद्ध हो सकते हैं। यह विषय श्रमसाध्य है परन्तु साथ ही रोचक भी है। अतः विद्वानों को इस दिशा मे ... होना चाहिए।

१. देवी मन्ड में बैठी टरड़का करै है

राजस्थान मे एक कहावत प्रचलित है–देवी मन्ड मे बैठी टरड़का करै है, कदे वाणिये नै बेटो कोनीं दियो अर्थात् देवी अपने स्थान पर बैठी हुई बड़ी-बड़ी बातें बना रही है, उसने कभी किसी बनिए को बेटा नहीं दिया अन्यथा तो उसकी भी दुर्गति होती। इस कहावत से सम्बन्धित कथा सार-रूप मे इस प्रकार है—

एक बनिए के पुत्र न था। उसने भैरव देवता की मनौती की कि यदि वह पुत्रवान् हो जाएगा तो देवता को एक भैंसा भेंट करेगा। फर यह हुआ कि उसको पुत्र की प्राप्ति हो गई। अब भैरव देवता को भैंसा चढ़ाना था। इसके निमित्त बनिए ने एक मोटा सा भैंसा खरीदा और उसे लेकर वह भैरव के स्थान पर गया। वहा भैंसा चढ़ाने का बनिए को यही उपाय सूझा कि उस भैंसे की रस्सी को उसने भैरव की मूर्ति से बाध कर बांध दिया। फिर वह पूजा सम्पन्न करके अपने घर लौट आया।

कुछ समय तक वह भैंसा भैरव देवता के सामने चुप खड़ा रहा परन्तु जब वहाँ धूप आ गई तो उसे गर्मी अनुभव हुई और प्यास लगी। उसने रस्सी को खैंचा। रस्सी मजबूत थी और भैरव की मूर्ति से बन्धी हुई थी। जोर पड़ने पर भैरव प्रतिमा अपने स्थान से उखड़ गई और भैंसा उसे घसीट कर ले चला।

मार्ग मे एक देवी का मन्दिर आया। वहां बैठी हुई देवी ने देखा कि भैरव को एक भैंसा घसीट कर ले जा रहा है। वह समवेदना प्रकट करते हुए बोली, "अरे भैरव भैया, आज तुम्हारा यह क्या हाल हो रहा है?" इधर भैरव को घसीटे जाने से पीड़ा हो रही थी। उसने मुंह बना कर उत्तर दिया, "देवी माढ मे ई बैठी टरड़का करै है, कदे वाणिये नै बेटो कोनी दियो।"

यह लोक कथा बड़ी जनप्रिय है। इसका एक रोचक रूपान्तर मुनि राजशेखर सूरि विरचित कथाकोश मे वर्णित किया गया है। उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है।

एक बनिये के पुत्र नहीं था। उसकी पत्नी ने देवी चामुण्डा से प्रार्थना की कि यदि उसे पुत्र लाभ होगा तो वह भैंस लाकर उसका बध करके देवी की पूजा करेगी। समय पर सेठानी के पुत्र पैदा हुआ तो उसने अपने पति से अपनी मनौती पूरी करने के लिए कहा। सेठ ने उसकी बात स्वीकार करके

और उसने तीन सात रुपये के तीन रत्न जड़ित सोने के फूल बनवाए। फिर वह पूजा के निमित्त देवी चामुण्डा के स्थान पर पहुँचा। उसने दो फूल देवी की दोनों भुजाओं पर और एक उसके मस्तक पर चढ़ा दिया और फिर उन तीनों फूलों को मांगे लिए, अपनी पत्नी के लिए और अपने पुत्र के लिए देवी से उधार रूप में वापिस उतार कर ले लिया और घर लौट आया।

इस प्रकार बनिये से ठगी हुई देवी अपनी शिकायत लेकर 'भैरव' नामक यक्ष के पास पहुँची। देवी का पूरा वृत्तान्त सुन कर भैरव बोला कि देवी लाभ में ही है। उस धूर्त बनिये ने उसकी स्वयं की तो बड़ी दुर्गति की है। इस पर भैरव ने अपना हाल सुनाया—

एक बार उस बनिये का व्यापारी जहाज समुद्र में कहीं भटक गया था और उसका पता भी नहीं चल रहा था। इस पर बनिये ने अपना जहाज वापिस आने पर देव को भैंसा चढ़ाने की मनौती बोली। तब देव समुद्र में तलाश करके उसका माल से भरा जहाज सुरक्षित किनारे पर ले आया। इससे बनिये को बड़ा लाभ हुआ। फिर अपना वचन पूरा करने के लिए वह बनिया एक जवान भैंसा लाया। उसने देव प्रतिमा के गले में भैंसे की रस्सी कसकर बांध दी। जब बनिये ने पूजा के बाजे बजवाये तो भैंसा घबरा कर उस देव की मूर्ति को उखाड़ कर ले भागा। इस प्रकार घसीटने के कारण उसके शरीर में कई घाव हो गए, जो ठीक भी नहीं हो पाए थे। ऐसी स्थिति में देवी लाभ में ही थी कि उसे किसी प्रकार की पीड़ा तो सहन नहीं करनी पड़ी।

ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीन कथा का धूर्त बनिया चालू कथा में सरल स्वभाव का बन गया है और उसके भोलेपन के कारण ही भैंरव को कष्ट उठाना पड़ा है। प्राचीन कथा का बीज श्लोक इस प्रकार है।

निस्पृहा अपि वञ्च्यन्ते, दाम्भिकैः किं पुनर्नराः।
देवी यक्षश्च वणिजा, लीलया वञ्चितावुभौ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि इस कहानी में दो कथाएँ मिल गई हैं। मरुभारती (१०/३) में प्रकाशित 'तीन सौ पाँच' कथाओं की एक पुरानी सूची में एक स्वतन्त्र कथा का नाम 'जैन यक्ष ठग्यो तीन फूल करी' दिया है। श्री गौतम कुलक बाला प्रबोध (पद्म विजय) में इस कथा का सेठ ... हेतु यक्ष की मनौती बोलता है और वह देव को सौ भैंसे तथा रुपये की पूजा चढ़ाने को कहता है। वहां देवी की चर्चा नहीं ... यक्ष की दुर्गति ही है परन्तु फिर भी देवता के पल्ले कुछ नहीं

पड़ना (द्रष्टव्य जैन कथा रत्न कोश, भाग छठा)। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही लोक कथा ने समयानुसार अनेक रूप धारण किए हैं।

२. कडुग्रा बडुग्रा सोही बोही

मरुभारती (१४/३) में तीन सौ पांच कथाओं की एक सूची प्रकाशित की गई है जो पुरानी है। इस सूची में संख्या नौ की कथा का नाम 'कडुग्रा बडुग्रा सोही बोही' कथा दिया गया है। शीर्षक देखने में अनोखा सा प्रतीत होता है। यह कथा भी मुनि राज शेखर प्रणीत कथा कोश में संकलित है। कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

पुष्पपुर नगर में चन्द्र नामक सेठ निवास करता था। वह परम धार्मिक एवं सात्विक वृत्ति का था। इसी प्रकार उस नगर का राजा अरिमर्दन भी बड़ा प्रजापालक था। एक बार उस नगर में कडुग्रा और बडुग्रा नामक दो राक्षस अपनी सोही नामवाली बहिन के साथ ग्रा घुसे। वे तीनों अदृश्य रह कर वहां के लोगों में भयंकर रोग उत्पन्न करते जिस से बड़ी संख्या में मनुष्य मरने लगे। इस संकट से नगर में भारी घबराहट फैल गई और राजा भी बड़ा चिन्तित हुआ। एक दिन राजा ने अपने दरबार में प्रकट किया कि जो व्यक्ति इस नगरसंकट का कारण मालूम करके इसे दूर कर देगा, उसे प्रचुर धन भेंट किया जाएगा। इस समय चंद्र सेठ भी दरबार में ही था और उसने राजा की यह घोषणा सुनी। फिर वह अपने घर आ गया।

चन्द्र सेठ अपने बालकों के खाने के लिए घर में तिल लाया था और वे बच्चों को दे दिये गए थे। जब बच्चे तिल खाने तो बोले कि वे कडुए हैं और उनमें कंकर भी मिले हैं। इसी समय सेठ के घर के बाहर वे दोनों राक्षस और उनकी बहन खड़े थे। वे धर्मात्मा सेठ के घर में सहज ही नहीं घुस सकते थे, अतः वे कोई अवसर देख रहे थे। सेठ ने बच्चों की आवाज अपने कमरे में बैठे हुए सुनी तो वह जोर से बोला "कडुग्रा-बडुग्रा सोही (सभी) खा डालो।" इस प्रकार बच्चों ने भी अपनी बात कई बार कही और सेठ ने भी उसी प्रकार तेज आवाज में उनको उत्तर दिया। बाहर खड़े हुए राक्षसों को बच्चों की धीमी बोली तो नहीं सुनाई पड़ सकी परन्तु उन्होंने सेठ की तेज आवाज को स्पष्ट सुन लिया। इस पर उन्होंने विचार किया कि हम लोग सर्वथा अदृश्य होकर नगर में रहते हैं परन्तु इस सेठ ने हमारे नाम आदि सब जान लिये हैं। अतः निश्चय ही यह विशेष-शक्ति से

सम्पन्न है अथवा मंत्रज्ञ है, जो त्रिकाल की बात जानता है। अब तो इससे छुटकारा पाना कठिन है। अतः इसकी शरण में जाना ही उचित है।

अपने निश्चय के अनुसार वे तीनों सेठ के सामने प्रकट हुए और प्राणरक्षा के लिए उसके पैरों में पड गए। सेठ ने सारी बात समझ ली और वह कडक कर बोला कि उनका अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता। जब वे बुरी तरह दीनता दिखलाने लगे तो सेठ बोला कि एक बार उनको उसके साथ राजा के सामने जाना पडेगा और फिर उन्हें छोड दिया जायेगा। राक्षसों ने सेठ से अभय वचन लेकर उसके साथ दरबार में जाना मंजूर कर लिया।

चन्द्र सेठ ने उन तीनों राक्षसों को राजा के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। सब लोगों ने नगर के उपद्रव का कारण अपनी आखो से देख लिया। फिर उन तीनों को दूर चले जाने के लिए छोड़ दिया गया और वे भाग गए। सब ने चन्द्र सेठ की बडी प्रशसा की और राजा ने उसे प्रचुर सम्पत्ति भेंट की। सेठ को धन भी मिला और उसका यश भी चारो तरफ फैल गया। यह सब पुण्य का प्रभाव है—

यत्तत् प्रजल्पतः कार्यं सिद्धिर्भवति पुण्यत'।
कडुआ–बडुआ–सोही भापणे श्रेष्ठिचन्द्रवत्॥

इस पुरानी कहानी का रूपान्तर भी लोक प्रचलित है जिसमें एक लडका अपनी माता से चार लड्डू लेकर कमाने के लिए जाता है। वह जगल मे एक कुंए के पास बैठ अपने लड्डूओं को खाने के लिए निकालता है और कहता है एक खाऊँ, दो खाऊँ, तीन खाऊँ, चारो को ही गटक कर जाऊँ।" कुएं में रहने वाले चार भूत इस आवाज को अपने लिए समझ कर घबरा उठते हैं और लड़के के सामने प्रकट होकर प्राणरक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं। इस पर लडका उनसे प्रचुर धन प्राप्त करता है और सम्पन्न होकर अपने घर लौटता है। यह लोक कथा काफी बड़ी है।

३. फोगसी

राजस्थानी कथाओं में फोगसी एवाल (अजापाल) एक विशेष पात्र है। विक्रम और भोज के समान उसके नाम के साथ भी एक कथाचक्र जुड़ा हुआ है। उसकी न्याय बुद्धि प्रसिद्ध है। साथ ही वह अलौकिक–शक्ति से भी सम्पन्न चित्रित किया गया है। भूत–प्रेत उससे भय खाते हैं।

श्री राजशेखरसूरि विरचित कथाकोश में भी एक कथा का प्रधान पात्र फोगसी नामक ब्राह्मण है। कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

कलहिण्या गृहिण्या भो, के के नोद्वेजिता जना.।
साऽत्रागतेति श्रु त्वैव, त्यक्त्वा पात्रं गतोऽमर.॥

वेलवपुर में फोगशिव नामक ब्राह्मण रहता था, जो जन्म से ही दरिद्र तथा अशिक्षित था। उसकी स्त्री कुरूपा एवं भयंकर कलह कारिणी थी। उसके व्यवहार से बेचारा फोगशिव महादुखी था। उसके घर के पास ही एक पेड़ पर एक भूत (भोटिंग) निवास करता था। फोगशिव की स्त्री की कठोरता से दुखी होकर वह भूत वहां से भाग गया। कुछ समय बाद फोगशिव भी एक रात चुपचाप अपने घर से निकल भागा।

फोगशिव भटकता हुआ एक नगर में पहुँचा और एक पेड़ के नीचे आराम करने लगा। उसी पेड़ पर फोगशिव के घरवाला भूत ठहरा हुआ था। उसने फोगशिव को पहिचान लिया और सारा हाल पूछा। फोगशिव ने आपबीती सुनाई तो भूत को उस पर दया आ गई और वह बोला "मैं नगर सेठ के बेटे के सिर चढता हूँ। तू मन्त्रवेत्ता बन कर उसका इलाज कर। इसके लिए पांच सौ द्रव्य लेना तय कर लेना। इस प्रकार तुझे धन मिल जाएगा।" इस योजना से फोगशिव को धन मिल गया और वह उसी नगर में ठहर गया।

कुछ दिनों बाद वही भूत एक मन्त्री के पुत्र के सिर चढा। वहां भी फोगशिव मन्त्रसिद्ध बन कर चिकित्सा करने के लिए पहुँचा और प्रचुर धन लेना तय किया। भूत वहां फोगशिव को देख कर बड़ा क्रोधित हुआ और उसे भाग ने के लिए बोला तो फोगशिव ने कहा, "मैं तो तुम्हारे भले के लिए आया हूँ। तुम्हें यह सूचना देने के लिए यहां आया हूँ कि मेरी स्त्री इस नगर में आ पहुँची है। इतना सुनते ही भूत भयभीत होकर वहां से भाग गया और फोगशिव को प्रचुर धन प्राप्त हुआ।

इस कथा का नाम-सकेत मुनि कीर्तिसुन्दर विरचित वाग्विलास कथासंग्रह (समय लगभग १७५०) में भी प्राप्त है जो वरदा (वर्ष १ अंक १) में छपी है। वहां कथा संख्या ७ का नाम इस प्रकार सूचित किया गया है 'स्त्री हूंती बापड़िया रो भूत ही नाठो।' 'मार के डर से भूत भागे' कहावत की कहानी के रूप में यह आज भी लोक प्रचलित है। (द्रष्टव्य राजस्थानी कहावतों की कहानियाँ भाग पहला) प्रचलित लोक कथा में

प्रधान पात्र का कोई नाम नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकोश में कथानायक का नाम जो फोगसिंघ दिया गया है वह तत्कालीन लोक कथा के अनुसार है और वहां 'फोगसिंह' = (फोगसिंघ) को संस्कृत रूप देने के लिए 'फोगसिंघ' बना दिया गया है। मुनि हेमविजय गणि ने भी कथा रत्नाकर ग्रन्थ में इसी कथा को संकलित किया है परन्तु प्रधान पात्र का नाम वहां अज्ञात रखा गया है।

पुराना कथा पात्र फोगसी (फोगसिंघ) मंत्र देना बनने का दिखावा मात्र करता है परन्तु वह सफल होकर इस रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है। बाद की कहानियों में फोगसी सचमुच ही मंत्रसिद्ध चित्रित हुआ है। ऐसी स्थिति में यह अनुमान किया जा सकता कि एक कथा पात्र का यह समयानुसार चरित्र विकास है। साथ ही यह भी ध्यान में रखने की बात है कि राजस्थानी जनसाधारण में फोगसी को एक ऐतिहासिक व्यक्ति माना जाता है जिसके नाम से 'फोगसी को धोरो' नामक स्थान भी प्रसिद्ध है।

४. स्वर्ग-दर्शन की अभिलाषा

मुनि राजशेखर सूर कृत संस्कृत कथाकोश में लोभ न करने के सम्बन्ध के 'मोदकी कथा' संकलित की गई है—

सर्वेऽपि लोभिनो यत्र, मन्दबुद्धिजनाश्रिता।
तत्र नैवागुर्मभ्यि ता श्रुत्वा मोदकी कथाम्॥

सुघोषग्राम में सर्वपशु नामक एक तापस रहता था, जिसका मठ नाना प्रकार के वृक्ष लताओं की वाटिका से संयुक्त था। एक बार तापस ने प्रातः काल देखा कि उसकी 'बाड़ी' में गाय के पद चिन्ह अंकित हैं, जिसने रात को उसमें प्रवेश करके काफी वृक्षलताओं की हानि कर डाली है। इसलिये तापस हाथ में लाठी लेकर रात को रख वाली के लिए बाड़ी में बैठ गया। वहां एक गाय आई और चरने लगी तो तापस ने उसकी पूंछ पकड़ ली। वह गाय तत्काल पक्षी के समान आकाश में उड़ गई और तापस उसी के साथ पूंछ पकड़े हुए लटका रहा। अन्त में गाय स्वर्ग में पहुंची और वहां अपने महल में रुकी। गाय ने तापस को कहा, "मैं कामधेनु हूँ। यह मेरा भवन है, सी प्रकार की कमी नहीं। फिर भी मैं धेनु स्वभाव के कारण इधर-उधर न्द करती हूँ और इसीलिए तुम्हारी बाड़ी में गई थी। तुम जब चाहो थ इसी प्रकार आ जाया करो, मैं तुम्हें लड्डू खाने के लिए दूंगी।"

इस पर कामधेनु ने तापस को मधुर लड्डू दिए, जो खाने में बड़े ही स्वादिष्ट थे। फिर कामधेनु के साथ तापस अपने मठ में आ गया।

इस प्रकार कामधेनु और तापस का आना-जाना बना रहा। एक दिन तापस ने कामधेनु से निवेदन किया कि उसकी कृपा हो तो वह अपने शिष्यों को भी इसी प्रकार लाकर स्वर्ग के लड्डू खिलावे। कामधेनु ने तापस की प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा कि उसके शिष्य उसके पैर पकड़ कर लटक सकते है और इसपरम्परा से वहा आ सकते हैं। इस पर तापस ने अपने शिष्यों को स्वर्ग की सैर करने के लिए तथा लड्डू खाने के लिये तैयार किया। एक रात वे सभी एक दूसरे के पैर पकड़ कर कामधेनु की पूँछ से लटक गये। जब कामधेनु आकाश में उड़ी तो गुरुजी उसकी पूछ को पकड़े हुए थे। इसी बीच एक शिष्य ने स्वर्ग के लड्डुओं की चर्चा करके उनका परिमाण पूछा। इस समय गुरुजी अपनी स्थिति भूल गए और हाथ छोड़ कर एक लड्डू का परिमाण बतलाने को हुए कि वे सभी आकाश से नीचे धरती पर आ गिरे।

यह लोककथा अब भी प्रचलित है और 'थोड़ा घणा, बैकुंठ साकड़ी' कहावत की कहानी के रूप में कही जाती है। इस स्वर्ग की अभिलाषा का एक विचित्र रूपान्तर भीम भाड की कहानी में भी है, जो मुनि हेमविजय गणि द्वारा 'कथा रत्नाकर' में सकलित की गई है। वह एक हास्यकथा है और सक्षिप्त रूप में इस प्रकार है—

मथुरा नगरी में मधुमथन नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नामवसुमती था। धीधीनो उसका मन्त्री था और यशोदा उसके यहा धाय थी। उस समय मथुरा में भीम नामक एक भाड रहता था, जो बडा चालाक और अपनी कला में कुशल था। राजा मधुमथन की भीम पर बड़ी कृपा थी। एक दिन राजा ने भाँड से कहा कि यदि वह उसे धोखा दे सके तो उसे एक लाख रुपये की इनाम दी जायेगी। भीम ने राजा के इस वचन को मन में धारण कर लिया और बिना कुछ कहे वह अपने घर आ गया।

कुछ दिनो बाद भीम भाड के बीमार होने की चर्चा मथुरा में फैली। इसके बाद उसके मरने की खबर फैल गई। राजा को अपने मुंहलगे भाड के मरने से बड़ा दुःख हुआ परन्तु जल्दी ही बात समाप्त हो गई।

राजघराने की धाय यशोदा बड़ी शिवभक्त थी। एक रात वह अपने सो रही थी कि स्वय शिवजी उसके घर पहुँचे। जब यशोदा ने उनका दर्शन किया तो वह धन्य हो गई। शकर ने उसकी भक्ति पर परम प्रसन्नता प्रकट की और इसी प्रकार उसे दर्शन देना शुरू कर दिया। असल में शकर भगवान

तो स्वयं भीम भांड ही था, जिसका पुतला श्मशान में जला कर मरा हुआ घोषित कर दिया गया था। एक रात यशोदा ने शिवजी से निवेदन किया कि उसे जीवित अवस्था में स्वर्ग दिखलाने की कृपा की जावे। शिवजी ने प्रकट किया कि इस कार्य के लिये इन्द्र से पूछना पड़ेगा और वे सात दिन के बाद आकर उसे स्वर्ग ले जा सकेंगे।

अगले दिन यशोदा ने अपनी स्वर्ग यात्रा की तैयारी की और उसने यह बात रानी के सामने प्रकट की तो वह भी स्वर्ग जाने के लिए उत्सुक हो उठी। इसी समाचार को सुन कर राजा और मन्त्री भी स्वर्ग जाने के लिए तैयार हो गए। महादेवजी से इन सब को भी साथ ले चलने की अनुमति ले ली गई। शर्त यह थी वे सब नंगे होकर और अपनी आखो पर कस कर पट्टी बांधे तैयार रहेंगे। जब शिवजी कहेंगे तो वे उनके नान्दीश्वरकी पूँछ पकड़ लेंगे और उनके पीछे एक दूसरे को पकडे हुए चलेंगे। इनमे जिस किसी की पट्टी ढीली रहेगी वह स्वर्ग नही देख सकेगा। सबने यह शर्त स्वीकार की और समय पर इसी रूप में वे शिवजी के नान्दीश्वर की पूछ पकड कर एक रात स्वर्ग की यात्रा के लिए चल पड़े। नान्दीश्वर के पीछे-पीछे वे इसी प्रकार रात भर चलते रहे। उन्हें भान नही था कि वे किस मार्ग पर चल रहे हैं।

जब दिन निकला तो उन्होने कुछ लोगो की आवाज सुनी, जो आश्चर्य पूर्ण हसी हस रहे थे। उन्होंने स्वर्ग आया समझ लिया और अपनी आखो से पट्टी दूर की तो अपने आप को अपनी नगरी के ही तालाब के पास लोगों की भीड़ के बीच मे खड़ा पाया। पता नहीं शंकर भगवान और उनका नान्दीश्वर कहा चले गए ?

थोडे दिनों बाद भांड राजा के सामने उपस्थित हुआ तो राजा ने पूछा कि वह मरकर वापिस कैसे आ पहुंचा ? इस पर भांड ने निवेदन किया कि वे भी तो स्वर्ग जाकर वापिस वहां आ गए है। अब राजा को पता चला कि वह सारी लीला भीम भांड की ही थी, अतः उसे सवा लाख रुपया दिया गया।

इस कथा के आधुनिक प्रचलित रूप में कथानायक धनी मठाधीश, वेश्या, कंजूस सेठ, राजमन्त्री तथा राजा से उनकी प्रचुर सम्पत्ति दान करवा कर इसी प्रकार उनको स्वर्ग दर्शन करवाता है। इस प्रकार स्वर्ग दर्शन की अभिलाषा एक 'कथानक रूढ़ि' के रूप मे प्रकट होती है धार्मिक वातावरण मे मनुष्य की यह तीव्र अभिलाषा सदा से रही है कि वह सशरीर स्वर्ग मे जाकर वहा की सब चीजें देखे। इन कथाओं में यही अभिलाषा प्रतिफलित हुई है और साथ ही इसका परिणाम भी प्रकट है।

जिस प्रकार भीम भाट ने राजा को प्रतारित किया है, उसी प्रकार अन्य भी कई कहानियों में पात्र मरने वाले को मरा हुआ दिखाकर पुन प्रकट हो जाते हैं।

५. आपकी कमाई पाणी में ई कोनी डुबै

यह कहावत राजस्थान में बड़ी प्रसिद्ध है। श्री शुभशील गणि ने अपने संस्कृत ग्रंथ 'पञ्चशती प्रबोध सम्बन्ध' (सम्वत् १५२१) में इसकी कहानी दी है, जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

एक बनिया कपट का व्यापार करता था। उसके पास कई कपट-तराजू थे, जिनके नाम उसने एकपुष्कर, द्विपुष्कर, त्रिपुष्कर, चतुष्पुष्कर पंच पुष्कर, आदि रख छोड़े थे। इन से वह वस्तु लेते समय अधिक लेता था और देते समय तोल में कम देता था। इस प्रकार वर्ष में वह काफी धन कमाता था परन्तु उसकी यह अनुचित कमाई उसके पास नहीं ठहर पाती थी। कभी आग लग जाती, तो कभी चोरी हो जाती। कभी राजा उसका धन हरण कर लेता था।

बनिये की पुत्रवधू ने अपने श्वसुर को समझाया कि कपट की कमाई ठहरती नहीं, वह तो योंही नष्ट हो जाती है। इसके विपरीत अपनी खरी कमाई कभी पानी में नहीं डूबती। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए बहू ने अपने सोने का एक गोला बनवाया और उसे नदी में डलवा दिया। कुछ दिनों बाद वही स्वर्ण-गोला उसके हाथ में वापिस आ गया। धीवर ने नदी में मछली पकड़ी और उसके पेट को चीरा तो उसे वहां गोला प्राप्त हुआ। धीवर उस गोले का मूल्य नहीं समझ सका और उसे बनिये को दे दिया। अब बनिये की बुद्धि में यह बात आई कि अपनी खरी कमाई पानी में भी नहीं डूबती। इसके बाद वह ईमानदारी से व्यापार करने लगा और कालान्तर में धनवान बन गया।

यह कथा उपदेशात्मक है। इसका एक रूपान्तर भी श्री शुभशील गणि ने अपने ग्रंथ में संकलित किया है। उसमें भी बनिये की हाट में कई कपट-तराजू हैं एक-पोकर, 'दो पोकर, तीन-पोकर, चार-पोकर पांच-पोकर आदि। बनिया इनसे सामान खरीदने और बेचने में दोनों समय लाभ करता है। उसके एक पुत्र भी है। जब बनिया अनाज लेता है तो वह कहता है, 'बेटा, पंच पोकर तराजु ला।' जब वह सामान बेचता है तो कहता है—बेटा एक पोकर, (दो पोकर, तीन पोकर, चार पोकर) तराजू ला।

है कार्य ही थी, न [illegible] थी, [illegible]।

नई रानी ने इस [illegible] की [illegible]

यह राजा को समस्त पूर्व-वृत्तान्त सुना देती है। राजा [illegible] कार्तिक स्नान के महत्व को समझ जाता है और उसको [illegible] प्रजा को ऐसा करने के लिए आज्ञा देता है।

उपर्युक्त कथा का एक रूपान्तर भी श्री [illegible] ने [illegible] किया है। तदनुसार वन में रहने वाले एक लकड़हारे की स्त्री स्वयं [illegible] एक नदी जल से प्रभु-पूजा करती है और अपने पति को भी ऐसा करने के लिए कहती है। परन्तु वह उसकी बात पर ध्यान नहीं देता। कालान्तर में लकड़हारी मर कर राजपुत्री और फिर राजरानी बनती है। लकड़हारा [illegible] की तरह सिर पर लकड़ी का भार रख कर बेचता है। उसे देख कर राजरानी को पूर्वभव स्मरण हो आता है और वह कहती है—

> अटवी पत्ती नईम जल, तोंइ न बूड़ा हत्थ।
>
> अज्ञ एह कवाडीह, दीसइ नाइ ज सत्थ॥

यह गाथा काफी पुरानी है। सोमप्रभ सूरि विरचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' में इसका निम्न रूप प्राप्त है—

> अडविहि पत्ती नइहि जलु तो वि न वूहा हत्थ।
>
> अव्वो तह कव्वाडियह, अज्ज विसज्जियवत्थ॥

(अटवी के पत्ते और नदी का जल सुलभ था तो भी तूने हाथ नहीं हिलाए। हाय, आज उस कावड़ वाले के तन पर वस्त्र भी नहीं है।)

आज भी यही कथा कार्तिक-मास में कही जाती है। इसकी 'गाथा' का प्रचलित रूप इस प्रकार है—

> कातिगड़ नई न्हादया, हर नर जोड़्या हत्थ।
>
> सायधण बैठी समदरा, तेरी का ही गत्त॥

एक बार एक स्त्री उसकी हाट पर आई और उसने बेटे के प्रति सेठ के सम्बोधन वाक्य सुने। इससे वह चकित होकर बोली 'सेठ तुम्हारे बेटा तो एक ही है, इसके नाम इतने अधिक कैसे रखे गए? सेठ ने बात बनाते हुए तत्काल उत्तर दिया "इसका एक नाम मैंने रखा है, दूसरा इसकी माँ ने रखा है, तीसरा नाम इसके मामा के द्वारा और चौथा इसकी मामी के द्वारा रखा गया है, पाँचवाँ नाम अन्य लोगों की ओर से है।

कथा के इस रूपान्तर मे बनिया और भी अधिक धूर्त बन गया है। इसके पूर्वरूप मे प्रयुक्त 'कथानक रूढ़ि' विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उसमे जल मे विसर्जित स्वर्ण (अथवा गहना) मछली के पेट मे पहुँच जाता है और फिर वह धीवर के माध्यम मे सही मालिक के पास लौट आता है। महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कुंजी भी यही 'अभिप्राय' है। 'पुन्न की जड़ सदा हरी' (राजा और मन्त्रीविषयक) राजस्थानी लोक-कथा मे भी इसका प्रयोग है।

६. करहा म करि करवकड़ो

किसी गाँव मे एक ब्राह्मण रहता था। वह ग्रहण के समय भी दान लेता था। उसकी स्त्री उसे ऐसा न करने के लिए कहा करती थी परन्तु यह मानता न था। कालान्तर मे ब्राह्मण मर कर ऊँट बना और उसकी पत्नी मृत्यु के उपरान्त राजपुत्री हुई। राजपुत्री का विवाह हुआ तो उसी ऊँट पर सामान लादा गया और वह अपने पीहर से पतिगृह के लिए विदा हुई।

सामान के अतिभार से ऊँट कराहने लगा तो राजपुत्री ने उस पर ध्यान दिया। अब उसे पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण हो आया और वह ऊँट से बोली —

करहा म करि करवकडो, भार घणो घर दूरि।
तू लेतो, हूँ वारती, राहु गिळतइ सूरि॥

इतना सुन कर ऊँट को भी पूर्वभव का स्मरण हो आया और उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। आखिर उसने अनशन के द्वारा शरीर छोड़ दिया और वह स्वर्ग को गया।

मुनि श्री शुभशील गणि द्वारा सङ्कलित यह कथा कर्मफल का प्रका-शन करने हेतु एक सुन्दर उदाहरण है। कार्तिक मास में राजस्थानी महिला-वर्ग द्वारा एक पुण्यकथा विशेष रूप से कही और सुनी जाती है। उस कथा का नाम है—'इल्ली घर घुलियो।' उसमें अनाज में रहने वाली एक इल्ली

वह राजा को समस्त पूर्व-वृत्तान्त सुना देती है। राजा भी कर्त्तव्य पालन के महत्त्व को समझ जाता है और उसकी [illegible] करने के लिए आज्ञा देता है।

उपर्युक्त कथा का एक रूपान्तर भी श्री [illegible] ने प्रस्तुत किया है। तदनुसार वन में रहने वाले एक कठियारे की स्त्री [illegible] पुष्प एवं नदी जल से प्रभु-पूजा करती है और अपने पति को भी ऐसा करने के लिए कहती है। परन्तु वह उसकी बात पर ध्यान नहीं देता। कालान्तर में कठियारी मर कर राजपुत्री और फिर राजरानी बनती है। कठियारा [illegible] की तरह सिर पर लकड़ी का भार रख कर बेचता है। उसे देख कर राजरानी को पूर्वभव स्मरण हो आता है और वह कहती है—

अटवी पत्तां नदीय जल, तोइ न बूहा हत्थ।
अज्ज एह बकाडीह, दीसइ साद ज अवत्थ॥

यह गाथा काफी पुरानी है। सोमप्रभ सूरि विरचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' में इसका निम्न रूप प्राप्त है—

अडविहि पत्ती नइहि जलु तो वि न वूहा हत्थ।
अव्वो तह वच्चाडियह, अज्ज विसज्जियवत्थ॥

(अटवी के पत्ते और नदी का जल सुलभ था तो भी तूने हाथ नहीं हिलाए। हाय, आज उस कावड वाले के तन पर वस्त्र भी नहीं है।)

आज भी यही कथा कातिक-मास में कही जाती है। इसकी 'गाथा' का प्रचलित रूप इस प्रकार है—

कातिगडै मह न्हादया, हर नर जोड्या हत्थ।
सायधण बैठी समदरा, तेरी वा ही गत्त॥

७ ऊखाणो कथा

'पञ्चशती प्रबोध सम्बन्ध' में कुछ ऐसी रोचक कथाएँ भी संकलित हैं, जिनके आधार पर जनता मे कहावतें चल पडी हैं। एक कहावत (ऊखाणो) है– 'घर सरीखी यात्रा नही।' इसकी कथा संक्षिप्त रूप मे इस प्रकार है–

एक बार एक वनिये ने अपनी माता की सलाह से किसी सेठ से पाँच सौ द्रम्म ब्याज पर उधार लिये। फिर वह इस रकम को लेकर देव यात्रा के लिए चल पड़ा। वनिया मार्ग मे यात्रा कष्ट से तग आ गया, अतः वह एक गाँव में ठहर गया। उसके पास धन था ही, इसलिए वह गाँव मे मजे से बैठा रहा। जब लोग देवयात्रा से वापिस लौटे तो वह भी उनके साथ अपने घर आ गया।

वनिये ने जिस सेठ से यात्रा के लिए धन उधार लिया था, वह अपनी रकम और ब्याज उससे मांगने लगा। परन्तु वनिया कर्ज चुकाने की स्थिति मे नही था। अन्त मे सेठ ने उसके घर धरना देने का निश्चय किया और कहा, "या तो मुझे मेरी रकम लौटाओ, नही तो मुझे उस देवयात्रा का पुण्य दे दो।"

वनिये ने अपनी देवयात्रा का पुण्य सेठ को देना स्वीकार कर लिया। परन्तु यह बात उसकी माता को पसन्द नही आई। वह अपने बेटे से बोली, "यात्रा पुण्य से स्वर्ग सुख की प्राप्ति होती है। अत यात्रा-पुण्य कभी किसी को नही देना चाहिये।" इस पर वनिये ने अपनी माता को समझाया कि यह घर सरीखी यात्रा नही है। भीतरी भेद सुन कर माता चुप हो गई और सेठ उस यात्रा का पुण्य प्राप्त कर खाली हाथ अपने घर चला गया।

एक अन्य कहावत 'जिम सउ तिम पंचास' की कथा भी नए रूप में दी गई है—

दो मित्र धन कमाने के लिये परदेश गए। वहाँ उनमें से एक ने पचास दीनार और दूसरे ने सौ दीनार कमा कर इकट्ठे किये। फिर वे अपने घर को ओर लौट आए। जब वे अपने नगर के पास पहुँचे काफी रात पड़ चुकी थी और नगर-द्वार बन्द हो चुका था। इसलिये वे वन मे एक देवस्थान पर सोने के लिये चले गए। वहाँ एक साथी सो गया और दूसरा साथी जागता रहा।

जागने वाले ने देखा कि मुकुट हार कुडल आदि आभरणों से प्रकाशमान यक्ष देवता उसके सामने है। अत. उसने लोभवश देवता का हार उतार लेने की चेष्टा से अपना हाथ उठाया। फल यह हुआ की वह देवकोप से

स्तम्भित हो गया। अब तो वह गिड़गिड़ाने लगा और देव से क्षमा माँगने लगा। यक्ष ने कहा कि कमाकर लाया हुआ सम्पूर्ण धन उसके भण्डार में जमा करवा दिया जाए तो उसे क्षमा किया जा सकता है। उसने ऐसा ही करके अपना पिण्ड छुड़ाया और फिर वह सो गया।

जब पहला मित्र सो गया तो दूसरे मित्र को जागने की बारी आई। अपनी बारी में उसने भी यक्ष देवता का हार लेने की चेष्टा में सारी कमाई उसको भेंट चढ़ा दी। दूसरे दिन उन्होंने एक-दूसरे से निम्न पद्यों में अपनी पीड़ा प्रकट करते हुए भवितव्यता की प्रबलता का वर्णन किया—

दूरि दिसतरि चालीआ, वडी करी पुण आस।
आवि दोहिला सधि चडि, जिम सउ तिम पचास॥
ग्रह अवला विहि वकडो, दुज्जण पूरउ आस।
आवि दोहिला सधि चडि, जिम सउ तिम पचास॥

'सौ ज्यूं पचास' कहावत राजस्थान में बड़ी जनप्रिय है। इसकी कहानी दूसरे रूप में भी प्रचलित है। उसकी गाथा इस प्रकार है—

घर घर तो घोटी बिकी, खेत तिला की रास।
नेम निमाणा कयडा, सौ ज्यू और पचास॥

इस कहानी में छोटा साढू अपने बड़े साढू को ठग लेता है। बहिनों के पति आपस में साढू कहे जाते हैं। उपर्युक्त गाथा का एक रूपान्तर इस प्रकार भी है—

बाहर कग्सण मोळवे, घरि तिला री रास।
देहे नणदल दोकडा, सौ ज्यू तिम पचास॥

एक अन्य कहावत है—खिसिए खिसिए पाहि चिगि चिगि भलो, इसकी कहानी इस प्रकार है—

किसी समय एक राजपूत सब प्रकार से सज कर और घोड़े पर चढ़ कर नगर से बाहर निकला। मार्ग में उसकी भेंट एक ब्राह्मण से हुई। ब्राह्मण ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि जूतों के बिना उसे (ब्राह्मण को) कष्ट हो रहा है, अतः उसका कष्ट दूर किया जावे। राजपूत ने अपने जूते उतार कर ब्राह्मण का कष्ट मिटा दिया। फिर तो ब्राह्मण ने उसकी पगड़ी आदि अन्य भी कई चीजें माँग कर प्राप्त करली और वह आगे चल पड़ा।

आगे जाकर ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा कि जब राजपूत ने केवल माँगने मात्र से ही उसे अपनी अनेक चीजें भेंट करदीं तो इसी प्रकार वह अपना

घोड़ा भी उसे दे सकता था। इस विचार को लेकर ब्राह्मण वापिस उस राजपूत के पास आया और उसका घोड़ा मांगा। राजपूत ने लोभी ब्राह्मण पर क्रोध किया और उसकी पीठ पर कोड़ा लगाते हुए कहा, "इतनी चीजें प्राप्त करके भी तेरी इच्छा पूरी नहीं हुई ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "गिणि गिणि थाहि चिणी चिणी भनी।"

राजपूत इस उत्तर को नही समझ सका तो ब्राह्मण ने इसका खुलासा करते हुए कहा कि घोड़ा प्राप्त करने का मौका खो दिया गया, यह उसके मन की गिणि गिणि थी जो कोडे की मार को 'चिणि चिणि' से मिट गई।

इस कहावत का आधुनिक रूप है—चिरमिराट मिट ज्या पण गिरगिराट कोनी मिटै। इसकी कहानी मे एक साधु किसी चौधरी के घर प्रतिदिन भिक्षा लेने के लिए आता था और उसकी भैंस के सींग देखता था, जो ऊपर की ओर उठ कर चक्राकार बने हुए थे। साधु सोचता रहा कि उसका सिर भैंस के सींगो मे पूरा प्रवेश कर सकता है या नही ? एक दिन उसने बैठी हुई भैंस के सींगो मे अपना सिर डाल कर मन की यह शका मिटानी चाही तो भैंस भडक कर उठी और साधु के चोट आई। चौधरी ने दौड कर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की और गिर पडने का कारण पूछा तो साधु ने उपर्युक्त कहावत कह कर अपना हाल सुनाया।

श्री शुभशील गणि ने अपने ग्रंथ मे एक कहावती कथा और भी दी है। कहावत है 'वानर अनइ वीछी खादउ'। कथा सार रूप में इस प्रकार है-

एक बन्दर ने वन मे पडे हुए आम के छिलके को खाने के लिये अपने मुख मे रखा। उस छिलके मे बैठे हुए बिच्छू ने बंदर को काट लिया और उसे असह्य पीडा हुई जिससे वह छटपटाने लगा। ऐसी हालत मे एक अन्य बदर ने उसकी पीडा का कारण पूछा तो उसने कहा कि जहाँ कही पड़ी हुई वस्तु को मुख मे रखने का यह फल है।

गाथा इस प्रकार है—

> जीवज्जीव जीवउ किमइ,
>
> आवइ हाथ न लाउ किमइ।
>
> जीवज्जीव जीवइ ईम,
>
> छोखरि हाथि जीवाहि वानीम ॥

इसी गाथा से मिलती सी एक लौकिक गाथा और भी राजस्थान में प्रचलित है—

के तो जीवो जीवै कोनी ।

जीवै तो इमरत पीवै कोनी ।

कथा इस प्रकार कही जाती है—

किसी बीड़ (जंगल) में एक चालाक गीदड़ रहता था। वह अन्य गीदड़ों से छिप कर मधुमक्खियों के छत्ते का शहद खाता था और काफी मोटा हो गया था। 'जीवो' नामक एक दूसरे गीदड़ ने उसका पीछा किया कि वह क्या खाकर इतना मोटा हो गया है ? चालाक गीदड़ ने उससे पिण्ड छुड़ाने का निश्चय किया और वह 'जीवो' को शहद खाने के लिये भिड़ों के छत्ते के पास ले गया। शहद के लोभ से 'जीवो' ने उस छत्ते पर मुंह मारा कि भिड़ों ने उसे बुरी तरह काट लिया और वह किसी तरह अपनी घुरी (मांद) में आ गया। अगले दिन चालाक गीदड़ ने उसे फिर शहद खाने के लिये बुलाया तो 'जीवो' ने उपर्युक्त गाथा कह सुनाई।

यह कहानी बड़ी महत्त्वपूर्ण है और इसका मूल उत्स अनुसन्धेय है। महाभारत में एक प्राचीन लोककथा सङ्कलित की गई है। वह लोककथा अपने अनुभव के रूप में विदुर ने धृतराष्ट्र को सुनाई है। मूल श्लोक इस प्रकार है—

वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम् ।

ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजम्भकवातिकैः ॥२१॥

कुञ्जभूतं गिरिं सर्वमभितो गन्धमादनम् ।

दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥२२॥

तत्र पश्यामहे सर्वे मधु पीतममाक्षिकम् ।

मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुम्भसंमितम् ॥२३॥

आशीविषैः रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशम् ।

यत् प्राप्य पुरुषो मर्त्यो अमरत्वं निगच्छति ॥२४॥

अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा ।

इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जम्भसाधकाः ॥२५॥

ततः किरातास्तद् दृष्ट्वा प्रार्थयन्तो महीपते ।

विनेशुर्विषमे तस्मिन् ससर्पे गिरिगह्वरे ॥२६॥

तथैव तव पुत्रोऽयं पृथिवीमेक इच्छति ।

मधु पश्यति संमोहात् प्रपातं नानुपश्यति ॥२७॥

(महाभारत ५, ६२, २१–२७)

यहाँ विदुर ने एक प्राचीन लोककथा को अपने व्यक्तिगत अनुभव के रूप में प्रकट किया है, जो कथा कहने की एक शैली है। इस कथा का 'मधुपश्यति नमोहात् प्रपात नानुपश्यति' अंश बड़ा महत्वपूर्ण है। जीवो नामक गीदड की कहानी में यह दूसरे रूप में उपस्थित है। इसी प्रकार 'बानर अगर बीदो सापड' नामक कहावती कथा में भी यह मौजूद है। भारतीय कथा-साहित्य में 'मधु-बिन्दु' अभिप्राय का प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है। इसके विषय में विद्वानों ने बड़ी गहराई से चर्चा की है। इसका मूल उत्स उपर्युक्त महाभारत कथा है। लौकिक उदाहरण के रूप में बन्दर और गीदड से सम्बन्धित दोनों कहानियाँ ध्यान देने योग्य हैं। अधिक जानकारी के लिये 'वरदा' (१२/३) में प्रकाशित लेख द्रष्टव्य है।

८. मैं हूँ खन्तो सँसो

राजस्थान में सैंसो खाती विषयक लोक कथा बड़ी जनप्रिय है। उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

किसी गाँव में सैंसा नामक एक खाती रहता था, जो दूर-दूर के इलाकों में जाकर चोरी करता था। साथ ही उसकी हिम्मत इतनी बढ़ी हुई थी कि वह अपने गांव में भी चोरी करने से न चूकता था। एक बार उसने अपने ही गाँव के ठाकुर की भैंस चुरा ली और उसे दूसरी जगह पहुँचा दिया।

ठाकुर ने भैंस की बड़ी तलाश की परन्तु उसका कोई पता नहीं चला। गाँव के लोगों को भी काफी डराया गया परन्तु कोई फल नहीं निकला। अन्त में ठाकुर ने हुक्म दिया कि गाँव का प्रत्येक व्यक्ति माता (देवी) के मन्दिर में जाकर प्रतिमा से अपना हाथ छुवाएगा। जो चोर होगा, उसका हाथ मूर्ति से चिपक जाएगा। उस देवी मूर्ति के बारे में यही मान्यता थी।

जब सैंसा खाती ने राजा का हुक्म सुना तो वह माता का चमत्कार देखने के लिए रात के समय चुप-चाप मन्दिर में गया और उसने मूर्ति का अपने हाथ से स्पर्श किया। उसका हाथ तत्काल वहीं चिपक गया। इस पर सैंसा ने दूसरे हाथ की कुल्हाड़ी से उस पत्थर की मूर्ति को तोड़ना शुरू किया। इस क्रिया से माता भी घबराई और उसने चोर का हाथ अलग कर दिया। इसके बाद सैंसा निश्चित होकर अपने घर में आ सोया।

अगले दिन ठाकुर की उपस्थिति में बारी-बारी से उस गाँव के

प्रत्येक सिपाही ने माता की मूर्ति से अपना हाथ छुवाया परन्तु किसी का हाथ उनसे नहीं चिपका और वे सब निर्दोष सिद्ध हुए। जब गैंगा नाई की बारी आई तो वह देवी के पास गया और धीरे से बोला —

तूं है माता बावरी। भेंग गई है नावरी ॥

मैं हूं नाई गैंगो। थो ही गुनाहो यो ही वैगो ॥

गौविशाल की घटना का स्मरण करके माता घबरा गई। उसने गैंगा का हाथ भी नहीं चिपकाया। इस प्रकार वह सब की नजरों में निर्दोष बना रहा और ठाकुर उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका।

देवी विषयक इस कथा का पुराना रूप अनुसन्धेय है। मुनि हेमविजय गणि ने 'कथारत्नाकर' ग्रन्थ में एक कथा वर्णित की है, जिस में इसका प्राचीन रूप द्रष्टव्य है। उसका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

पुराने जमाने में उज्जैन नगरी में खाफरा (खपर) नामक चोर रहता था। वह चोरी की कला में अत्यन्त प्रवीण तथा बड़ा हिम्मत वाला था। एक बार रात्रि के समय खाफरा श्मशान में गया। वहां उसने अंगारों पर रोटी सेकी। फिर वह हरसिद्धि देवी के मन्दिर में पहुंचा। मन्दिर में कुछ ऊंचाई पर तेल का दीपक जल रहा था। रोटी खाफरा के पास थी। वह हरसिद्धि देवी के ऊपर अपना पैर रख कर दीपक के तेल से रोटी चुपड़ कर खाने लगा। देवी ने ऐसी स्थिति कभी अनुभव नहीं की थी। अतः उसने चकित होकर अपनी जीभ बाहर निकाली। इस पर खाफरा ने समझा कि देवी को भी भूख लगी है और उसने अपने मुंह का जूंठा ग्रास देवी की जीभ पर रख दिया। यह स्थिति देवी के लिए और भी विकट थी–एक मनुष्य ने अपना जूंठा ग्रास उसकी जीभ पर रख दिया! परन्तु देवी को उस मनुष्य का कुछ भी बिगाड़ करने की हिम्मत नहीं हुई। वह तो केवल इतना ही कर सकी कि चोर के जूठे भोजन से अपवित्र अपनी जीभ को बाहर ही निकाले रही। कुछ समय बाद खाफरा वहां से चला गया।

अगले दिन लोगों ने देखा कि देवी हरसिद्धि की जीभ बाहर निकली हुई है, जो कोप की सूचक है। अतः देवी को प्रसन्न करने के लिये उसकी नाना प्रकार से सेवा पूजा की गई। फिर भी देवी की जीभ उसके मुंह में नहीं गई और वह ज्यों की त्यों बाहर ही रही। इस पर लोग बहुत डरे और नगरी में भयंकर उपद्रव की आशंका करने लगे। जब यह सूचना राजा विक्रमादित्य के पास पहुंची तो उन्होंने प्रजा का भय दूर करने का निश्चय

किया। राजा ने नगरी में ढिंढोरा पिटवाया कि जो व्यक्ति देवी को प्रसन्न करके उसकी जीभ उसके मुँह मे प्रविष्ट करवा देगा उसे प्रचुर स्वर्णराशि दी जाएगी।

खाफरा को यह अच्छा मौका मिला। उसने देवी को राजी कर देने के लिए हाँ भरदी। फिर खाफरा देवी के मन्दिर मे गया और उसने भीतर से किवाड़ बंद कर लिए। वहाँ मन्दिर में उसके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति न था। खाफरा ने एक बड़ा सा पत्थर उठाया और वह देवी से बोला, 'या तो अपनी जीभ मुँह मे डाल ले, नहीं तो इस पत्थर से अभी तेरे टुकड़े-टुकड़े कर देता हूँ'। देवी उस दुष्ट को जानती थी अतः उसने भयभीत होकर अपनी जीभ मुँह के भीतर रखली। फिर खाफरा ने मन्दिर के किवाड़ खोल दिये और जनता ने देवी को सदा की तरह सामान्य स्थिति में देखा। फलस्वरूप खाफरा को काफी सोना मिला और इसकी प्रशंसा भी हुई।

चोरो की चालाकी और उनकी हिम्मत से सम्बन्धित अनेक लोक कथाएँ खाफरा के नाम के साथ जुड़ गई हैं। इस कथा मे भी ऐसा ही हुआ है। राजस्थान मे तो 'खप्परिया चोर' बहुत अधिक लोक कथाओं का नायक है। परन्तु उपर्युक्त दोनों कथानको की तुलना करने मे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो प्रचलित राजस्थानी लोक कथा इस पुरानी कहानी का ही एक विशिष्ट रूपान्तर है। समयानुसार लोक कथाओं मे परिवर्तन होता ही रहता है। यह एक रोचक विषय है कि पुरानी कहानी का खाफरा उसके आधुनिक रूप मे खेंसो खाली बन कर लोकप्रिय है। कहानी के दोनो रूपों मे भयभीत देवी उपस्थित है। अन्य घटनाओं में अन्तर जरूर है परन्तु इसका भीतरी तत्व ज्यो का त्यो चला आ रहा है। जो भी अन्तर है, उसका कारण उज्जैन और राजस्थान के वातावरण की भिन्नता है।

तीन सौ पाँच कथाओं की उक्त सूची (मरुभारती १४। ३) मे भी ७३ वी कथा का नाम इस प्रकार दिया गया है—'साहसोपरि चौर देवी की जीभ एँठी'।

६. चारण जालहणसी

श्री अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर के एक हस्त लिखित गुटके मे 'करण लाखावत देसल राठोड चारण जालूणसी री बात' प्राप्त है, जो अपने ढग की एक निराली ही वस्तु है। खेद है कि यह बात गुटके में पूरी लिखी हुई नही है और अद्यावधि इसकी दूसरी पूर्ण प्रति भी कही प्राप्त नही हो सकी है। प्राप्त बात को विवेचन सहित राजस्थान-भारती (वर्ष

१०, अंक ४) में प्रकाशित करवाया जा चुका है। मुनि हेमविजय गणि के संस्कृत ग्रंथ 'कथारत्नाकर' (सम्वत् १६५७) में जान्हरानी चारण विषयक एक सरस कथा दी गई है जो उपर्युक्त राजस्थानी बात से भिन्न कथानक रखने पर भी किसी अंग में मिलती है। बात और कथा में जान्हरानी की प्रवृत्ति एवं स्वभाव लगभग समान ही है। कथा का सार इस प्रकार है—

ताहा वेहा पड़ पूछणी, जहाँ रै चढणै रथ।
मवळी तीडा मिळि गई, सो सम्बल सो सथ।

यही दोहा अपने आधे रूप में मुहता नैणसी ने भी अपनी ख्यात में 'राव तीडा की बात' में दिया है, जहाँ मुवळी सोनगरी रानी राव तीडा से मिल जाती है—"मुवळी तीडे मिळि गई सो सम्बल सो सत्य।" दोहे का आधा भाग नैणसी ने अपनी ख्यात (भाग ३, पृष्ठ २२, में एक मुहावरे के रूप में प्रयुक्त किया है—"ताईहा वेहा पड़ पूछणा जाह पांखला रथा लड़ाई हुई।" इस विषय में अन्वेषणा (वर्ष १, अंक २) में चर्चा की जा चुकी है।

यही दोहा 'कांवळो जोईयो नै तीडी खरळ री बात' वरदा (वर्ष ७, अंक ३) के अन्त में भी देखा जाता है, जहाँ इसका रूप कुछ परिवर्तित है—

पह वेहा परि पूछणा, जांह पंखाळा रथ।
कवळो तीडी ले गयो, ऊट अ समल सथ।

इस 'बात' का कथानक नैणसी के वृत्तान्त से भिन्न प्रकार का है। निश्चय ही 'बात' के द्वारा नैणसी का वृत्तान्त प्रभावित प्रतीत होता है। 'बात' भी किसी लोक कथा को सवार-सजा कर प्रस्तुत की गई है और वह लोक कथा अनुसंधेय है। मुनि हेमविजय गणि ने अपने संस्कृत ग्रन्थ कथारत्नाकर में लौकिक कथाओं को एक विशेष ढंग से संकलित किया है और वह इस 'बात' का पुराना तथा सरल रूप सहज ही देखा जा सकता है। इस प्रकार एक 'कथा' और एक 'बात' की तुलना का सुन्दर अवसर सामने आता है, बड़ा रोचक और उपयोगी विषय है। कथा का मुख्य श्लोक इस प्रकार है—

यस्य मित्र धियां धाम' स किं कार्यं न साधयेत्।
प्रियामुष्ट्रदयीपेता, सुहृद् ध्यानयद्वणिक ॥

कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

श्री विलास नगर में रहने वाले वणिक् धनदत्त की पत्नी ध... अत्यन्त रूपवती तथा विनयवती थी। उसे भरमा नामक धाडी (डाकू)

अपना जीवन सारहीन समझा। उसने किसी तरह तलाश करके आखिर अपनी पत्नी का पता लगा लिया। फिर उसने एक सहायक को साथ लिया और उसकी बुद्धि की जाँच की। सर्वप्रथम धनदत्त ने एक सहायक के सामने एक बड़ा और एक छोटा इस प्रकार दो दतौन रखे। सहायक ने उन में से बड़ा दतौन उठाया तो धनदत्त ने उसे लोभी मानकर छोड़ दिया। फिर एक दूसरे व्यक्ति की सहायक के रूप मे परीक्षा की गई। उसके सामने दो बड़े और दो छोटे इस प्रकार सुपारी के चार टुकड़े रखे गए। उस व्यक्ति ने उन में से बड़े टुकड़े अपने लिए उठाए तो उसे भी लोभी समझकर छोड़ दिया गया। अंत में धनदत्त ने एक तीसरे व्यक्ति को सर्वथा योग्य समझकर अपने साथ लिया।

अपने बुद्धिमान साथी को लेकर धनदत्त उस धाड़ी की पल्ली मे कापालिकवेश मे पहुचा और उसने संकेत से अपनी पत्नी धनश्री को आने की सूचना दी। धनश्री उसके साथ चलने को तैयार थी। धनदत्त एक घडी मे एक योजन चलने वाली 'टाक' नामक सांड (ऊंटनी) ली और कृष्ण चतुर्दशी की रात के अंधेरे मे वे तीनो गुप्त रूप से उस पर चढ़कर भाग निकले। पीछे से जब भरमा को उनके भाग निकलने का पता चला तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और उसने एक घडी मे दो योजन पार करने वाला 'सचो' नामक ऊंट लिया और उसपर चढ़ कर दौडा।

धनवती ने पीछा करने वाले धाड़ी को आया समझ कर अपने पति को सारी बात समझाई तो वे तीनो ही सहायक के कहने से ऊंट बिठा कर नीचे उतर गए। सहायक ने उन दोनो को कुछ दूर पर उगी हुई झाडियो मे छिपने के लिए कह दिया और वह स्वय अपने पैर पर चोट मार कर वही घायल के रूप मे कराहने लगा। जल्दी ही भरमा वहाँ आ पहुचा और उसने उन दोनों का पता पूछा। सहायक ने उसे विपरीत दिशा मे जाने के लिए कह दिया। धाड़ी ने अपना सचो ऊंट वही छोड़ा और विपरीत दिशा की झाडियों मे उन्हे पकडने के लिए वह दौड गया। इतने मे ही सहायक ने धनदत्त और धनश्री को बुलाकर 'टाक' पर चढा दिया और स्वयं 'सचो' ऊंट पर सवार हो गया। जब वे दौडे तो भरमा ने उनको दूर से देखा परन्तु 'टाक' और 'सचो' उनके पास थे, अत. उनका पीछा करना व्यर्थ समझ कर वह निराशा-सहित लौट गया।

कथा की वस्तु इतनी सी ही है, जिसे जैन मुनि ने किसी राजस्थानी अथवा गुजराती लोक कथा से लिया है। अन्त मे 'टाक सचो मल्यो' कहावन दी गई है। (तेनायमाभाणकः सर्वत्र प्रथितः 'टाक सचो मल्यो')।

कहना ना होगा कि अन्य जैन कथा लेखकों के समान प्रारम्भ मे पात्रो के नाम आदि पलटने के अतिरिक्त आखिर इस लोककथा को एक उपदेश-कथा ही रखा गया है और इसे 'बात' नही बनाया गया है।

'कावळो जोईयो नै तीडी खरळ री बात' मे इस कथानक को पूरी तरह संवार-सजा कर एक सरस 'बात' के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। बात मे कथा का पूरा वातावरण बदल कर मध्यकालीन राजपूत-जीवन का स्वाभाविक चित्र सामने रखा गया है। जैन कथा का नायक धनदत्त बात मे कावलो जोईयो के रूप में प्रकट है। वहा उसकी पत्नी धनश्री का नाम तीडी हो गया है। बात मे सहायक का काम कावळे का बहनोई करता है। वहां भी सहायक की योग्यता की परीक्षा की गई है परन्तु जाच करने का काम राजपूती-जीवन के अनुसार हथियारों से होता है। भरमा की जगह बात मे अगा निरवाण है जिसका काम ही धाडा मारना है। अन्त मे अगा से पिंड छुडाने का तरीका लगभग वही है। इसी प्रकार दो ऊँट हाथ आने का प्रसग भी बात मे है—"समल नै सघ दोनूँ ऊँठ ल्यायो। कवळो सुख सु तीडी भोगवै छै। सीरोही सुख सु आपरै घरे गयो।"

इस प्रकार कथा और बात का मूल ढाचा समान आधार होने के कारण लगभग एक ही है परन्तु फिर भी इन दोनों मे भारी अन्तर है। बात मे कांवळो, तीडी असो तथा देवडो (सहायक) सभी अपने चरित्र की बड़ी ही सरस और स्वाभाविक झांकी प्रकट करते है, जो सहज ही श्रोता अथवा पाठक के हृदय को आकर्षित कर लेती है। ये पात्र सजीव से प्रतीत होते है। वहा वर्णन को आकर्षक बनाने के लिये विस्तार दिया गया है और अनेक छोटी-मोटी नई घटनाएं भी उद्‌भावित की गई है। यह सब बात लेखक की कला-कुशलता का प्रकाशन है।

बात मे जो आकर्षक रग भरा गया है, कथा मे उसकी साधारण झलक भी नहीं है। इसी चीज को हम इस रूप मे भी कह सकते है कि कथा, एक साधारण रेखा चित्र है तो 'बात' अनेक रगो मे भरापूरा एक कलापूर्ण चित्र है। हो सकता है कि 'बात' की आधारभूत लोककथा मे पात्रों के नाम आदि अपरिवर्तित रहे हो। एक ही लोककथा स्थान एव समय के अनुसार उसी रूप कुछ परिवर्तित अवश्य कर लेती है परन्तु 'बात' मे उसके कुशल कलाकार का दिमाग अथवा हाथ तो स्पष्ट ही है। जिस प्रकार अनेक लोक-

कथाओं को जैन अथवा बौद्ध वातावरण में प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा हुई है, उसी प्रकार अनेक लोककथाओं को राजपूती वातावरण में भी प्रयत्नपूर्वक और बड़ी सुन्दरता के साथ प्रकट किया गया है। इस विषय में 'कांवड़ो जोईयो नै सोढी भाखळ री वात' एक उदाहरण है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि जिस प्रकार राजस्थान की लोकप्रचलित कहानियों का 'कथा' अथवा 'वात' के रूप में राजस्थानी भाषा में संकलन हुआ है, उसी प्रकार न्यूनाधिक मात्रा में उनका संस्कृत के माध्यम से भी संग्रह किया गया है। इससे लोककथाओं की रंजकता एवं उपयोगिता सिद्ध होती है। विद्वानों ने इस विषय के महत्त्व को भली भांति हृदयंगम किया और उनके स्तुत्य श्रम का मधुर फल हमें सुलभ है। इस सम्पूर्ण साहित्य-सामग्री का गम्भीर अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है।

राजस्थान की लोककथा, राजा सुगड़

पुराणवर्णित गंगावतरण की कथा का सारांश इस प्रकार है—सूर्यवंश में सगर नामक परम प्रतापी राजा हुए। उन्होंने चक्रवर्ती पद पाने के लिए अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। देवराज इन्द्र को इससे जलन हुई और उन्होंने यज्ञीय अश्व को चुरा कर बहुत दूर कपिल मुनि की गुफा में चुपके से बांध दिया। राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। वे घोड़े की खोज में निकले सारी पृथ्वी छान डाली परन्तु घोड़ा कहीं नहीं मिला। अन्त में वे कपिल मुनि की गुफा में पहुँचे। वहाँ घोड़ा बन्धा था और मुनिवर तपस्या में लीन थे। सगर पुत्रों ने सोचा, इसी व्यक्ति ने हमारा घोड़ा चुराया है और अब आँखें बन्द करके पाखण्ड रच रहा है। उन्होंने कपिल मुनि पर प्रहार करना प्रारम्भ किया। मुनिवर ने नेत्र खोले और उनमें से ऐसी ज्वाला निकली कि सगर के साठ हजार पुत्र तत्क्षण वहीं जल कर राख की ढेरी हो गए।

राज-पुत्रों को गए काफी समय हो चला था और उनका कोई वृत्तान्त नहीं मिला। अतः राजा सगर को बड़ी चिन्ता हुई। उनके एक पुत्र असमंजस नामक था, जिसको दुराचरण के कारण पहिले ही राजा ने निकाल दिया था। असमंजस के पुत्र का नाम था अंशुमान। राजा सगर ने अपने पौत्र अंशुमान को अपने पुत्रों की खोज के लिए भेजा। वह पता लगा कर कपिल

मुनि की गुफा मे गया। कपिल मुनि उससे मिल कर अत्यंत प्रसन्न हुए और घोड़ा उसे सौंप कर बोले, बेटा जो होना था सो हो चुका। अब तुम यह घोड़ा ले जाओ और राजा सगर का यज्ञ सम्पूर्ण करवाओ। परन्तु अंशुमान अपने साठ हजार चाचाओं की अकाल मृत्यु से बड़ा व्यथित हुआ। मुनिवर ने उसे बतलाया कि यदि गंगाजी धरती पर आकर राख की इन ढेरियों को छू लें तो तुम्हारे चाचाओं का मोक्ष हो सकता है। गंगाजी इस समय ब्रह्मा के कमण्डलु में है। तुम उनको प्रसन्न करो। इतना सुन कर अंशुमान वहा से लौट आया। उसने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप किया, परन्तु उसके जीवन काल मे यह काम पूरा नही पड़ सका।

अंशुमान के पुत्र हुए दिलीप। उन्होने भी ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए उग्र तप किया, परन्तु वे राजी न हुए। दिलीप के पुत्र हुए भगीरथ। वे अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए तपस्या मे लीन हो गए। देवताओं ने भगीरथ का तपोभंग करने के लिए उपाय भी किए, परन्तु उनकी एक चाल न चल सकी और अंत मे ब्रह्मा प्रसन्न हुए। भगीरथ ने उनसे गंगाजी को धरती पर भेजने का वरदान मांगा। ब्रह्मा इसके लिए तैयार हुए, परन्तु गंगाजी को धरती पर सँभाले कौन? इस कार्य के लिए भगीरथ ने शिव की तपस्या की और वे तैयार हुए।

शिव हिमगिरि के उच्च शिखर पर खड़े थे। उन्होंने अपनी जटाओं को तैयार किया। गंगाजी को गर्व था कि उन्हे धरती पर कोई सभाल नहीं सकेगा। वे आकाश से उतरी पर शिव की जटाओं मे ही समा गई। भगीरथ ने फिर शिव से विनती की, तब गंगाजी को जटाओं से मुक्ति मिली। अब भगीरथ आगे आगे चलते थे और गंगाजी उसी मार्ग से पीछे पीछे आती थी। मार्ग में जह्नु मुनि का आश्रम जल तरंगों मे बह गया। इस पर क्रोधित होकर उन्होंने गंगाजी को चुल्लू भर कर पी डाला। भगीरथ ने जह्नु मुनि से विनय की। तब उन्होंने गंगाजी को अपने कान मे से निकाला। इस प्रकार गंगाजी का एक नाम जाह्नवी हुआ। चलते चलते अन्त मे भगीरथ अपने पूर्वजों की भस्म के पास गंगाजी को ले गये। उन सब की मुक्ति हुई और गंगाजी ने सागर मे प्रवेश किया।

इस प्रकार कई पीढ़ियो तक सतत उद्योग करके तपस्वी सूर्यवंशी नरेश गंगाजी को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने मे सफल हुए और भगीरथ के नाम पर गंगाजी का नाम भागीरथी लोक प्रसिद्ध हुआ। परन्तु जैन-साहित्य

(उत्तराध्ययन टीका) मे गंगावतरण की कथा दूसरे ही रूप मे है। उसका साराश निम्न प्रकार से है—

इक्ष्वाकु वंशीय राजा जित शत्रु के पुत्र थे चक्रवर्ती सगर। उनके साठ हजार पुत्र थे, जिनमे जह्नु कुमार सब से बड़े थे। एक बार जह्नु कुमार अपने समस्त भाइयो सहित पृथ्वी-परिभ्रमण के लिए निकले। घूमते घूमते वे अष्टापद पर्वत (कैलाश) पर पहुँचे। वहा उन्होने जिन चैत्यो के दर्शन किए। उसी प्रकार के जिन चैत्य बनवाने के लिए उन्होने अष्टापद पर्वत को सुरक्षित बनाना ठीक समझा और दण्ड रत्न लेकर सगर के पुत्रो ने उस पर्वत को चारो ओर से खोदना प्रारम्भ किया। खोदते खोदते दण्डरत्न नागलोक के भवनों से जा टकराया। इस पर क्रोधित नागराज ज्वलन-प्रभ जह्नुकुमार के पास आए। परन्तु राजकुमार ने नम्रतापूर्वक क्षमा मागी और अपना अभिप्राय उनके सम्मुख प्रकट किया कि वे तो पर्वत के चारो ओर एक खाई खोद कर उसे सुरक्षित बनाना चाहते हैं। नागराज शान्त होकर चले गए।

खाई तैयार हो गई परन्तु उसमे पानी भरना चाहिए। अत दण्डरत्न से गगाजी को फोड कर खाई मे पानी भर दिया गया। यह पानी नागलोक मे पहुँच गया। इस बार नागराज ज्वलनप्रभ को भयकर क्रोध आया और उन्होने जहरीली आँखो वाले सर्प सगरपुत्रो के पास भेजे, जिनकी आँखों के तेज से वे सब क्षणभर मे जल कर भस्म हो गए। उनके विनाश का समाचार राजधानी मे पहुँचा तो राजा ने बडा विलाप किया।

एक बार अष्टापद पर्वत के आसपास रहने वाले लोगो ने आकर चक्रवर्ती सगर से प्रार्थना की कि उनके पुत्रो ने अष्टापद के चारो तरफ खाई खोदकर उसमे गगाजी का जल भर दिया है। वह जल बह कर उनके गांवो मे आ रहा है और इससे उन्हे बडा कष्ट रहता है। अत कोई उपाय होना चाहिए। सगर ने अपने पौत्र भागीरथ को बुलवाया और आज्ञा दी कि गगाजी को समुद्र मे ले जाकर मिला दिया जावे और इस प्रकार लोगो का उपद्रव शान्त हो जाएगा। इस उद्देश्य को लेकर भागीरथ चल पडा।

सबसे पहिले भगीरथ ने पूजा अर्चा के द्वारा नागराज को प्रसन्न किया और फिर उनकी आज्ञा से गगाजी को समुद्र मे ले जाकर मिला दिया। जह्नुकुमार के नाम पर गगाजी का एक नाम जाह्नवी पडा और भगीरथ के नाम से उसका नाम भागीरथी हुआ।

ऊपर गगावतरण विषयक जो दो कथानक दिए गए हैं, उनमें समानता एव विभेद दोनो हैं और वे विचारणीय हैं। परन्तु राजस्थानी जन साधारण मे गगावतरण के सम्बन्ध मे दूसरी ही मान्यता है। आगे इस दिशा में ज्ञातव्य प्रस्तुत किया जाता है।

राजस्थान मे जमीन खोदते समय यदि कही संयोग से कोई पुराना कुआँ प्राप्त होता है तो उसे "सुगड़ कूवो" कहा जाता है। इसका अर्थ है, महाराजा सगर का कुआँ। यह नाम उस कुएँ की प्राचीनता का द्योतक है। राजस्थान की ग्रामीण बोली मे सगर को सुगड़ कहा जाता है। यहाँ ऐसी मान्यता है कि महाराज सगर के समय मे अगणित कुंए खोदे गये थे जिन पर कालान्तर मे धूलि फिर गई और वे धरती मे लुप्त हो गए। परन्तु यदा-कदा उनमे से कोई कुआँ खुदाई के समय प्रकट हो जाता है। यह सब लोक विश्वास का विषय है। यहाँ महाराजा सगर के सम्बन्ध मे जो लोक कथा प्रचलित है, उसका साराश दिया जाता है—

किसी वन मे एक गीदड़ और उसकी स्त्री रहते थे। उनके कोई सतान न थी। एक दिन एक शिशु बालिका उन्हें वन मे अकेली पड़ी मिली। उसे वे आनन्द के साथ अपनी घूरी में ले आए और बडे चाव से उसका पालन करने लगे। बालिका समय पाकर बडी हुई। वह गीदड़ और उसकी स्त्री को ही अपने पिता और माता मानती थी। एक दिन राजकुमार शिकार के लिए वन में आया और उसने उस लडकी को देखा। राजकुमार उसके रूप पर मुग्ध हो गया और उसके साथ विवाह करने का निश्चय किया। वह लडकी के पास गया तो वह दौड कर अपनी घूरी मे चली गई। राजकुमार ने पता लगाया तो सारी स्थिति उसके सामने स्पष्ट हुई। वह गीदड मानवीय भाषा बोलता था। वह राजकुमार के साथ अपनी पुत्री का विवह करने के लिए तैयार हो गया। शुभ मुहूर्त्त मे यथाविधि विवाह हुआ और गीदड़ ने कन्यादान मे वह वन अपने जामाता को भेंट किया। विधि सम्पन्न हुई। बेटी अपने घर गई।

गीदड ने अपनी स्त्री को समझाया कि वह वन कन्यादान मे दिया जा चुका है। अतः उस वन का पानी तक पीना उनके लिए अधर्म है। परन्तु वन बहा विस्तीर्ण था। फलतः वे दोनो वहाँ से दौडे कि प्यास लगने से पूर्व वन से पार हो जाएँ। दौडते दौडते उनके प्राण कठ मे आ गए परन्तु वन की सीमा पार करदी गई। वहाँ एक कच्चा जोहड था जिसके मध्य मे थोड़ा थोडा सा पानी बचा था। उस पानी मे तो उन दोनों मे से केवल एक के ही कट गीले हो सकते थे। गीदड ने जिद किया कि उसकी स्त्री पानी पी कर अपने

प्राणों की रक्षा करे। इसी प्रकार उसकी स्त्री ने अपने पति के लिए हठ किया। विवाद होता रहा और वह लोटा भर पानी भी सूख गया और प्यास के मारे वहीं दोनों के प्राण निकल गए।

थोड़ी देर बाद दो स्त्रियाँ उस मार्ग से निकलीं। जोहड़ में दो गीदड़ मृतक अवस्था में पड़े थे। उन्हें देखकर एक ने प्रश्न किया—

सरवो न दीसै पालड़ी, सरवो न दीसै बाग।

मैं तनै पूछूं हे सखी, किस विध तज्या पिराण॥

इस पर दूसरी स्त्री ने उत्तर दिया—

एक लोटा नेह भरया, लाग्या प्रीत का बाण।

तूं पी तू पी ही करता हो, दोनों तज्या पिराण॥

अगले जन्म में इस पुण्य के प्रभाव से वह गीदड़ महाराजा सगर हुआ और उसकी स्त्री महारानी बनी।

राजा रानी दोनों को पूर्व जन्म का वृत्तान्त स्मरण आया। उन्होंने विचार किया, गीदड़ योनि में एक पुत्री का विवाह करके हमने इतना ऊँचा पद पाया है तो इस जन्म में भगवान की भक्ति करके एक सौ एक पुत्री प्राप्त करें और उनका विवाह करके इससे भी कई गुना बड़ा पद अगले जन्म में पावें। इस निश्चय के अनुसार वे तपस्या में लीन हो गए। उनके कठोर तप को देख कर देवराज इन्द्र घबराया। वे भगवान विष्णु के सामने उपस्थित हुए और अपनी मनोदशा प्रकट की। भगवान विष्णु ने कहा, तुम सरस्वती की शरण में जाओ। वहीं तुम्हारा काम बन सकता है। इन्द्र ने सरस्वती को प्रसन्न किया। राजा रानी का तप पूरा हुआ। भगवान प्रकट हुए। वर मांगने के लिए महाराजा से कहा गया, तो सरस्वती के प्रभाव से उनके मुख से एक सौ एक पुत्री के स्थान पर पुत्र शब्द निकला। भगवान ने "तथास्तु" कहा और फिर रानी से वर मांगने के लिए कहा गया तो उसने भी सरस्वती के प्रभाव से यही उत्तर दिया कि जो कुछ मेरे पतिदेव ने मांगा है वही पूर्ण हो। भगवान ने "तथास्तु" फिर कहा और वे अपने धाम चले गए।

अब राजा और रानी को अपनी भूल विदित हुई। परन्तु जो होना था सो हो चुका। समय पाकर उनके एक सौ एक पुत्र पैदा हुए। वे बड़े हुए। जब पुत्रों को पीछे का वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने प्रण किया कि हम अपने पिता को नित नया कुँआ खोद कर जल पिलाएँगे।

इस प्रण के अनुसार महाराजा सगर के एक सौ एक पुत्र प्रत्येक रात्रि को एक नया कुँआ खोदते और उसके जल से अपने माता पिता को

दंतून करवाते। फल यह हुआ कि धरती में कुएं ही कुएं हो गए। इससे धरती माता को बड़ी पीड़ा होने लगी। उसकी छाती में इतने छेद! वह भगवान की शरण गई। भगवान ने कहा, जब सगरपुत्र सभी कुएं में घुसे हों तू अपना पाट मिलाले। सब भीतर ही रह जाएंगे। धरती ने ऐसा ही किया और एक रात महाराजा सगर के सभी पुत्र धरती में विलीन हो गए। कुआं मिल गया।

महाराजा सगर ने यह वृत्तान्त सुन कर बड़ा शोक किया। उनके सभी पुत्र एक ही रात मे मृत्यु को प्राप्त हो गए। उन्होंने ऐसा कौनसा पाप किया था। पंडितों को बुलवाया गया और इस दुर्घटना का कारण पूछा गया। पंडितों ने ध्यान करके महाराजा के इस संकट का कारण इस प्रकार प्रकट किया—

किसी पूर्वभव मे राजा सगर एक अन्य राजा के ही रूप मे थे। एक साल वर्षा नहीं हुई। वन के सरोवर सूख गए। वहां हंस रहते थे। वे अपने बच्चों को लेकर राजा के पास आए और बोले, "हे राजा, हम सब यहां से मान सरोवर जा रहे हैं। परन्तु हमारे बच्चे इतनी लम्बी उड़ान के लिए असमर्थ हैं। अतः तुम इनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लो। हम अगले वर्ष यहां आकर इनको सम्भाल लेंगे।" राजा ने स्वीकार किया और हंस अपने समस्त बच्चे राजा के पास छोड़ कर उड़ गए। राजा ने बच्चों को अपने बाग के सरोवर मे छुड़वा दिया।

एक दिन राजा भोजन करने के लिए बैठा। उसे उस दिन साग (सब्जी) स्वादिष्ट मालूम नहीं हुई। राजा अपने रसोइए पर अप्रसन्न हुआ। दूसरे दिन रसोइए ने चुपके से सरोवर मे से एक हंस का बच्चा पकड़ा और उसका साग बना कर राजा को परोसा। आज का साग बड़ा स्वादिष्ट था। राजा परम प्रसन्न हुआ और रसोइए को इनाम मिली। अब रसोइया प्रतिदिन चुपचाप ऐसा ही करने लगा और राजा आनन्द मे भोजन करके उसे नित नई इनाम देने लगा।

समय बीता। वर्षा हुई। हंस लौट कर राजा के पास आए और अपने बच्चे मांगे। राजा ने उनकी धरोहर वापिस सम्भलाई तो एक सौ एक बच्चे कम पड़े। हंसों को क्रोध आया। राजा ने पूछताछ की। सारी स्थिति प्रकट हुई। अब क्या हो सकता था? हंसों ने शाप दिया, "तूने हमारा एक बच्चा प्रति दिन खा कर कुल एक सौ एक बच्चे खाए है, अतः तेरे भी

इतने ही बच्चे एक दिन मे मरेंगे।" इतना कह कर हंस अपने अवशिष्ट बच्चों को लेकर उड़ गए।

महाराजा सगर ने अपने सन्ताप को पूर्वभव का कर्मफल समझ कर धीरज धारण किया। उनके एक बेटे की बहू गर्भवती थी। उसके पुत्र पैदा हुआ। महाराजा ने अपने पोते का नाम भगीरथ रखा और उसका पालन करने लगे। भगीरथ बाण विद्या सीखता था। एक दिन एक बाण आकर कुए पर किसी पनिहारी के घड़े के लगा। पनिहारी ने ताना मारा, "यहा हमारे घड़े फोड़ता है। पहिले अपने पुरखो की गति तो करावे। वे तो बेचारे धरती के नीचे दबे पड़े है।" भगीरथ से अब तक सारी बातें छिपाई गई थी परन्तु इस ताने ने सारा भेद खोल दिया। उसने अपने पूर्वजो के मोक्ष के लिए पंडितो से उपाय पूछा। उन्होंने बतलाया कि यदि गगाजी धरती पर आकर उनके ऊपर से फिरे तो उनकी मोक्ष हो सकती है। भगीरथ इसके लिए कृत-सकल्प हुआ कि वह गगाजी को धरती पर लाकर ही मानेगा।

भगीरथ ने शिवजी की तपस्या की। वे उस पर प्रसन्न हुए। भगीरथ ने अपना वृत्तान्त कह सुनाया। शिवजी ने एक पात्र मे बद करके गगाजी उसे सौंपी। साथ ही शर्त यह थी कि मार्ग मे कही भी गगाजी को पुकारा न जाए। भगीरथ ने शर्त स्वीकार की और वह पात्र को अपने सिर पर रख कर चल पड़ा। चलते चलते मार्ग मे एक जोहड आया। वहा ग्वाले अपनी गाए चरा रहे थे। उनमे से एक ग्वाले ने जोर से गगा का नाम लेकर आवाज दी। उसी समय भगीरथ के सिर पर रखा हुआ वह पात्र खुला और गगाजी धारा के रूप मे बहने लगी। भगीरथ ने ग्वालो को उपालम्भ दिया कि उन्होने गगा का नाम लेकर क्यों पुकारा। इस पर ग्वालो ने प्रकट किया कि उनकी एक गाय का नाम भी गगा ही है और उसका नाम लेकर ही आवाज दी गई थी। इस पर भगीरथ ने गगाजी से विनय की। गगाजी उस पर प्रसन्न हुई। भगीरथ आगे आगे चला, गगाजी उसके पीछे लहराती हुई आती रही। अन्त मे भगीरथ ने उस स्थान पर गगाजी को पहुँचाया जहा उसके पूर्वज धरती के नीचे दबे पड़े थे। गगाजल के स्पर्श से उनकी मोक्ष हुई। भगीरथ का प्रण पूरा हुआ और गगाजी का नाम भागीरथी पड़ा। महाराजा सगर को गगावतरण से परम प्रसन्नता हुई और वे अपने पोते भगीरथ को राजगद्दी देकर वन मे सपत्नीक चले गए।

ऊपर राजस्थानी लोककथा का साराश दिया गया है। इस कथा मे लोग बडी रुचि लेते है क्योंकि यह रोचक होने के साथ ही पुण्यमयी भी है।

परन्तु स्पष्ट है कि गंगावतरण विषयक जो दो कथानक पहिले दिये गए हैं, उनमे और इस कथा मे बड़ा अन्तर है। यह अन्तर स्वाभाविक है। राजस्थानी लोक कथा मे कई कहानियाँ मिली हुई है। गीदड़ का कन्यादान, सगर की तपस्या, सगर पुत्रो का कूप पतन, धरती माता की पीडा, हंसो के बच्चे, भगीरथ की तपस्या एवं ग्वालों को गंगा गाय इस प्रकार इस एक कथा में कई कथाएँ मिली हुई हैं। परन्तु वे सब एक दूसरी मे जुडी हुई हैं। इसलिए उनमे बडी रोचकता है।

यह राजस्थानी लोककथा जनमानस की उद्‌भावना का उत्कृष्ट नमूना है। सगर पुत्रो का कुए मे दबना प्राचीन कथानक मे एक भिन्न स्थापना है। राजस्थान कुओ का प्रदेश है। फलस्वरूप यहा की कथा में सगर के पुत्रो का कुए मे विलीन हो जाना स्थानीय रंग है। परन्तु इस स्थापना को राजस्थान मे पूरी मान्यता प्राप्त है उदाहरण के लिए निम्न लोकप्रिय भजन देखिए। इसमे इस घटना को जोरदार शब्दों मे प्रस्तुत किया गया है—

घेनदास, मत करो अँदेसा,
इण मारग संसार गया रे ॥
सैंग पुतर राजा सुगड़ कै होता,
नुवें नीर दांतण करता।
फिर मनोरी म्हारै अलख धणी की,
धरण धिंसी जद माय रह्या रे ॥
घेनदास, मत करो अँदेसा,
इण मारग संसार गया रे ॥

संत घेनदास का पुत्र चल बसा था। उसे सगर के पुत्रों का उदाहरण देकर सांत्वना दी गई है इसी प्रकार "गंगा गाय" वाला कथानक भी राजस्थान में भजन के रूप में गाया जाता है, जिसका मुख्यांश निम्न प्रकार है—

ना बावाजी मनै धन धन चाहिए,
ना मनै चाहिए जमीं ए सवाई जी,
गंगा माता हर चरणां मे गं माई।
मेरे भी बछड़ा गमी ए न पाई,
मनै चाहिए भी गंगा माई जी,
गंगा माता हर चरणां में मैं माई।

म्या रे बाला तेरो कमडलियो,
तनै घानू गगा माई जी,
गगा माता हर चरणा मे सै भ्राई ।
ले कमडलियो गगा घालो,
तो गहरी सी म्याम लगाई जी,
गगा माता शिव की जटा मे सै भ्राई ।
रे ब ला तेरो कमडलियो,
तू गैनं मे मत बतलाई जी,
गगा माता शिव की जटा मे सै भ्राई ।
गगा ले भागीरथ चाल्यो,
तो उतरयो है परबत पहाडा जी,
गगा माता शिव की जटा मे सै भ्राई ।
भ्रागै गुवाल्या गऊ ए चरावै,
तो गगा कह हेलो मारयो जी,
गगा माता शिव की जटा मे सै भ्राई ।
जद भागीरथ कोप भयो है,
मेरी गगा नै क्यू बतलाई जी,
गंगा माता शिव की जटा मे सै भ्राई ।
म्हे रे बाला तेरी गगा नै ना बतलाई,
म्हारी गऊ को नाम गगा माई जी,
गंगा माता शिव की जटा मे सै भ्राई ।
खाम खोल कर देखण लाग्यो,
तो हो गई सँसर धारा जी,
गगा माता शिव की जटा मे सै भ्राई ।

यहाँ इस गीत का मुख्यांश ही दिया गया है । पूरा गीत बड़ा है । गीत में गगा गाय वाला प्रसग बड़ा मरम है । साधारण जनता के हृदय की मान्यता कुछ विशेषता पर भ्राधारित है जो लोककथा के साथ साथ लोक गीत मे भी भ्रा गई है ।

राजस्थान की इस पुण्यमयी लोककथा का कथानक-रूढियों की दृष्टि से विश्लेषण किया जाना भ्रावश्यक है । कथानक-रूढि कथा को गति प्रदान

करती है और वह विविध लोककथाओं में व्याप्त रहती है। इसे अभिप्राय का नाम दिया जाता है। लोककथाओं के अध्ययन मे अभिप्रायो का बड़ा महत्व है। अभिप्रायो के स्पष्टीकरण से विविध तत्व प्रकट होते हैं।

प्रस्तुत लोक कथा के प्रारंभ में गीदड और उसकी स्त्री की कहानी आती है। यह कहानी कर्मफल की महिमा प्रकट करती है। लोक कथाओं मे पूर्वभव का आधार खडा करना एक साधारण बात है। धार्मिक कथाओं मे तो यह चीज बहुत ही देखी जाती है। जातक कथा मे बोधिसत्व ने विविध योनियो मे जन्म ग्रहण किया है। उनमे मनुष्य के साथ साथ पशु पक्षी भी सत्य, त्याग, बलिदान, चतुराई आदि २ गुणो के आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इसी रूप मे यह गीदड वाली कहानी है। इस कहानी मे दान और दाम्पत्य-प्रेम की महिमा है। लोककथाओ की दुनिया में मनुष्य ने पशु-पक्षियो को भी अपने समाज मे सम्मिलित किया है। उनमे मानवीय भावना एव व्यवहार तो स्थापित किये ही है परन्तु साथ ही उनसे गार्हस्थिक सम्बन्ध भी जोडा है। इस कहानी का गीदड़ मानव कन्या का अपनी पुत्री के रूप मे पालन करता है परन्तु साथ ही वह शास्त्रीय विधि से उसका मनुष्य के साथ विवाह भी करता है। कई लोक कथाओ मे मनुष्य की कन्या पशु अथवा पक्षी को विवाही गई हैं। इन सब से मनुष्य के हृदय की एक विशेषता प्रकट होती है कि उसने पशुपक्षियो से साहचर्य स्थापित किया है तो साथ ही उनसे आत्मीयता भी मानी है। गीदड का दान इस लोक कथा को गति प्रदान करता है और इससे सगर की चारित्रिक विशेषता का एक दृढ आधार स्थापित होता है। मूल लोक कथा मे इस कहानी के जुडने का यही प्रयोजन है।

इसके बाद महाराजा सगर प्रकट होते हैं। उनको और उनकी रानी को पूर्वभव का स्मरण होता है, तो वे कन्यादान के पुण्य को विस्तार देने के लिए तत्पर होते है। पूर्वजन्म की घटनाओ के स्मरण होने का यही तो एक प्रयोजन होता है कि अघो का क्षय हो तथा पुण्य की वृद्धि हो। भारतीय उपाख्यानों मे फल प्राप्ति के लिए तपस्या की जाती है। महाराजा सगर और उनकी रानी भी तप करते हैं तप की कठोरता को देखकर देवराज इन्द्र का घबराना और अपने पद की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए स्वार्थ मे संलग्न होना भी प्रसिद्ध है। ऐसा ही इस लोककथा में हुआ है। सरस्वती भी देवराज की ही सहायता करती है [illegible] पर यार देवी का प्रयोग किया जाता है।

सगर [illegible] स्थान पर पुत्र प्राप्त होते हैं। उनकी तपस्या

[illegible] घर [illegible] की एक हो गई है। इस तपस्या का

[illegible] होता है।

महाराजा सगर के पुत्र बड़े होते हैं और पीछे का वृत्तान्त मालूम होने पर वे अपने पिता का नित नया कुआं खोद कर पानी पिलाने का सकल्प करते हैं। पुत्रों का यही कर्तव्य है कि वे अपने माता पिता की मनोकामना उत्कृष्ट रूप में पूरी करें। राजस्थान में कुआ खुदवाना बड़ा भारी पुण्य है। फलस्वरूप लोककथा में नित नया कुआ तैयार होता है, इस कृत्यनन ने पौराणिक उपाख्यान में वर्णित महाराजा सगर के यज्ञ का स्थान लिया है। राजस्थानी लोककथा में यज्ञ नहीं है तो तत्सम्बन्धी अन्य घटनाएं भी नहीं हैं। यहां न यज्ञीय अश्व है और न कपिल मुनि है। इनका प्रयोजन दूसरे रूप में सिद्ध किया गया है। धरती माता को अपनी छाती में इतने छेद सह्य नहीं हैं और वह सगर पुत्रों को अपने उदर में विलीन कर लेती है। उनको समाप्त करने का यह एक सरल साधन था और इस प्रकार उनकी अकाल मृत्यु हुई जो बहुत ही बुरी मानी जाती है। राजस्थानी लोककथा में देवराज इन्द्र पहले प्रकट हो चुके हैं, अतः इस स्थान पर उनका काम पृथ्वी के द्वारा करवा कर एक नई स्थापना की गई है। राजस्थान में कुआ खोदने वाले कई बार उसमें ही विलीन हो जाते हैं।

महाराजा सगर बड़े पुण्यात्मा थे। उनको इतना भयंकर पुत्र शोक क्यों भोगना पड़ा? इसका उत्तर हंसों वाली कहानी है। पहिले गीदड़ वाली कहानी ने पुण्य का फल प्रकट किया है तो इस कहानी ने पाप का विपाक दिखाया है। जैन कथाओं में ऐसा प्रायः देखा जाता है कि सुख अथवा दुःख के कारण स्वरूप पूर्वभव की घटना प्रकट होकर स्थिति को साफ कर देती है। महाराजा सगर को सान्त्वना देने का यह एक बहुत ही समीचीन साधन सामने आया है। हंसों वाली कहानी बड़ी करुणा पूर्ण है उनके बच्चों के विनाश की लीला हृदय में विकट वेदना उत्पन्न कर देती है। वे बच्चे थे और सकटापन्न हंसों के थे। साथ ही वे धरोहर के रूप में थे। राजा ने उनकी रक्षा पर उचित ध्यान नहीं दिया और पातक का भार राजा पर पड़ा। खैर, महाराजा सगर ने धीरज धारण किया। अब तक वे इस लोककथा में पुण्य की प्रकाशमान मूर्ति थे परन्तु आगे वह चीज नहीं रहती और कथा की मूल वेदना उनसे हट कर दूसरी ओर चली जाती है। अब [illegible] को धरती पर लाना है।

लोककथाओं में यह प्रायः देखा जाता है कि कोई [illegible] [illegible] गुणों की [illegible] को [illegible] करता है और [illegible] के रूप में उन [illegible] रहस्य का [illegible] है। यही [illegible] [illegible] के साथ होता है। अब उन

अपने पूर्वजो के मोक्ष के लिए गगाजी को धरती पर लाना है। वह तप करता है और एक पात्र मे बन्द करके गगाजी उसे दी जाती है। राजस्थान मे जो व्यक्ति गगास्नान करके लौटते है, वे गगाजल को पात्र मे बन्द करके और उसे सिर पर रख कर लाते हैं। उनके घर वाले सम्मान के साथ उनको लिवाने के लिए आगे जाते हैं और फिर वे सब भजन गाते हुए आते हैं। यही चीज राजस्थानी लोककथा मे प्रकट हुई है। मार्ग मे गगाजी का नाम लेकर न पुकारने की शर्त भी लोककथाओ मे विविध रूपों मे देखी जाती है। परन्तु यह शर्त पूरी न हो सकी और यह उचित ही हुआ। इस लोककथा मे ग्वालो का प्रसग जनमानस की बड़ी ही सरल एव अर्थ पूरित उद्‌भावना है, गगा माता के धरती पर आने से पूर्व भी भारतीय प्रजा के लिए गौमाता अत्युच्च गौरवशालिनी एव महिमामयी थी। गौमाता और गगामाता में भारतीय जनता कोई अन्तर नही मानती। लोककथा मे ग्वालो की गाय का नाम भी गगा था। उन्होंने अपनी गगामाता को पुकारा और दूसरी गगामाता सहस्र जलधारा के रूप मे वही प्रकट हो गई। गगामाता के इस प्रकार प्रवाहित होने के पीछे लोकहित की अतीव उच्च भावना है। यदि भगीरथ अपने पूर्वजो के विलीन होने के स्थान पर जाकर ही उस पात्र को खोलते तो वह एकमात्र व्यक्तिगत हित होता और जनसाधारण को गगाजी मे उतना लाभ न मिल पाता। भारतीय लोक हृदय मे स्वाभाविक रूप से सर्वजन हित की भावना हिलोरे ले रही है और यही इस प्रसग मे स्पष्ट प्रकट हुई है। राजस्थानी लोककथा का यह प्रसग महिमामय है।

रामकथा के समान गगावतरण की कथा भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार रामकथा के विविध रूपों के सम्बन्ध मे शोध कार्य हुआ है, उसी प्रकार गंगाजी के धरती पर आने की कथा के विषय मे होना आवश्यक है। इस पुण्य कार्य के लिए किसी साहित्य-तपस्वी को दृढ़-संकल्प होकर भगीरथ के समान सर्वजनहित करना चाहिये।

डहरू वानर की बात का आदि स्रोत

राजस्थान में एक कहावत 'वडा वडी रा डहरू वाजे' प्रचलित है। इस कहावत के पीछे एक रोचक कहानी है, जो हस्तलिखित बात के रूप मे भी प्राप्त है।[1] इस बात का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

कुन्तल देवड़ा बाणविद्या मे बड़ा प्रवीण था। उसका विवाह छोटी अवस्था मे ही हो चुका था। जब वह बड़ा हुआ तो अपनी ससुराल गया। वहाँ उसने अपनी पत्नी से कहा कि तुम कुछ दूरी पर खडी रहो और मैं तुम्हारे कानों से लटकती हुई मोतियो की लड़ी मे से अपना तीर निकालूँगा। कुन्तल ने ऐसा ही किया। बाण मोतियों की लड़ी में से निकल गया परन्तु राजपूतानी को इस क्रिया से बड़ा भय लगा। देवड़ा-सरदार यह कार्य प्रातः साय दिन मे दो बार करता था, जिससे उसकी पत्नी उदास रहने लगी।

जब कुन्तल की सास को अपने दामाद की इस विचित्र क्रिया का पता चला तो उसने कहा, 'आपको अपनी बाणविद्या का बड़ा घमड है परन्तु मैं तो आपको उस समय बड़ा मानूँगी जब कि आप उत्तर दिशा मे अपने खेत मे हल चलाने वाले एक विशेष व्यक्ति की पगड़ी उठा कर मेरे पास ला देंगे।' कुन्तल ने अपनी सास की यह शर्त स्वीकार करली और वह उस विशेष व्यक्ति का पता पूछ कर उत्तर दिशा में चल पड़ा।

---

1. इस बात का

जब कुन्तल निश्चित स्थान पर पहुँचा तो उसने देखा कि वहां एक राक्षस के समान भीमकाय व्यक्ति अपने खेत में हल चला रहा है। इसके साथ ही विशेषता यह थी कि उसने बैलों के स्थान पर सिंह हल में जोत रखे थे। और उसकी 'रास' सांपों की बनी हुई थी। इस विचित्र लीला को देख कर देवड़े का गर्व गलित हो गया। हल चलाने वाले ने उसे अपनी ओर आते देख कर आवाज दी कि वह उसके जूते उठाकर साथ लेता आवे। देवड़ा ने उसके जूतों को उठाने की चेष्टा की परन्तु वह उनको उठा न सका तो हल छोड़ कर वह स्वयं देवड़ा के पास आ गया। देवड़ा ने प्रकट किया कि उसके समान मर्द इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। उसे धन्य है।

कुन्तल देवड़ा की बात उस व्यक्ति के पड़ोसी के कानों में पड़ी तो उसने कहा कि यह कुछ भी शक्ति नहीं रखता। उसकी पत्नी डहरू वानर उठा कर ले गया और यह कुछ भी नहीं कर सका—

सांपां हंदी रास कर, हळ वाहै सींह।
जोयड़ लेगी भोगवै, डहरू धवळे दीह॥

इतना सुन कर कुन्तल ने उस व्यक्ति से कहा कि यदि उसे डहरू दिखला दिया जावे तो वह उसे अपने बाण से मार सकता है। हलवाहा उसके साथ हो लिया और वे दोनों डहरू वानर की ओर चल पड़े।

जब वे डहरू के खेत के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि अपहरण की हुई स्त्री भी वहां उसके साथ ही थी। कुन्तल ने पूरी ताकत लगा कर डहरू पर अपना बाण छोड़ा परन्तु वह उसे मच्छर के समान लगा। इस पर उस स्त्री ने बतलाया कि उस पर बाण छोड़े जा रहे हैं। फिर तो डहरू उन दोनों के पीछे भागा। उसे आते हुए देख कर कुन्तल देवड़ा और हलवाहा भयभीत हो गए और अपने प्राण बचाने के लिए दौड़े। काफी दौड़ने के बाद वे दोनों फोगसी एवाळ (अजापाल) के पास पहुँचे और उसके सामने आप बीती कह सुनाई। फोगसी ने कहा की कि वे उसकी झोली में घुस जावें और कोई चिन्ता न करें।

जब डहरू उस स्थान पर पहुँचा तो फोगसी ने उसे आवाज दी कि वह आते समय उसका 'दीवड़ा' (जलपात्र) भी उठा लावे। परन्तु फोगसी के 'दीवड़े' को डहरू उठा न सका। इस पर फोगसी ने उसे बुरी तरह फटकारा तो वह कांपने लगा। फिर फोगसी ने हलवाहे को डहरू से उसकी पत्नी वापिस दिलवाई और कुन्तल देवड़ा की कबाण तोड़ दी गई। सब का गर्व समाप्त हुआ और वे अपने-अपने स्थान को चले गए।

राजस्थानी कहावत का अभिप्राय है कि संसार में एक से एक बढ़ कर है अतः किसी को अपने बल का अभिमान नहीं करना चाहिए। बड़ा तो इन्द्र कहलाता था। परन्तु वह भी योगी के सामने शक्तिहीन सिद्ध हुआ इस प्रकार एक ही बात में कुम्हार देवड़ा, हलवाहा और कृषक वानर इन तीन व्यक्तियों को एक से एक बढ़ कर दिखला कर अन्त में उनका गर्व गलित किया गया है। अतः यह एक सुन्दर नीति कथा के रूप में प्रकट होती है।

राजस्थानी बात-लेखक इस प्रकार का वातावरण बना देते हैं कि उनकी 'बात' सर्वथा राजस्थानी चीज ही विदित होती है परन्तु कई बातों पर गहराई से विचार करने पर प्रकट होता है कि अपने मूल रूप में वे प्राचीन भारतीय कथाएँ ही है, जिनका लोकमुख पर अवस्थित होने के कारण स्थान एवं काल के अनुसार रूपान्तर हुआ है। इन रूपान्तरित कथानकों को राजस्थानी बात-लेखकों ने अपने ढंग से संवारा-सजाया है और उन्हें राजपूत-जीवन में प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त बात की वस्तु के साथ निम्न राजस्थानी लोककथा का संक्षिप्त रूप भी द्रष्टव्य है—

एक बार भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन घूमने के लिए निकले। बात-चीत में एक समस्या खड़ी हुई कि मनुष्य बड़ा है या काल? अर्जुन काल की अपेक्षा मनुष्य को अधिक बलवान बतलाता था। आगे चलने पर दो रास्ते आए। भगवान ने अर्जुन को वास्तविकता का ज्ञान करवाने के लिए बायें रास्ते से रवाना किया और स्वयं दाहिने मार्ग से चले। आगे जाकर दोनों रास्ते मिल कर एक होने वाले थे।

अर्जुन अपने रास्ते पर आगे बढ़ गया। उसने वहां देखा कि लहू की एक धारा बही चली आ रही है। वह उस धारा के उद्गम की खोज में चला। कुछ दूरी पर उसने देखा कि एक दानव सो रहा है और एक युवती उसके पैर दबाती हुई खून के आंसू गिरा रही है, जो धारा रूप में बह चले थे। अर्जुन ने उस दानव पर तीर छोड़ा परन्तु उसने उसे मच्छर समझा और उस पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। जब अर्जुन लगातार बाण चलाता रहा तो दानव जागा और वह अर्जुन को मारने के लिए दौड़ा।

अर्जुन भयभीत होकर भागा। वह आगे था और दानव उसके पीछे पड़ा था। कुछ दूरी पर अर्जुन को एक पेड़ के नीचे पड़ा हुआ एक 'चौरंगा' (जिसके दोनों हाथ और दोनों पैर कटे हों) दिखलाई दिया। वह चौरंगे के पास पहुचा तो उसने दयावश उसे अभयदान दिया। जब दानव निकट आया तो

घोरगे ने कठोर गर्जना की, जिसे सुन कर वह स्तंभित सा हो गया। दानव ने कहा कि उसका अपराधी बलवान की शरण में जाकर बच गया है और फिर वह अपने रास्ते पर लौट गया।

अर्जुन ने चकित होकर घोरगे से पूछा कि उसकी ऐसी हालत किस प्रकार हुई? घोरगे ने प्रकट किया कि महाभारत के युद्ध के कुछ तीर उधर से निकले और उसने अर्जुन के एक तीर को पकड़ने की भूल की। इस भूल का उसे यह फल मिला कि तीर से उसके दोनों हाथ और दोनों पैर कट कर गिर पड़े। अब अर्जुन को समझ पड़ी कि मनुष्य बलवान नहीं है, असल में वक्त ही बलवान है। एक दोहा भी इसी भाव का प्रचलित है—

काल बडो बलवान है, नर को के बलवान।
काबा लूटी गोपका, वै अरजन वै वाण॥

घोरगे से विदा लेकर अर्जुन आगे चला तो उसे भगवान श्रीकृष्ण मिल गए। इस प्रकार अर्जुन का भ्रम निवारण हुआ।

यह लोककथा काल महिमा का प्रकाशन करती है। इसमें मानव शक्ति के समर्थक अर्जुन का गर्व दूर किया गया है। इसी लोककथा का एक रूपान्तर भी द्रष्टव्य है। उस मे अर्जुन के स्थान पर भीम है—

पृथ्वी के सुदूर उत्तर का अन्तिम छोर कोई मनुष्य नही देख सका था। अत. महाबली भीम भगवान श्रीकृष्ण से हठ करके उत्तराखंड का 'छेह' लेने के लिए चला। कुछ दूर निकलने पर उसने देखा कि एक महाकाय दानव सो रहा है और एक सुन्दरी उसके पैर दबाती हुई आंसू बहा रही है। भीम को उस अबला पर दया आई और उसने पूरा जोर लगा कर अपनी गदा दानव की छाती पर दे मारी। इस प्रहार को दानव ने मच्छर का काटना माना और वह सोता ही रहा। भीम ने फिर उसके सिर पर गदा प्रहार किया तो वह जाग पडा और भीम के पीछे दौडा। भयभीत भीम आगे भागा जा रहा था और दानव उसके पीछे लगा था।

आगे जाकर भीम को अपने खेत मे हल चलाता हुआ एक महाकाय व्यक्ति नजर पडा, जिसके सिर पर दहकते हुए अंगारो की अंगीठी थी और 'रास' के स्थान पर सर्प थे। भीम उसकी शरण में गया। उसने घोर गर्जना करके पीछा करने वाले दानव को डरा दिया और वह वापिस लौट गया। महाकाय व्यक्ति ने भीम से कहा कि वह आते समय उसके जूते उठा कर लेता आवे। भीम ने उसके जूते उठाने की चेष्टा की परन्तु वह उन्हें नही उठा

सका। इतने मे ही उस व्यक्ति की पत्नी खेत मे आई और वह उन जूतो को आसानी से उठा कर अपने पति के पास ले गई। महाबली भीम यह सब चकित होकर देखता रहा और उसे बडी आत्मग्लानि हुई।

कुछ समय बैठने के बाद भीम ने उस आश्चर्यजनक हलवाहे से पूछा कि वह अपने सिर पर दहकते हुए अगारो की अगीठी क्यो रखता है? हलवाहे ने उत्तर दिया कि यहा उत्तर दिशा से 'कावलिया' (पक्षी) आती है। यदि वह अपने सिर पर अगीठी न रखे तो वे उसे झपट कर आकाश मे ले उडें। यह वक्तव्य और भी विकट था। भीम का गर्व मिट गया और वह लौट कर भगवान श्रीकृष्ण के पास आ गया। भगवान ने उससे उत्तराखड का विवरण पूछा तो वह कुछ न बोल सका और नतमुख हो गया।

लोककथा का यह रूपान्तर डहरू वानर की 'बात' से अधिक मिलता है, यद्यपि इसमे उसका पूर्वभाग अर्थात् कुन्तल देवडे की चर्चा नही है। फिर भी यह स्पष्ट है कि कथा और बात के कथानक भीतर से मिलते हुए से है। इनका मूल उद्देश्य मानव का मिथ्या गर्व दूर करके उसे उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित करवाना है। एतदर्थ लोककथा मे अर्जुन और भीम जैसे पात्रो को नायक-पद पर प्रतिष्ठित किया गया है तो राजस्थानी बात मे कुन्तल के साथ अनेक महाबली पात्र हैं। इतना स्पष्ट है कि एक लौकिक कथानक को 'बात' के रूप मे साहित्यिक रूप देने की सुन्दर चेष्टा की गई है और उसे सर्वथा राजस्थानी बना दिया गया है।

अब इस रोचक कथावस्तु का आदि-स्रोत अनुमधेय है। इसके लिए महाभारत का 'पचेन्द्राख्यान' द्रष्टव्य है। उसका सार रूप इस प्रकार है—

एक बार देवताओं ने नैमिषारण्य मे यज्ञ किया और यम भी उस मे दीक्षित होकर बैठ गए। फलस्वरूप मनुष्यो का मरना बद हो गया और वे बहुत बढ गए। इससे इन्द्रादि देव भयभीत होकर ब्रह्मा के पास पहुँचे और निवेदन किया कि मनुष्य भी अब अमर हो गए हैं और उन मे तथा देवो मे कोई अन्तर नही रहा है। ब्रह्मा ने उन्हें समझाया कि यज्ञ की समाप्ति पर यम यह अन्तर मिटा देंगे। फिर इन्द्रादि देव भी यज्ञ स्थान मे आ गए।

वहा उन्होने गगा मे एक सोने का पुष्प देखा। इसे देख कर उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। देवराज इन्द्र इस पुष्प का आदि स्थान देखने के लिए चले। अन्त मे उन्होने एक अत्यन्त रूपवती स्त्री को देखा, जो गगा मे जल भरते हुए रो रही थी और उसके अश्रुओ से स्वर्ण कमल बन रहा था। देवराज ने उस स्त्री का परिचय पूछा तो वह उन्हें अपने साथ ले चली।

उसने हिमालय के शिखर पर सिंहासनस्थ एक युवक दिखाई दिया, जो युवती सहित पासा खेलने में तल्लीन था। इन्द्र ने क्रुद्ध होकर कहा—'भुवन मेरे अधीन है, मैं देवराज हूँ।' इन्द्र के क्रोध को देख कर वह युवक हँस पड़ा और उसने इन्द्र पर दृष्टि डाली तो वह (इन्द्र) निश्चेष्ट हो गया।

खेल समाप्त होने पर युवक ने उस रोती हुई स्त्री को आज्ञा दी, 'इन्द्र को यहाँ ले आओ जिससे कि यह फिर कभी गर्व न करे।' उस स्त्री के छूते ही इन्द्र शिथिल होकर गिर पड़ा। तब उस तेजस्वी युवक ने कहा, 'यह पर्वत हटा कर इस गुफा में जाओ। वहाँ तुम्हारे समान चार इन्द्र तुम्हें और भी मिलेंगे।'

गुफा में जाते ही सचमुच चार अन्य इन्द्रों को देख कर इन्द्र बड़ा दुःखी हुआ कि कहीं मैं भी इनकी तरह न हो जाऊँ। तब क्रुद्ध होकर भगवान शिव ने कहा, 'तुमने मेरी अवहेलना की है, अतः तुम्हें इस गुफा में रहना पड़ेगा।' भय से कांपते हुए इन्द्र ने क्षमायाचना की तो भगवान् ने प्रकट किया कि यह दण्ड नहीं मानना। ये पांचों मानुषी-योनि में जन्म लेंगे और वहाँ अनेक पराक्रम कर के फिर इन्द्रलोक में आवेंगे। इस पर दुःखी हो कर चारों इन्द्रों ने निवेदन किया कि वे मनुष्य लोक में जन्मग्रहण करेंगे परन्तु धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार उनका माता के गर्भ में आधान करें। भगवान् शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। देवराज इन्द्र ने उनके समान पांचवें व्यक्ति को अपने वीर्य से पुत्र रूप में पैदा करना मंजूर किया। फिर उस सुन्दर स्त्री को भी, जो इन्द्रलोक की राज्यलक्ष्मी थी, मानव लोक में जन्म ग्रहण करने की आज्ञा दी गई।

कालान्तर में गुफा में बद वे पांचों इन्द्र ही पांच पाण्डव हुए और वह सुन्दर स्त्री द्रौपदी के रूप में अवतरित हुई।[1]

यह उपाख्यान बड़ा रोचक है और साथ ही अर्थ-गर्भित भी है। राजस्थानी लोककथा और बात के साथ इसकी तुलना करने से प्रकट होता है कि इन में आश्चर्यजनक समानता है। उपाख्यान के प्रारंभ में यम का यज्ञ में दीक्षित होना और मनुष्यों का अमर होना प्रकट किया गया है। यही सूत्र अर्जुन विषयक लोककथा में कुछ बदल गया है। वहाँ अर्जुन काल की अपेक्षा मनुष्य को बड़ा बतलाता है। कथा, बात और उपाख्यान तीनों में गर्वहरण का तत्व समाया हुआ है, जो स्पष्ट ही है। इसके लिए कथा में अर्जुन और भीम को उपस्थित किया गया है तो बात में कुन्तल देवड़ा और महाबाय पुरुष

---

1. महाभारत (पूना संस्करण) आदिपर्व, अध्याय १८६ श्लोक १-४०

सांस्कृतिक वातावरण भावानुसार विविध रूपों में ढलता जा रहा है।

एक द्रौपदी के पाँचों पाण्डव पति कैसे हो सकते हैं ? इस विकट समस्या के समाधान हेतु उपर्युक्त उपाख्यान महाभारत में दिया गया है। इस उपाख्यान की अर्थ गम्भीरता का डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ 'मार्कण्डेय पुराण, एक सांस्कृतिक अध्ययन' में सुन्दर स्पष्टीकरण करते हुए किया है।

वस्तुतः इस उपाख्यान में कई युगों के तार एक साथ बुन दिए गए हैं। "पंचेन्द्र कल्पना का मूल स्रोत वैदिक था। शतपथ ब्राह्मण में कहा है (६-१-१-२) कि शरीरस्थ पांच इन्द्रियों के रूप में पांच प्राण हैं। प्रत्येक प्राण की संज्ञा इन्द्र है। इन्द्र के ही कारण इन्द्रियों की यह संज्ञा पड़ी है। इन प्राणों के पीछे एक मध्यप्राण है, जो इन सब को प्रदीप्त रखता है।" इसका अध्यात्मक-संकेत स्पष्ट था। शरीरस्थ एक ही क्रियाशक्ति पांच प्राणों के साथ संयुक्त होकर कार्य करती है। इस मूल बात को कई प्रकार के रूपक या प्रतीक भाषा में पटाया गया। ज्ञात होता है साहित्य, कला और लोकवार्ता तीनों में पंचेन्द्र की कल्पना को कुषाण-गुप्तकाल की संस्कृति में स्वीकार किया गया।" एक स्त्री के पांच पति असंगत हैं। किन्तु एक प्राणशक्ति पांच इन्द्रियानुगत मानसिक रूपों के साथ संयुक्त होती है, अथवा एक मूल मातृदेवी या प्रकृति पंचभूतों या स्वयंभू परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी इन पांच पिण्डों की सहगामिनी बनती है, इस धरातल पर सोचने लगें तो कुछ भी विप्रतिपत्ति या शंका नहीं रह जाती। इसी दृष्टि से इन उपाख्यानों का निर्माण किया गया। 'इतिहास पुराणाभ्यां वेद समुपबृंहयेत्' यह वचन पुराणकारों के कर्तव्य का स्पष्ट विधान करता है। उन्हें तो मुख्यतः वेद अर्थात् आध्यात्मिक जगत् के तत्वों को उपाख्यानों के रूप में ढालना था।

इसीलिए एक पशेन्द्र प्रतीक को कई उपाख्यानों द्वारा कहने में उन्हें विरोध नहीं जान पड़ा।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि प्राचीन भारतीय चिन्तन के एक आध्यात्मिक तत्व ने महाभारत में उपाख्यान का रूप धारण किया और वही तत्व भारतीय लोककथाओं में देश-काल के अनुसार रूपान्तरित होकर प्रचलित रहा। राजस्थानी बात में उसने नया रंग धारण किया और यह एक सरस साहित्यिक वस्तु बना। यह अध्ययन बड़ा उपयोगी होने के साथ अत्यंत रोचक भी है। इस दृष्टिकोण से भारतीय लोककथाओं के विश्लेषण एवं अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है। इससे प्रकट होगा कि भारत का अति प्राचीन काल और उसका वर्तमान काल किसी रूप में परस्पर जुड़े हुए हैं। इससे भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र 'लोके वेदे च' (अर्थात् जो शास्त्र में है, वह लोक में भी है) की पूर्ण प्रतिष्ठा होगी।

---

1. मार्कण्डेय पुराण, एक सांस्कृतिक अध्ययन (पृष्ठ ५१-५२)

ठकुरै साह की वात का मूलाधार

राजस्थानी गद्य-साहित्य मे 'वात' (कहानी) का स्थान बहुत ऊंचा है। यहाँ अब भी बात कहने-सुनने मे जनसाधारण की बडी रुचि है। विशेषता यह है कि इन बातो को सँवार-सजा कर लिपिबद्ध भी कर लिया गया है। फलतः हजारो वातें गुटकों मे लिखी हुई प्राप्त है और वे बड़ी मनोरंजक तथा प्रेरणा देने वाली हैं। इनमें बड़ी सख्या उन बातो की है, जिनका सम्बन्ध राजपूत जीवन से है। फिर भी कई बाते ऐसी हैं, जिन मे साह लोगो का (व्यापारियो) का जीवन चित्रित हुआ है। इन व्यापार-वीरो की जीवन कथा भी कम रजक नही है। ऐसी ही एक बात ठकुरै साह की है, जिनका मूलपाठ 'बाता रो झूमखो' भाग दो मे प्रकाशित किया जा चुका है। उसका हिन्दी सारांश इस प्रकार है.—

सरसा नगर मे ठकुरा साह रहता था, जिसका धन्धा समुद्र पार जाने वाले जहाजो की 'जोखम' लेना था। इस व्यवसाय मे उसने अपार सम्पत्ति अर्जित कर ली थी, एक बार उसने इच्छा की कि एक ऐसा महल बनवाया जावे, जिसमे कपूर और कस्तूरी का 'गारा' (चूना) लगा हो। इसके लिए उसने अपने 'वाणोतों' को कस्तूरी खरीदने हेतु समुद्र पार के देश मे भेजा। वहाँ उन्होंने केसरिया साह से पाँच ऊँटों के 'भार' जितनी कस्तूरी खरीदी। इस सौदे से केसरिया साह चकित हो गया। उसने ठकुरे साह का वैभव देखना चाहा और अपना आदमी इस विषय मे पूरा पता लगाने के लिए भेजा।

उसका आदमी सरसे आकर ठकुरे साह का पूरा ठाठ देख गया और फिर लौट कर सारी बातें अपने स्वामी को बता दी।

अब केसरिया साह ने सरसा जाने का निश्चय किया। परन्तु संयोग ऐसा हुआ कि इसी बीच मे ठकुरा साह सम्पत्ति-विहीन हो गया। उसने अन्य व्यापारियो के जिन जहाजो की जोखिम ली थी, वे वायु के प्रकोप से भटक कर डूब गए, ऐसा मान लिया गया। फलतः ठकुरे को उनकी कीमत चुकानी पड़ी। इस भुगतान मे ठकुरे का महल और उसके घर का जेवर तक चला गया परन्तु उसने दिवाला नही निकाला। जब केसरिया साह उससे मिलने के लिए सरसे आया तो वह अपने पुराने मकान मे रहता था। फिर भी उसने मेहमान की पूरी खातिर की। परन्तु केसरिया उसकी स्थिति को भली भांति समझ गया। इतना होने पर भी उसने अपनी पुत्री पद्मावती की सगाई ठकुरे के बेटे सावळ के साथ कर दी और अपने देश के लिए रवाना हो गया।

जब केसरिया साह अपने घर पहुचा तो उसने सारी बात अपनी पत्नी के सामने प्रकट की और बेटी की सगाई कर देने का हाल भी उसे बतला दिया। उसकी पत्नी गरीब घर मे अपनी बेटी देने के लिए इन्कार हो गई। फल यह हुआ कि केसरिया साह को अपने सम्बन्धी को भूठा पत्र लिखना पड़ा कि उसकी बेटी 'माता' (चेचक) से मर गई है और वह अपने बेटे का सम्बन्ध अन्यत्र कर सकता है। ठकुरे साह ने भी इस सूचना को हितकर ही माना। परन्तु सयोग ऐसा हुआ कि व्यापारियो के जो जहाज भटक गए थे, वे अनुकूल वायु पाकर सुरक्षित लौट आए और ठकुरे साह को अपनी सारी सम्पत्ति वापिस मिल गई। अब वह फिर बडा सेठ बन गया।

इसी बीच मे ठकुरे की पत्नी का देहान्त हो गया और सेठ ने दूसरा विवाह कर लिया। नई पत्नी घर मे अपना अधिकार जमाने लगी। एक दिन ठकुरे के बेटे ने बाजार मे एक लाख रुपये मे निम्न गाथा खरीदी -

आरोहन गिर सिखरं समुद्र लंघ जात पातालं।

विह अक्षर लिखिया भाल फलन कपाल हि भूपालं॥

इस एक गाथा के लिए एक लाख रुपये खर्च कर देने के कारण ठकुरे की नई पत्नी बडी नाराज हुई और फल यह हुआ कि सावळ को अपना घर छोड़ना पड़ा। वह एक जंगल में आया, जहाँ से भारड पक्षी उसे उठा कर समुद्र पार के देश मे पहाड पर ले गया। इस प्रकार गाथा का प्रथम चरण सच्चा सिद्ध हुआ। सावळ पहाड से नीचे आकर एक गुफा में रहने लगा।

इसी सोने की खानी थी । कुए के कुए के पानी का रस सोने मे बदल जाता था । इसी मौके मे उस ने सोने की ईंटें बना कर अपने पास रखली । इसी बीच एक सौदागर का जहाज उधर आ निकला । उसने सावळ को अपने जहाज में ईंटें रख लेने की इजाजत दे दी । परन्तु बाद ही वह लोभ में आ गया । पानी पीने के बहाने से सौदागर ने उसे एक कुएँ मे धकेल दिया और स्वयं सारी की ईंटें लेकर चलता बना । इस प्रकार दादा का दूसरा वचन भी सत्य सिद्ध हुआ । कुएँ मे एक खिड़की थी, जिसमे प्रवेश करके सावळ समुद्र के तीर पर आ बैठा ।

वैसाखिया सेठ ने अपनी बेटी पद्मावती की सगाई दूसरी जगह कर दी थी । उसकी बारात का जहाज तीर के पास आया । बारातियों ने सावळ को अपने जहाज मे बिठा लिया और इस प्रकार उसका एक संकट कटा । सावळ देखने मे बड़ा सुन्दर था । परन्तु बरात का दूल्हा कुरूप था और उसके पिता को सन्देह था कि सम्भवतः दुलहिन उसके बेटे के साथ विवाह करना स्वीकार नहीं करेगी । ऐसी स्थिति में एक बार सावळ को दूल्हे का रूप देना तय किया गया और उसे सारी बात समझा भी दी गई । सावळ विपत्ति मे था, पर उसने दूल्हा बनना मन्जूर कर लिया ।

योजना के अनुसार सावळ का पद्मावती के साथ यथाविधि विवाह हो गया । वह ऐसा पति पाकर परम प्रसन्न हुई । उसके पिता ने उसे चार अनमोल रत्न दिये थे । पद्मावती ने उनमे से दो रत्न अपने पति की जाँघ मे एक जड़ी की सहायता से बन्द करके छिपा दिये और शेष दो अपने पास रख लिए । सावळ ने चुपचाप उसके वस्त्र पर पान के रंग से निम्न दोहा लिख दिया —

> सरगो पाटण सरग सम, सुसरै टकुरो नाव ।
> ईसर हूई पारवै, आ मैहल सो गाँव ।।

विवाह के बाद बरात बिदा हुई । जहाज पर दुलहिन को कहा गया कि उसका पति सावळ नहीं है और सेठ का बेटा है । परन्तु वह उसे पति मानने के लिए तैयार नहीं हुई । फल यह हुआ कि सावळ को निद्रित अवस्था में जहाज पर से समुद्र मे डाल दिया गया और बारात आगे बढ़ गई ।

समुद्र मे एक महामच्छ ने सावळ को निगल लिया और वह मच्छ नदी के द्वारा गुजरात मे आकर वहाँ धीवरों के द्वारा पकड़ लिया गया । गुजरात के राजा को मच्छ के तेल की जरूरत थी । इसके लिए जब वह मच्छ चीरा गया तो उसमे से सावळ जीवित अवस्था मे निकला । गुजरात के राजा ने

उसकी योग्यता देखकर 'दाण' (चुंगी) का हाकिम बना दिया। अब वह सावळ जगाती के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जिस सौदागर ने सावळ की सोने की ईंटें जहाज में रखवा कर उसे कुएँ में धकेल दिया था, वही अपना माल लेकर गुजरात आया। उसने सावळ को पहचान लिया और भयभीत होकर उसको सौ ईंटें तथा ऊपर से कुछ भेंट देकर अपनी जान बचाई। सावळ ने उनमें से पच्चीस ईंटें तो अपने पास रखलीं और शेष पचहत्तर ईंटें राजा को भेंट कर दी गईं।

परमावती का श्वसुर बनने का इच्छुक सेठ भी गुजरात का ही निवासी था। [illegible] तो उसके साथ सेठ [illegible] का माल भी ले आया था। उस माल की चुंगी चुकानी जरूरी थी। सेठ ने देखा कि वहाँ तो जहाज से फेंका हुआ सावळ ही जगाती बना बैठा है। अतः उससे पिंड छुड़ाने के लिए वह सेठ राजा के [illegible] ([illegible]) के पास गया और उन्हें सोने की [illegible] देकर [illegible] करने के लिए राजी कर लिया कि सावळ [illegible]

चेष्टा की गई है। एक अन्य बात (हंसराज बच्छराज की बात) के अन्त मे तो यहा तक लिख दिया गया है कि 'तिके हंसराज अर बच्छराज वडा गुजरात माहे नावजादीक हुमा छै।" परन्तु इस बात का मूल स्रोत दूसरा ही सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार ठकुरे साह की बात का उद्गम भी अनुसन्धेय है।

राजस्थान मे इस बात का लौकिक रूपान्तर भी प्रचलित है। तदनुसार एक सेठ केसर के गारे का 'चौबारा' चिनवाने के कारण 'केसरियो सेठ' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करता है। इस सेठ के पास इतना धन है कि इसने अपने मकान की काठ की 'शहतीरों' मे रत्न भरवा कर उन्हे सुरक्षित कर रखा है। समय पाकर भयंकर वर्षा की बाढ मे उसका मकान गिर जाता है और वह एक लकड़े के सहारे बह जाता है। फिर वह अनेक प्रकार के कष्ट भोग कर अंत मे अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करता है। इस लोक-कथा की गाथा इस प्रकार है—

साईं तोसूं वीनती, मनैं न जाये भूल।
करी सो तो भुगत ली, करै सोई कबूल ॥

इस कथा मे 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' का उद्घोष है, जिसे मूल मे उपर्युक्त गाथा (आरोहन गिर सिखर आदि) का ही दूसरा रूप समझिए।

उपर्युक्त ठकुरे साह की बात का विश्लेषण करने पर कई प्राचीन भारतीय-कथानकों के विभिन्न भागों की ओर सहज ही ध्यान चला जाता है। यह तुलना अत्यन्त रोचक है—

१ 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' (अध्याय १८) मे सानुदास की कहानी दी गई है। चम्पा का सेठ सानुदास बुरी आदतो मे पड़ कर अपनी सम्पत्ति खो बैठता है और फिर धन कमाने के लिए घर से निकलता है। समुद्र यात्रा मे उसका जहाज टूट जाता है और वह एक तख्ते के सहारे किनारे पहुँचता है। वहां उसकी समुद्रदिन्ना से भेंट होती है, जो प्रकट करती है कि सानुदास के साथ उसकी सगाई की गई थी परन्तु उसकी बुरी आदतों के कारण विवाह नहीं किया गया। समुद्रदिन्ना ने मोती इकट्ठे कर रख थे। उसने वे मोती सानुदास को दिए। इसके बाद एक अन्य जहाज का व्यापारी उन दोनों को अपने जहाज में बिठा कर उनका उद्धार करता है और कहानी आगे लम्बी चलती है।

कहना न होगा कि समुद्रदिन्ना का वृत्तान्त ठकुरे साह की कहानी मे पदमावती का स्मरण करवाता है। सगाई होने और मोती भेंट करने के प्रसग दोनो कथानको मे समानता प्रकट करते है।

२. 'समराइच्चकहा' (छठे भव) में धरण व्यापारी की कहानी दी गई है। उसमें धरण धन कमाने के लिए समुद्र-यात्रा पर निकलता है परन्तु क्षुब्ध सागर में उसका जहाज टूट जाता है और वह एक तख्ते के सहारे बहता हुआ सुवर्णद्वीप पहुँचता है। वहां रात के समय वह आग जलाता है और एक जगह पत्ते बिछा कर सो जाता है। प्रातःकाल वह देखता है कि आग जलाने के स्थान पर सोना है। तदनन्तर वह सोने की ईंटें बनाता है और उन्हें अपनी मुद्रा से अंकित कर देता है। फिर सुवदन नामक सार्थवाह उसका उद्धार करता है। वह सोने की ईंटों सहित धरण को अपने जहाज में ले लेता है, परन्तु आगे चल कर वह इस सोने को हजम करने की इच्छा करता है और धरण को समुद्र में गिरा दिया जाता है। टोप्प नामक एक सेठ के आदमी धरण को बचा लेते हैं। फिर राजा के यहां सुवदन पर मुकदमा किया जाता है और वहां मुद्रांकित सोने की ईंटों के कारण धरण की जीत होती है।

यह कथांश तो सावळ की उपर्युक्त कथा से स्पष्ट ही मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों धरण ही सांवळ का रूप धारण करके प्रकट हो गया है। सोने की ईंटें बनाना, समुद्र में फेंका जाना तथा राज-दरबार का मुकदमा आदि प्रसंग दोनों कहानियों में समान रूप से प्रकट हैं। इतना जरूर है कि धरण की पत्नी लक्ष्मी और सावळ की पत्नी पद्मावती के चरित्र सर्वथा भिन्न प्रकार के हैं परन्तु इसका कारण तो 'समराइच्चकहा' का गठन एवं उसका मूल उद्देश्य है, जहां आदि से अन्त तक दो विरोधी तत्वों का संघर्ष चलता है।

३. 'भविसयत्तकहा' अत्यन्त प्रसिद्ध है। तदनुसार धनपाल सेठ की पत्नी कमलश्री के गर्भ से भविष्यदत्त का जन्म होता है। कालान्तर में यही सेठ सरूपा नामक सुन्दरी से विवाह कर लेता है और कमलश्री तथा उसके पुत्र भविष्यदत्त की लापरवाही करता है। सरूपा के पुत्र पैदा होता है, जिसका नाम बंधुदत्त रखा जाता है। वयस्क होकर बंधुदत्त कंचन द्वीप की यात्रा के लिए जहाज पर सवार होता है। उसका वैमात्रिक भाई भविष्य दत्त भी उसी के साथ जहाज में बैठता है। परन्तु मैनाक द्वीप पहुँचने पर बंधु दत्त अपने भाई भविष्यदत्त को वहीं अकेला छोड़कर आगे बढ़ जाता है। वहां वह (भविष्यदत्त) भविष्यानुरूपा के साथ विवाह करता है और उसे प्रचुर धन की भी प्राप्ति होती है। जब वह सपत्नीक घर लौटता है तो उसे मार्ग में विपन्नावस्था में बंधुदत्त मिलता है। भविष्यदत्त उसकी मदद करता है परन्तु

फिर बंधुदत्त उसे दगा देता है और उसे अकेला छोड़कर उसकी पत्नी तथा धन-सहित आगे बढ़ जाता है। वह अपने घर पहुँच कर भविष्यानुरूप के साथ विवाह करने की तैयारी करता है। इसी बीच मे भविष्यदत्त भी वहा पहुँच जाता है। बंधुदत्त की राजा के सामने शिकायत की जाती है और दरबार मे उसकी हार होती है।

कहना न होगा कि इस कथा का ठाठ तो स्पष्ट ही सावळ के वृत्तान्त से मिलता है। भविष्यदत्त को अकेला छोड़ कर उसकी पत्नी के साथ विवाह करने की बंधुदत्त की कुचेष्टा तथा मुकदमे मे उसकी पराजय का सूत्र 'ठकुरे शाह की बात' मे गुजरात के बेईमान व्यापारी का वृत्तान्त सामने रखता है।

४. 'राजा श्रीपाल की कथा' प्रसिद्ध है। तदनुसार श्रीपाल विदेश-भ्रमण के लिए निकलता है और धवल नामक व्यापारी के जहाज पर सवार होकर आगे बढ़ता है। वे बर्बर देश मे पहुँचते हैं, जहा राजकर न देने के कारण धवल के सैनिकों को युद्ध करना पड़ता है। इस युद्ध मे सैनिक मारे जाते है और धवल सेठ पकड़ा जाता है। फिर श्रीपाल युद्ध करके विजय प्राप्त करता है और धवल की मुक्ति होती है। वचन के अनुसार धवल उसे अपने आधे व्यापारिक जहाज दे देता है। बर्बर राजा श्रीपाल के साथ अपनी पुत्री का विवाह करता है और प्रचुर धन देकर उन्हे विदा कर देता है। धवल के साथ वह आगे बढ़ता है और रत्नद्वीप मे आकर वहा की राजपुत्री के साथ विवाह करता है। फिर वे आगे रवाना होते हैं। धवल सेठ उसका धन और दोनो पत्निया प्राप्त करने के लोभ मे आकर उसे समुद्र मे गिरा देता है। श्रीपाल तैर कर कोंकण देश मे आ पहुँचता है। यहा भी उसका राजपुत्री के साथ विवाह होता है और वह राजा के दरबार मे पान बीड़ा देने के कार्य पर नियुक्त होता है। संयोग से धवल सेठ भी कोंकण आ पहुँचता है और वह दरबार मे आकर श्रीपाल को देखता है। अब धवल फिर षडयन्त्र रचता है और एक नट को लोभ देकर दरबार मे ऐसा प्रकट करने के लिए राजी कर लेता है कि श्रीपाल उसका (नट का) पुत्र है। नट के ऐसा कहने से राजा को श्रीपाल पर भारी क्रोध आता है और वह उसे मारने के लिए आज्ञा देता है। परन्तु श्रीपाल पीछे की सारी कहानी सुनाकर राजा को शान्त करता है। नट भी धमकाए जाने से बेईमान धवल का सारा भेद खोल देता है। फलत धवल सेठ अपराधी सिद्ध होता है परन्तु श्रीपाल के कहने से उसे क्षमा कर दिया जाता है और कहानी आगे बढ़ती है।

स्पष्ट ही इस कहानी का धवल सेठ सावळ की कहानी का गुजरात

राजस्थानी लोककथाओं में नागतत्व

लोककला की इन विविध धाराओं के साथ सतत प्रवाहमान रही है। यह चित्र, गीत, कथा, अलंकरण एवं प्रतिमा आदि अनेक रूपों और रूपों में अभिव्यक्त है। इसमें लोकमानस का सरल एवं स्वाभाविक रूप मिलता है जो भारतीय की विविध शक्ति से परिपूर्ण है। लोककला के इन विविध पक्षों का अध्ययन बड़ा उपयोगी है। लोककथाओं को ही लीजिये। इनसे लोकरंजन तो होता ही है, साथ ही इनके वैज्ञानिक अध्ययन से नृतत्त्वशास्त्र के भी अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश पड़ता है जो मानवजाति के सामाजिक इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस लेख में राजस्थानी लोककथाओं में व्याप्त नागतत्व पर जरा विस्तार से विचार करने की चेष्टा की जाती है।

भारत में नागपूजा का प्रचलन अति प्राचीन काल से है। यहाँ के साहित्य में नागों के संबंध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है और जनसाधारण का इनमें पूरा विश्वास भी है। 'राजस्थानी लोक-संस्कृति की रूपरेखा' शीर्षक निबन्ध (वरदा वर्ष २, अंक ३) में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई थी कि राजस्थान के जन-जीवन में व्याप्त नागतत्व का वास्तविक रूप क्या है और उसे यहाँ तक लोक विश्वास प्राप्त है परन्तु विस्तार भय से उस निबन्ध में उन विविध लोककथाओं पर प्रकाश नहीं डाला जा सका जिन पर यह लोकविश्वास आधारित है। राजस्थानी जनजीवन में व्याप्त नागतत्व

के अध्ययन के लिये इस विषय की यहाँ की लोककथाओं की जानकारी नितान्त आवश्यक है। आगे जो लोककथाएँ यथास्थान दी गई हैं, वे काफी बड़ी हैं परन्तु विस्तार भय से जहाँ तक हो सका है, इस लेख में उन्हें संक्षिप्त रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

राजस्थान में नागपूजा का प्रचार विशेष रूप से है। यहाँ गोगाजी, तेजाजी आदि लोक देवताओं के प्रति जनसाधारण का बड़ा सम्मान है और यथासम्भव इनके नाम पर अनेक स्थानों पर मेले लगते हैं तथा इनकी "मेंड़ी" बनी हुई है। साँप इन लोक देवताओं के वशवर्ती बतलाये जाते हैं, अतः लोग इनसे बहुत डरते हैं और इनकी कृपा करना चाहते हैं। लोकविश्वास है कि इनकी कृपा प्राप्त कर लेने पर साँप नहीं काटता और यदि काट लेता है तो उसका विष दूर हो जाता है। इन लोक देवताओं के सम्बन्ध में प्रचुर साहित्य सामग्री प्रचलित है[1] और भक्त लोग उसमें बड़ा रस लेते हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक लोक कथाएँ साँपों के सम्बन्ध में कही जाती हैं। ये कहानियाँ शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक भी हैं।

पृथ्वी की रचना एवं उसका नियन्त्रण 'संकर्षण' पर आधारित है। भारतीयों ने इसी शक्ति को शेषनाग के रूप में चित्रित करके देव रूप दिया है। फलस्वरूप इस विषय में अनेक कथाएँ भी प्रचलित हैं। जिस प्रकार लक्ष्मण एवं बलराम शेषावतार माने जाते हैं, उसी प्रकार राजस्थानी लोक देवता पाबूजी भी शेषनाग के अवतार माने जाते हैं और जनसाधारण में इस विषय में पूरी मान्यता है।[2]

नागपंचमी का दिन नागपूजा का विशेष पर्व है। इस दिन महिलाएँ परिवार की मंगल कामना से विशेष आयोजन के साथ कथा सुनती हैं और घर में ठंडा खाना खाया जाता है। नागपूजा सम्बन्धी भारतीय प्रजा का प्राचीन विश्वास राजस्थान में अति मात्रा में व्याप्त है और लोग इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि उन पर किसी भी कारण से नागदेवता की अकृपा न हो जाय। आगे नागतत्व विषयक कुछ राजस्थानी लोककथाओं पर प्रकाश डाला जाता है। ये कहानियाँ जन साधारण में बड़े चाव के साथ कही एवं सुनी जाती हैं—

---

1 इस सम्बन्ध में 'मरु भारती' (भा० ४ अंक ४) में लेखक का "राजस्थानी लोकगीतों में गोगाजी" शीर्षक एवं 'राजस्थान भारती' (भा० ५ अंक २) में श्री अगरचन्द नाहटा का तेजाजी विषयक लेख द्रष्टव्य है।

2 'मरु भारती' (पिलानी) के अंकों में पाबूजी के कई पवाड़े प्रकाशित हो चुके हैं।

किसी नगर मे एक बनिया रहता था जो अपार सम्पत्तिशाली होने पर भी अत्यन्त कृपण था। उसकी कृपणता यहाँ तक बढी हुई थी कि वह अपने पेट को रोटी देने मे भी सकोच करता था। उसका धन्धा यह था कि वह लोगों को रुपये उधार देता था और कठोर ब्याज लेता था।

बनिया कई बार ब्याज की वसूली के लिए देहातों मे भी जाता था। एक बार जब वह बाहर जाने लगा तो उसके बडे बेटे की बहू ने साथ लेजाने के लिए रोटियाँ बनाई और भारी मे पानी भर दिया। इनको लेकर बनिया अपने घर मे निकल गया।

मार्ग मे चलते चलते भोजन का समय हो गया। बनिया एक पेड की छाया मे बैठ गया और उसने साथ लायी हुई रोटियाँ खाली। फिर वह पानी भारी मे से निकाल कर पानी पीने लगा। ज्यो ही उसने पानी मुँह से लगाया कि उसे बड़ा क्रोध आया और वह जगल में अकेला ही बडबडाने लगा। बात यह थी कि उसके बेटे की बहू ने भारी के पानी मे कुछ चीनी मिलादी थी जिससे कि उसके ससुर को मार्ग मे अधिक प्यास न लगे। परन्तु बनिये को धन की ऐसी बर्बादी सह्य न थी। उसने पास के एक बिल मे सारा पानी डाल दिया और वहीं से घर लौट कर अपने बेटे की बहू को बुरी तरह फटकारने लगा। वह समझदार थी, अत वह चुप रही।

दूसरे दिन फिर बनिया देहात मे वसूली करने के लिए चला। आज भी उसके बेटे की बहू ने फिर वैसा ही किया और बनिया पहिले दिन की तरह ही सारा पानी उसी बिल मे डालकर घर आ गया। आज उसने बेटे की बहू को और भी अधिक भला बुरा कहा। परन्तु वह चुप रही। अगले दिन बनिया फिर उसी काम से रवाना हुआ। उसने उसी स्थान पर रोटियाँ खाई और पानी मे उसे फिर मीठा स्वाद आया। उसने तत्काल सारा पानी उसी बिल मे डाल दिया और चलने को तैयार हुआ कि इतने मे ही उस बिल मे एक भयकर सर्प ने अपना फन निकाल कर कहा—"माँग, माँग, मैं तेरी सेवा से परम प्रसन्न हूँ।" बनिया सर्प को देख कर बुरी तरह भयभीत हो गया और वह कुछ भी नहीं बोल सका। सर्प ने उसे धीरज दिया और मन चाहा वरदान माँगने को कहा। अब बनिये के जी मे जी आया। उसने सर्प के सामने हाथ जोडे और निवेदन किया कि वह अपने घर मे सलाह करने के बाद कुछ निवेदन करेगा। सर्प ने उसकी बात स्वीकार करली। बनिया अपने घर लौट आया।

घर आकर बनिये ने पूरा वृत्तान्त अपनी स्त्री को कह सुनाया। उसने कहा कि यह अवसर बहू की चतुराई से मिला है, अत. जो कुछ वह

करे, वही वरदान सर्प से मांगा जावे। तदनुसार बहू से सलाह ली गई। उसने कहा कि सर्प से कुछ भी न मांगा जावे, केवल उसे इतना ही निवेदन किया जावे कि 'हमारा धन हमारा ही हो जाए।' बनिये के यह बात समझ में नहीं आई परन्तु फिर भी उसने दूसरे दिन सर्प के सामने जाकर यही निवेदन किया कि हमारा धन हमारा ही हो जाए।' सर्प यह मांग सुनकर चुप हो गया। उसने बनिए को समझाया कि यह तो कोई विशेष मांग नहीं है, अतः वह कोई दूसरी चीज मांग लेवे। परन्तु बनिये ने अपनी बात नहीं छोड़ी और वह इतने ही शब्द बारम्बार बोलता ही रहा। अन्त में सर्प ने बनिये से कहा कि अगले दिन वह उसी स्थान पर फिर आवे, तब उसकी मांग का उत्तर दिया जा सकेगा। बनिये ने घर आकर समस्त वृत्तान्त सुना दिया और उसे फिर समझा दिया कि वह अपनी बात पर पक्का रहे।

असल में बात यह थी कि वह नाग सब सर्पों का राजा था और बनिये के पास जितनी भी सम्पत्ति थी, वह सर्प राजा की बहिन के यहाँ गिरवी पड़ी थी और यही कारण था कि वह उसे भोग नहीं सकता था। सर्प बनिये को वचन दे चुका था। अतः वह अपनी बहिन के घर गया और उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया, सर्पराज की बहिन ने पहले तो कुछ संकोच किया परन्तु अन्त में उसने भाई का वचन निभाया और बनिये की सम्पत्ति को मुक्त कर दिया। इधर उसी क्षण बनिये की कृपणता दूर हो गई और वह बड़ा उदार बन गया। अब वह बड़ा सेठ था।

अगले दिन सेठ के लिए सर्पराज के सम्मुख उपस्थित होने का समय आया। उसने रथ पर सवारी की और सर्पराज के सामने उपस्थित होकर, ये ही शब्द कहे। सर्पराज ने उसे कहा कि ऐसा तो पहले ही हो चुका है वह और भी कुछ इच्छा हो तो माँग सकता है। परन्तु अब सेठ को कुछ नहीं माँगना था। वह सर्पराज का आभार मानकर अपने घर लौट आया और उसी दिन से ठाठ-बाट से रहने लगा। अब वह नगर सेठ था।

इस लोक-कथा में बनिये का 'लोभ' ही सर्प है जो मधुर व्यवहार से अपना क्रूर रूप छोड़ कर सौम्य रूप धारण करता है। जिस व्यक्ति का हृदय लोभाक्रान्त है, उसकी सम्पत्ति गिरवी रखी हुई के समान है और वह उसे भोग नहीं सकता। कथा के नायक का लोभ उसकी पुत्रवधू की बुद्धिमानी से दूर हो जाता है और वह अपनी सम्पत्ति का वस्तुतः स्वामी बन जाता है। इस प्रकार की अनेक कथाएँ है और अपने पूर्वजन्म की सम्पत्ति की रखवाली करते हैं। अन्त में वह सम्पत्ति उस व्यक्ति के अधिकारी को मिलती है और

तब वह सर्प योनि से मुक्त होता है। इस लोककथा की विशेषता है कि वह बनिया मनुष्य शरीर धारण करने पर भी मन का [illegible] बना हुआ था। परन्तु वह मधुर व्यवहार एवं सत्कार से इसी जीवन में [illegible] कर यहीं रूप से लक्ष्मीपति सेठ बन गया। बनिये और सेठ में यही अन्तर है, जो इस लोक-कथा में प्रकट किया गया है।

सर्प विषयक एक अन्य लोक-कथा इस प्रकार कही जाती है—एक बार एक ब्राह्मण किसी वन में से होकर जा रहा था। उसने देखा कि वन के एक भाग में आग लगी हुई है और उसमें एक सर्प जल रहा है। सर्प ने मानो को देखकर रक्षा के लिए करुण पुकार की और ब्राह्मण ने दयावश उसे जलने से बचा लिया। उसने सर्प को उठाकर एक जगह छाया में डाला। सर्प ने फिर ब्राह्मण से प्रार्थना की कि उसकी प्राण रक्षा तो हो गई परन्तु उसके शरीर के ऐसी आँच लगी है कि अब भी मानो वह जल रहा है। अब यदि कुछ समय के लिए ब्राह्मण उसे अपने कलेजे में प्रविष्ट होने दे, तो उसकी जलन दूर हो सकती है। ब्राह्मण भोला था। उसने अपना मुँह खोल दिया और सर्प उसमें प्रविष्ट हो गया। अब ब्राह्मण बेचैन हो गया। और उसने पेट में बैठे हुए सर्प से बाहर निकलने की प्रार्थना की। परन्तु सर्प अब क्योंकर बाहर निकलने लगा। वह वहीं जमकर बैठ गया।

ब्राह्मण वहाँ से चलकर अपने घर आया और उसी दिन से वह बीमार हो गया। उसने अपने घरवालों को पूरा वृत्तान्त समझा दिया परन्तु उसका कोई इलाज नहीं हो सका। अन्त में ब्राह्मण की बहुत बुरी हालत हो गई। ऐसी स्थिति में उसने सोचा कि अब वह अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता और वह गंगा के किनारे प्राण त्यागने के लिए घर छोड़ कर आ गया। उसकी स्त्री उसके साथ थी।

जब सब सो जाते थे तो कई बार ब्राह्मण के पेट में रहने वाला साँप मौका देखकर बाहर निकला करता था और इधर उधर घूमकर किसी के जागने से पूर्व ही अपने स्थान में जा बैठता था। एक दिन ब्राह्मण और उसकी पत्नी गंगातट पर सो रहे थे कि वह साँप पेट में से निकल कर बाहर आया। संयोग से ब्राह्मणी की आँखें खुलीं और उसने साँप को देख लिया, परन्तु वह चुप रही। साँप गंगा की शीतल बालुका में घूमने लगा। इसी समय वहाँ के बिल में से एक दूसरा साँप और निकला। वे दोनों एक जगह बैठ कर बातचीत करने लगे। ब्राह्मणी सोने का बहाना करके उनका वार्तालाप सुनने लगी। दोनों साँपों ने कुशल प्रश्न के बाद अपनी रहन-सहन का विवरण एक

दूसरे को सुनाया। जब गंगातट पर रहने वाले साँप ने ब्राह्मण के पेट में रहने वाले साँप का हाल सुना तो उसे उसकी नीचता पर बड़ा क्रोध आया और उसने उसे बहुत धिक्कारा। इस पर पहले साँप को भी क्रोध आ गया। उसने कहा, "तुझे अपने धन पर घमंड है। यदि कोई व्यक्ति तेल गर्म करके तेरे बिल में डाल दे तो तुझे सब पता चल जाये।" इतना सुनकर दूसरा साँप बोला, "मुझे भी सब पता है। यदि कोई इस ब्राह्मण को कांजी पिला दे तो तुझे भी सब पता चल जाये।" ब्राह्मणी सब सुन रही थी। वह कुछ हिली इतने में ही वह साँप दौड़कर ब्राह्मण के पेट में प्रविष्ट हो गया।

अगले दिन ब्राह्मणी ने अपने पति को कांजी पिलाई और वह ठीक हो गया। उसके पेट में रहने वाला साँप नष्ट हो गया। फिर उसने तेल गर्म करके दूसरे साँप के बिल में डाला। वह साँप जल गया और बिल खुदवा कर उसकी समस्त सम्पत्ति लेली गई। अब ब्राह्मण पूर्ण स्वस्थ था और हर प्रकार सम्पन्न भी था। वे दोनों घर आकर आराम से रहने लगे।

यह लोककथा पंचतन्त्र में भी है, अतः काफी पुरानी है। इसका साँप कृतघ्नता का रूप है। राजस्थान में और भी कई लोक-कथाएँ साँप के सम्बन्ध में प्रचलित हैं जिनमें घोर कृतघ्नता का प्रकाशन किया गया है। इस कथा का साँप एक उपकारी ब्राह्मण के पेट में प्रवेश करता है, यह तत्त्व विशेष रूप से साभिप्राय है। राजस्थानी बोलचाल में एक मुहावरा "पेट में बड़णो" है। यह मुहावरा उस समय प्रयुक्त होता है जब कोई चालाक व्यक्ति किसी भोले आदमी के सामने मीठी मीठी बातें बनाकर उसका रहस्य मालूम कर लेता है और फिर अपना काम बना कर उसे विपत्ति में डाल देता है। इस लोक-कथा में यह मुहावरा चित्रवत् प्रकट किया गया है जिससे इसकी शिक्षा विशेष रूप से प्रभावोत्पादक बन गई है। राजस्थानी जनसाधारण में यह लोककथा एक अन्य शिक्षा के लिए भी कही जाती है। वह शिक्षा है कि "कभी भी भेद की खोटी नहीं कहणी" अर्थात् अपनी जाति के किसी भी व्यक्ति की बुराई नहीं करनी चाहिये। इससे निन्दित और निन्दक दोनों को हानि होती है। परन्तु मूल रूप में यह कहानी कृतघ्नता की चरम सीमा दिखाने के लिए ही प्रचलित हुई है और इसके लिए साँप का चुना जाना–उसके स्वभाव का सूचक है। इसी विषय में एक राजस्थानी लोककथा और प्रस्तुत की जाती है, जो इस प्रकार है.–

एक बार एक जाट का लड़का अपनी बहू को लाने के लिये समुराल जा रहा था। मार्ग में एक वन आया, जहाँ उसने देखा कि एक साँप जलने

की स्थिति में फँसा हुआ है। सांप ने लड़के से रक्षा के लिए करुण पुकार की। लड़के को उस पर दया आ गई, परन्तु आग के पास जाना कठिन था। उसके साथ पानी की एक 'लोट' (विशेष प्रकार का मिट्टी का पात्र) थी। लड़के ने 'लोट' का सिरा 'मणिये' (एक पौधा) की रस्सी से बांधकर सांप की तरफ फेंका। सांप 'लोट' में प्रविष्ट हो गया और रस्सी खींच कर उसे बचा लिया गया। अब सांप को चैन मिली। उसने आँखें बदल कर प्रकट किया कि वह तो उस लड़के को काटेगा। लड़के ने कहा कि अपने प्राणरक्षक के साथ ऐसा व्यवहार करना बहुत बुरा है। परन्तु सांप न माना। अन्त में लड़के ने वचन दिया कि इस समय उसे अपनी ससुराल जाने दिया जावे और वह तीसरे दिन अवश्य ही सर्प की इच्छा पूरी करने के लिए वहां उपस्थित हो जायगा। सांप ने लड़के को शपथ दिलवाई और तदनन्तर उसे ससुराल जाने दिया।

ससुराल पहुँच कर जाट का लड़का बड़ा उदास रहा। सबने उससे उदासी का कारण पूछा परन्तु उसने कुछ भी प्रकट नहीं किया। अन्त में उसकी बहू ने उससे सारा वृत्तान्त मालूम कर लिया और उसे किसी प्रकार धीरज बंधाया। तीसरे दिन लड़का अपनी बहू को लेकर उसी स्थान पर आगया जहां उसने सांप से भेंट की थी। आवाज देते ही सांप एक बिल में से निकल आया। लड़के की बहू ने उससे बहुत अनुनय-विनय की, परन्तु वह नहीं माना। अन्त में यह तय हुआ कि इस विषय में न्याय करवा लिया जावे कि सांप का उसके पति को काटना उचित है या नहीं। इतने में ही उधर से गायों का एक 'धूणा' (समूह) निकला। 'धूणे' में सबसे आगे एक बूढ़ी गाय थी। उन्होंने गाय से निर्णय मांगा। गाय ने अपनी कष्ट-कथा सुनाते हुए यही निर्णय दिया कि संसार में भले का फल बुरा ही मिल रहा है। अतः सांप लड़के को काट लेवे तो क्या अनुचित है! लड़के की बहू ने इस गवाही को काफी नहीं माना और वे सब दूसरे गवाह से पूछने के लिये वहां से चले। मार्ग में एक पीपल का पेड़ आया जो सूख गया था। उस पेड़ को सारा वृत्तान्त सुनाकर उसका निर्णय मांगा गया। उसने भी अपनी दुःख भरी कहानी सुनाकर बूढ़ी गाय के शब्दों में ही निर्णय दिया। अन्त में एक तीसरी गवाही के लिये वे और आगे बढ़े। मार्ग में उन्हें दाहिनी ओर बैठी हुई 'सोनचीड़ी' दिखलाई दी।[1] लड़के की बहू ने उसे पुकार कर अपने पास बुलाया और सारा

1. सोनचीड़ी (शकुन चिड़िया) का दाहिनी ओर मिलना शुभ परिणाम का सूचक माना जाता है।

विवरण सुनाकर उससे निर्णय मांगा। 'सोनचीड़ी' ने एक बड़े से पेड़ पर बैठ कर इधर उधर देखा और फिर वह बोली, "एक लूंकती (लोमड़ी) इधर आ रही है। वह तुम्हारा निर्णय कर देगी।" इतने में ही लूंकती वहाँ आ पहुँची। उससे भी पूरा वर्णन करके निर्णय मांगा गया। उसने उत्तर दिया कि उनका मुकदमा बिल्कुल निराधार है क्योंकि जिस सांप का इतना बड़ा फन है, वह 'लोट' के छोटे से मुँह मे प्रविष्ट ही नहीं हो सकता। इसलिए सर्वथा बनावटी विवाद का निर्णय नही दिया जा सकता। सांप ने उसे समझाया कि उनका विवाद निराधार नहीं है। वस्तुतः वह 'लोट' मे प्रविष्ट हो गया था। 'लूंकती' ने कहा कि यदि यह बात सही है, तो उसे ऐसा करके आँख से दिखलाया जावे। सांप उतावली में था। अतः वह सब कुछ प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए 'लोट' मे फिर प्रविष्ट हो गया। तत्काल 'लूंकती' ने 'लोट' का मुँह बन्द कर दिया और उसे जमीन मे गड़वा दिया। लूंकती की बुद्धिमानी पर लड़का चकित हो गया। वह अपनी बहू को साथ लेकर सानन्द घर लौट आया।

असल मे यह लोककथा "ब्राह्मण और सिंह" विषयक प्रसिद्ध कहानी का राजस्थानी रूपान्तर मात्र है। इसमे ब्राह्मण की जगह जाट का लड़का है और सिंह का स्थान सांप ने लिया है। गीदड का काम लोमड़ी ने किया है। ये दोनो जानवर समान रूप से लोककथाओ मे चालाक चित्रित किये जाते हैं। इस लोककथा का वातावरण सर्वथा राजस्थानी है। तेजाजी जाट की जीवनकथा मे भी ऐसा ही प्रसंग उपस्थित होता है कि वे वचनबद्ध होकर वापिस एक सर्प के सामने कटवाये जाने के लिए उपस्थित होते हैं। ऐसी वचनबद्धता और भी कई लोककथाओ मे देखी जाती है जो एक विशिष्ट 'अभिप्राय' है। इस लोककथा का सांप तो कृतघ्नता का प्रतीक है ही।[1] साथ ही इस लोक कथा में 'करके दिखलाओ' अभिप्राय भी प्रकट हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कहानी मे तीन 'अभिप्राय' प्रयुक्त हुए है जिनसे यह कहानी अत्यन्त रोचक तथा शिक्षाप्रद बन गई है।

इसी प्रसग मे एक राजस्थानी लोककथा और भी दी जाती है:—

एक राजा को उसके पंडित ने कहा कि एक सांप से आपका पूर्वजन्म का वैर है और वैर का बदला लेने के लिए वह सांप निश्चित दिन को अवश्य

1. सभी लोककथाओं में सांप कृतघ्न नहीं है। कई कहानियों में वह उपकार का अच्छा बदला भी देता है।

[illegible] इसी प्रकार [illegible]

निश्चित समय पर सांप ने [illegible] प्रवेश किया और मार्ग के [illegible] हुआ। इसके बाद वह राजमहल में प्रविष्ट हुआ। वहां [illegible] हुई थी और दूध के कुण्डे रखे हुए थे। सांप ने भी मन भर दूध पीया और वह विशेष रूप से प्रसन्न हुआ। उसे पता चल गया कि यह सब तैयारी उसी राजा के द्वारा करवाई गई है जिसे वह काटने जा रहा है। [illegible] राजा पलंग पर बैठा हुआ दिखाई दिया। सांप को देखते ही राजा ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और वह सर्वथा शान्त रहा। इससे सांप और भी प्रभावित हुआ। [illegible] हुआ कि उसने राजा को [illegible] समझ कर क्षमा कर दिया और प्रेम प्रकाशन करके वह अपने स्थान को लौट गया।

इस कहानी का सांप बैर अथवा क्रोध का प्रतीक है जो प्रेमभाव के कारण शान्त हो जाता है। यहां सांप के बहाने शान्तिपूर्ण नीति का सुन्दर उपदेश दिया गया है।

राजस्थान की अनेक लोककथाओं में नागमणि एवं नागकन्या की चर्चा आती है। नागमणि का प्रकाश अतिमात्रा में तीव्र बतलाया जाता है। इसी प्रकार नागकन्या का रूप असाधारण प्रकट किया जाता है। नागमणि का प्रभाव भी अनोखा कहा जाता है। उसको साथ रखने से जल अलग हट जाता है और चलने वाले को मार्ग दे देता है। लोककथाओं में कई साहसी एवं बुद्धिशाली युवक नाग को मार कर उसकी मणि प्राप्त करते हैं। फिर वे मणि के साथ किसी जलाशय में प्रविष्ट हो [illegible] नागकन्या को प्राप्त करते हैं जो जलाशय के भीतरी [illegible] में निवास करती है।
ढूंढाड़ प्रदेश का [illegible] सा प्रसंग आया है।
इसी [illegible] नागकन्या से विवाह

करता है।[1] नागकन्याओं का रूप-सौंदर्य विख्यात है और उनके साथ विवाह करने के सम्बन्ध में अनेक पुराण-कथाएं हैं। ये सब आर्य एवं नाग लोगों के पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध की सूचक हैं। राजस्थानी लोककथाओं में यह तत्व कई रूपों में प्रकट हुआ है। आगे इस विषय में कुछ लोककथाएं प्रस्तुत की जाती हैं——

किसी गाँव में एक राजपूत सरदार था। उसके कोई लड़का न था। अतः वह सदैव बड़ा उदास रहता था। एक दिन ठकुरानी ने पंडित को बुलाकर अपना संतान योग पूछा। पंडित ने उत्तर दिया कि उसको पुत्र मिलने का योग है परन्तु उसके लिये चतुराई से काम लेना पड़ेगा। तदन्तर इसके लिये पंडित ने विधि भी ठकुरानी को बतला दी।

कुछ समय बाद ठकुरानी ने एकान्तवास आरम्भ कर दिया। कोई भी उससे मिल नहीं सकता था। इसके कुछ समय बाद नगर में खबर फैलादी गई कि ठाकुर के पुत्र पैदा हुआ है। महल में काफी आनन्द मनाया गया परन्तु नवजात शिशु किसी को दिखलाया नहीं गया। छिपे रूप में ही राजपूत सरदार के पुत्र का पालन-पोषण हुआ और जब कई वर्ष निकल गये तो उसका एक जगह विवाह निश्चित कर दिया गया। परन्तु फिर भी उसे किसी को दिखलाया नहीं गया।

विवाह के लिए बरात रवाना हुई। ठकुरानी स्वयं अपने पुत्र को साथ लेकर रथ में बैठ गई। एक रथ में पंडितजी भी बैठे थे। मार्ग में एक बड़े तालाब के पास बरात ने रात बिताने के लिए डेरा किया। सब लोग खा पीकर सो गये परन्तु ठकुरानी जागती रही। आधी रात बीतने पर वह तालाब के पास गई, उसी समय जल में से एक नागिन निकली। ठकुरानी ने उसके सामने हाथ जोड़ लिये और वह रोने लगी। नागिन ने दयावश उसके दुःख का कारण पूछा। ठकुरानी ने पूरा वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि उसके कोई पुत्र नहीं है और वह झूठ ही पुत्र को साथ लेकर उसका विवाह करने के लिए जा रही है। अतः उसे नागिन अपना पुत्र कुछ समय के लिए उधार देने की कृपा करे, जिससे कि उसकी लाज रह सके। नागिन ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके अपना पुत्र उसके साथ कर दिया।

---

1. विशेष जानकारी के लिए शोधपत्रिका भाग ८ अंक १-२ में लेखक का 'नारी का घर दूर है' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

बहू ने अपने पति को वापिस प्राप्त करने के लिये एक तरकीब की। उसने घोषणा करवादी कि जो कोई व्यक्ति आकर उसे अनोखी घटना का सही समाचार देगा, उसे एक सोने का टक्का (सिक्का) इनाम मे दिया जायेगा। फलस्वरूप कई लोग अनोखा वृत्तान्त सुनाने के लिये आने लगे और सोने का टक्का पाने लगे। उसके घर मे धन की कोई कमी न थी, अतः यह क्रम जारी रहा।

एक दिन किसी दूसरे गाव का एक ब्राह्मण इनाम पाने के लिये अपने घर से चला। उसे मार्ग मे ही रात हो गई। अतः वह जंगली जानवरो के भय से एक पेड पर चढ गया। काफी रात बीतने पर उसने देखा कि पेड के नीचे तीव्र प्रकाश फैल गया है और एक सभा जुड़ गई है। उस सभा मे एक व्यक्ति सिहासन पर बैठा है और उसके सामने रूपवती युवतियां नाच-गान कर रही हैं। कुछ समय के बाद वह दृश्य लुप्त हो गया। दिन निकलने पर ब्राह्मण पेड़ से नीचे उतर आया और अपने गन्तव्य स्थान के लिये रवाना हो गया।

ब्राह्मण ने नगर मे पहुँच कर सेठ की पुत्रवधू को रात्रि की घटना का विवरण सुनाया और इनाम पाई। सेठ की पुत्रवधू ने सिहासन पर बैठने वाले व्यक्ति की सूरत का वर्णन सुनकर ब्राह्मण को अपने घर में ही ठहरा लिया और उसका काफी सम्मान किया। रात पड़ने पर वह ब्राह्मण को साथ लेकर उसी पेड़ के पास पहुँची जहां गत रात्रि को जलसा देखा गया था। वे दोनों पेड़ पर चढकर बैठ गये। कुछ समय बीतने पर वही दृश्य पेड़ के नीचे प्रकट हुआ। बहू ने पहिचान लिया सिहासन पर बैठने वाला व्यक्ति उसका पति ही है। अतः वह चुपचाप पेड़ से नीचे उतर आई और नाचने वाली युवतियों में शामिल हो गई। उसका नाच देखकर सिंहासन पर बैठा हुआ व्यक्ति परम प्रसन्न हुआ और उसने नई नर्तकी को इनाम मागने के लिये कहा। बहू ने वचन लेकर उसको खुद को ही इनाम मे मांगा। अब उसे पता चला कि वह तो उसी की पत्नी है जिसे वह छोडकर चला आया है। वचन पूरा करने के लिये वह वही रह गया और सभा गायब हो गई। इसके बाद ब्राह्मण को पेड़ से नीचे उतारा गया और वे तीनों सेठ के नगर में आ गये। घर आकर ब्राह्मण को काफी धन देकर विदा किया गया और वे आनन्द से रहने लगे।

एक अन्य राजस्थानी लोककथा इस प्रकार कही जाती है :—

एक राजा के कई लडकियाँ थी। एक दिन राजा ने उनको बारी-बारी से अपने पास बुलाकर पूछा कि वे किसके भाग्य से आनन्द करती है? बड़ी

पुरोहित की समझ में नहीं आया कि राजकुमारी का सम्बन्ध ऐसे किस व्यक्ति के साथ किया जावे जिससे कि वह कभी सुखी नहीं रह सके। एक दिन वह मार्ग में किसी टीले के पास बैठा था उसने देखा कि पास ही एक सांप बिल में से मुँह निकाले बैठा है। पुरोहित ने राजकुमारी की सगाई उसी सांप के साथ करदी और अपने गांव आकर राजा को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा तो ऐसा ही चाहता था। अतः निश्चित दिन पर राजकुमारी को वहीं भेजकर उस सांप के साथ उसका विवाह कर दिया गया। सभी लोग अपने घर लौट आये और राजकुमारी वहीं बैठी रही।

थोड़ी देर बाद सांप ने अपनी बहू से कहा कि वह उसकी पूँछ पकड़ लेवे और उसके पीछे-पीछे बिल में चली आवे। राजकुमारी ने ऐसा ही किया और वह बिल में प्रविष्ट हो गई। कुछ दूर जाने के बाद उसने देखा कि वह सांप एक सुन्दर राजकुमार के रूप में बदल गया और वहाँ एक महल दिखलाई दिया। वे दोनों उसी महल में चले गये। वहाँ सब प्रकार का ठाठ था। अतः राजकुमारी वहाँ आनन्द से रहने लगी।

कई वर्षों बाद घमण्डी राजा पर विपत्ति पड़ी और उसे प्राण लेकर अपनी राजधानी से भागना पड़ा। उसके साथ उसकी रानी और पुरोहित भी थे। वे चलते चलते उसी स्थान पर आ गये, जहाँ उसके दामाद सर्प का बिल था। पुरोहित ने राजा-रानी को वह स्थान दिखलाया और राजकुमारी के विवाह की चर्चा की। यह वृत्तान्त सुनकर राजा वहीं ठहर गया।

थोड़ी देर बाद उसकी पुत्री और उसका सांप-पति दोनों बिल के बाहर हवा खाने के लिये आये। उन्होंने देखा कि वहाँ कुछ विपन्न लोग बैठे हुये हैं। परन्तु राजकुमारी ने जल्दी ही अपने माता पिता एवं पुरोहित को पहिचान लिया और उनको बिल में प्रवेश करवाकर राजमहल की शोभा

दिखलाई गई। उसका दामाद भी एक सांप न होकर एक राजकुमार था और उसकी बेटी का जीवन परम सुखी था। अब घमण्डी राजा की समझ मे आया कि संसार मे सब अपना अपना भाग्य भोगते हैं और कोई किसी के आश्रित नहीं है। राजा पर जो विपत्ति पड़ी है, वह भी उसके अपने भाग्य का ही फल है।

स्पष्ट ही इन लोककथाओं के सांप नाग जाति के लोग हैं जिनका जीवन सांपों के रूप मे चित्रित किया गया है परन्तु साथ ही वे मनुष्य के समान भी प्रकट हुये हैं। राजस्थान मे इस प्रकार की अनेक लोककथायें हैं। नागपचमी की कथा भारत के सभी भागों मे थोड़े-थोड़े भेद के साथ कही जाती है। इस व्रतकथा मे एक स्त्री के पीहर मे कोई नही है, जिससे वह दुखी रहती है। एक दिन उसे एक सांप दिखलाई देता है जो उस पर दया करता है और अपनी धर्म की बहिन या पुत्री मान लेता है। अब उस स्त्री के भी पीहर हो जाता है और उसे वहां से सब प्रकार की सहायता मिलती है। इस व्रत कथा का सांप भी नाग जाति का मनुष्य ही तो है।

ऊपर देखा गया है कि लोककथाओं मे नाग चाहे जब मनुष्य बन जाता है और चाहे जब वह सांप का रूप धारण कर लेता है। राजस्थान के लोक-देवता गोगाजी के सम्बन्ध मे प्रचलित कहानियो मे भी यही चीज सामने आती है। कहा जाता है कि गोगाजी ने अपनी मौसी के बेटों को मार कर उनसे अपनी स्त्री के अपमान का बदला लिया। इस पर इनकी माता को बड़ा दुख हुआ और उसने उनको कभी मुंह न दिखलाने को कहा। गोगाजी तत्काल घर से निकल गये परन्तु वे रात के समय अपनी स्त्री के पास आने लगे। एक दिन उनकी माता ने उन्हे घर मे देख लिया तो तत्काल सांप का रूप धारण करके वहां से निकल गये और फिर कभी लौटकर घर नही आये। इसी प्रकार एक लोककथा मे एक सेठ की पुत्रवधू के पास छिपे तौर पर आने वाला एक नवयुवक भी सांप के रूप मे लौटता हुआ पकडा जाकर मार डाला जाता है। यह सब लोककथाओ की अपनी रगत है।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थानी लोक कथाओं मे नाग के कई रूप है। कई कथाओ मे नाग एक क्रीडा मात्र है। अन्य नीतिकथाओ की तरह उस पर मानव जीवन का आरोप करके कोई शिक्षा निकालने के उद्देश्य से ऐसी कहानियो का प्रचलन हुआ है। कहानी को बालोपयोगी बनाने का यह एक सुन्दर तरीका है। इसके द्वारा सरलता पूर्वक शिक्षा दी जाती है। कई लोक कथाओ का नाग एक मनुष्य है, जो नाग जाति का सदस्य है। उसका अन्य

राजस्थानी लोककथाओं में यक्षतत्व

भारतीय लोक-संस्कृति की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसका पुण्य-प्रवाह अति प्राचीन काल से चला आ रहा है और समय-समय पर इसमें विविध विचार धाराएँ मिलकर इसको पुष्ट एवं सबल बनाती रही हैं। इसमें आर्य, अनार्य एवं वन्य आदि विविध जन-समूहों का व्यवहार तथा जीवनक्रम मिल कर एकरस हो गया है। समयानुसार जो तत्त्व इसमें मिलते रहे हैं, कालान्तर में वे रूपान्तरित भले ही हो गए हों परन्तु वे सर्वथा नष्ट नहीं हुए। यह भारतीय लोक-संस्कृति की महिमा है जो सहिष्णुता एवं समन्वय पर आधारित है।

एक समय ऐसा था जब भारतीय प्रजा में वैदिक उपासना पद्धति को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त था और तदनुरूप ही यहाँ की जनता का जीवन व्यवहार था। यह स्थिति बहुत अधिक लम्बे समय तक रही। कालान्तर में इसके साथ ही जनसाधारण में नवीन उपासना पद्धति का भी प्रचलन हुआ जिसकी विधि में वाद्य, पुष्प एवं बलि आदि को महत्व दिया गया। जगह-जगह देवताओं के 'स्थान' बने और इन 'स्थानों' पर यक्षों की पूजा प्रचलित हुई जो नगर, ग्राम अथवा क्षेत्रों के रक्षक माने जाते थे। कुछ तो भय के कारण और कुछ मनोभिलाषाओं की पूर्ति के लिए यक्षपूजा भारतीय प्रजा के जीवन का अंग बन गई। आर्य एवं बौद्ध तथा जैन साहित्य में इस सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। यक्षों की अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ भी मिली हैं। डॉ० आनन्दकुमार स्वामी ने इस विषय पर अपने 'यक्ष' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में विस्तृत अध्ययन

प्रस्तुत करके भारत के सांस्कृतिक-इतिहास-प्रेमियों को एक अत्यन्त मूल्यवान भेंट दी है। इस विषय में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का वक्तव्य मनन करने योग्य है—"भारतीय पुरातत्व में जो विष्णु की सब से प्राचीन मूर्तियाँ मथुरा में मिली हैं, वे यक्ष-मूर्तियों के अनुकरण पर ही बनाई गई हैं। बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियों का मूल रूप भी यक्ष मूर्तियों से लिया गया, जैसा श्री कुमार स्वामी ने पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध किया है। भारतीय कला में प्राप्त अब तक की मूर्तियों में यक्ष मूर्तियाँ और यक्षपूजा सबसे पुरानी विदित हुई है। इसी पूजा-पद्धति के सूत्रों को सग्रहीत करके लगभग मौर्य शुङ्ग-काल में विष्णु की मूर्ति-पूजा का प्रचार हुआ।"[1]

देव लोग भारतीय आर्यों के पूर्वज थे। यक्षों को भी देव माना गया है। फलस्वरूप देवों के समान ही इनकी अलौकिक सामर्थ्य के सम्बन्ध में भी अनेक रगीन कथाएँ जन साधारण में प्रचलित हो गई और लोगों ने इनको पूरे विश्वास के साथ आदर दिया। कालान्तर में इन कथाओं में भी परिवर्तन हुआ जो एक स्वाभाविक क्रिया है।

'राजस्थानी लोक संस्कृति की रूपरेखा' शीर्षक निबंध (वरदा वर्ष २ अंक ३) में राजस्थानी जनजीवन में व्याप्त यक्षतत्व पर विस्तार से चर्चा की गई थी। परन्तु इन लोकतत्वों को बनाए रखने में जो लोककथाएँ आधारभूत हैं, उन पर उस निबन्ध में विस्तार-भय के कारण प्रकाश नहीं डाला जा सका। इस लेख में इस सम्बन्ध में विचार किया जाता है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि राजस्थानी लोककथाओं में यक्षतत्व एकदम स्पष्ट नहीं है क्योंकि समयानुसार यक्षकथाओं में भी रूपान्तर आ गया प्रतीत होता है।[2] फिर भी इस विषय के मूलतत्व राजस्थानी लोककथाओं में अद्यावधि चले आ रहे हैं। जहाँ तक हो सका है, इस लेख में सभी कथाओं को संक्षिप्त रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

इस विषय में राजस्थानी महिला समाज में प्रचलित व्रतकथाएँ अथवा पुण्य-कथाएँ विशेष रूप में ध्यान देने योग्य है। इनमें प्राचीन भारतीय जन-

1. द्रष्टव्य—"राजस्थान में भागवतधर्म का प्राचीन केन्द्र मध्यमिका" शीर्षक लेख (संयुक्त राजस्थान अक्टूबर-नवम्बर १९५७)।

2. उदाहरणार्थ महाभारत में दी गई यक्ष-युधिष्ठिर-प्रश्नोत्तरी का राजस्थानी रूपान्तर द्रष्टव्य है जिसके सम्बन्ध में पहिले विस्तार में चर्चा की जा चुकी है।

जीवन के अनेक तत्व व्याप्त है। उदाहरणार्थ 'नगर बसेरो' क्रिया[1] की कहानी पर विचार किया जाता है। कहानी इस प्रकार है:—

किसी गाव मे एक जाटका और एक भाटका रहते थे। जिस गाँव मे जाटके की ससुराल थी, उसी मे भाटके की बहिन विवाही गई थी। एक दिन वे दोनों उस गाव के लिए रवाना हुए। जाटका अपनी बहू को लिवाने जा रहा था और भाटका अपनी बहिन से मिलने के लिए जा रहा था। जब वे उस गांव मे प्रवेश करने लगे तो वे एक कुएँ की पाल पर ठहरे। जाटके ने अपने साथी को समझाया कि पहिले नगर बसेरे की विधि सम्पन्न करली जावे और फिर नगर प्रवेश किया जावे। भाटके ने उत्तर दिया कि उसे तो अपनी बहिन से मिलना है। जिसे अँवाई के रूप मे सम्मान करवाना है, वह नगर-बसेरे की विधि पूरी करे। इस पर जाटके ने वैसा कर लिया और भाटके ने नहीं किया। तदनन्तर उन्होने गाव मे प्रवेश किया।

ससुराल मे पहुचने पर जाटके का बडा सम्मान हुआ। उसे अच्छा भोजन मिला और गीत गाए गए। उधर भाटका अपनी बहिन के घर पहुँचा। उसके जाते ही घर मे आग लगी और सब लोग आग बुझाने मे लग गए। उसे भी उनके साथ काफी मेहनत करनी पड़ी और इस दौड़ धूप मे किसी ने उसको भोजन के लिए भी नहीं पूछा। अतः वह भूखा ही रहा।

अगले दिन वे उसी कुँए की पाल पर मिले। भाटके ने अपना दुखडा रोया और साथी की सलाह से नगर-बसेरे की विधि पूरी की। इसके बाद गाव में जाने पर उसे भी भोजन मिला। फिर वे दोनों ही अपने गाँव के लिए लौटे। गाव मे प्रवेश करने से पूर्व जाटके ने फिर एक कुएँ की पाल पर अपने साथी से नगर बसेरे की विधि सम्पन्न करने के लिए कहा। उसने उत्तर दिया कि उसके तो माता है, जो अच्छा भोजन तैयार करके प्रतीक्षा कर रही होगी। जिसके माता न होकर 'मावसी' होवे, वह ऐसा करेगा। इस पर जाटके ने

---

1. 'नगर बसेरो' प्रक्रिया गाव से बाहर किसी बड़-पीपल के नीचे अथवा किसी जोहड़ के पास की जाती है। महिलाएँ एक हाथ मे कुछ अनाज के दाने और दूसरे मे जलपात्र लेकर दौड़ती जाती हैं और इस प्रकार बोलती है—नगर बसेरो ने घरें मे नर धोवें पाव, ताता मांडा लापसी देगी म्हारी माय, माय न देगी मावसी देगी डारचा को नाथ, बँटुटा को भाग, मीठा-मीठा गास, पोड़ण ने सुखबास। इन पक्तियों मे 'सुखवास' शब्द काफी पुराना है। जायसी ने भी पदमावत काव्य मे इसका कई स्थलों पर प्रयोग किया है।

नगर-बधेरे की विधि पूरी की और जाटके ने कुछ भी नहीं किया। फिर उन्होंने नगर में प्रवेश किया।

जाटका अपनी बहू को लेकर चला गया। उसकी सासजी ने उन दोनों का बड़ा सम्मान किया। उधर जाटका अपने घर गया तो उसके बाप ने उसे एक लाठी दी और कहा कि पहिले वह खोई हुई भैंस को तलाश करके लावे। बेचारा तलाश भैंस की तलाश में निकल गया और दिन भर भटकता रहा मगर कहीं भी भैंस नजर नहीं आई। भैंस को साथ लिए बिना वह अपने घर भी नहीं लौट सका और रात को वहीं पड़ा रहा।

दूसरे दिन जाटका और जाटरा फिर उसी कुएँ की पाल पर मिले। जाटरे ने फिर पानी के आगे अपना दुखड़ा रोया। जाटरे ने उससे नगर-बधेरे की विधि पूरी करवाई। इसके बाद जल्दी ही उसे अपनी भैंस मिल गई और वह घर लौट आया। अब उसकी माता ने उसके लिए भोजन तैयार किया और उसे चैन आया।

प्राचीन काल में प्रत्येक नगर और गाँव का अपना यक्ष देवता होता था, जिसका यह कर्त्तव्य था कि वह बस्ती के लोगों को हर प्रकार की विपत्ति से बचाए। बस्ती के लोग उसकी बड़े सम्मान से पूजा करते थे क्योंकि वह उनका रक्षक था। यह लोककथा उसी प्राचीन प्रथा की सूचक है। किसी नगर में प्रवेश करने से पूर्व उस नगर के 'आरक्ष देवता' की पूजा कर लेना आवश्यक है। नगर-बधेरे की विधि में पानी और अनाज भेंट किया जाता है। यह क्रिया भी देवता को तृप्त करने की ओर संकेत करती है। राजस्थान में यह भी रिवाज है कि गर्मी के दिनों में (वैसाख तथा जेठ के महिने में) साँझ के समय अनाज के कुछ दाने और जल लेकर घर के दरवाजे के सामने जमीन पर जल की एक रेखा सी बनादी जाती है और अनाज छोड़ दिया जाता है। यह क्रिया भी घर में रहने वालों की रक्षा की दृष्टि से की जाती है। नगर रक्षा की तरह गृह-रक्षा का भार भी यक्ष-देवता के ही जिम्मे रहता था। इसी दृष्टि से मंदिरों में यक्ष-प्रतिमा भी स्थापित की जाती रही है।

सामान्यतया यक्ष-देवता का निवास किसी वृक्ष में माना जाता था और वहीं उसकी पूजा की जाती थी। राजस्थान में वृक्ष-पूजा का प्रचार अत्यधिक है। इस सम्बन्ध में कुछ कहानियाँ यहाँ दी जाती हैं। एक कहानी 'पीपळ पूजा' से सम्बन्धित है, जो महिलाओं में प्रचलित है। कहानी इस

इस कहानी में दूसरों को वृक्ष के देवता की कृपा से धन प्राप्त होता है। यह वृक्ष का देवता भारत की पुरातन वन विषयक लोकधारणा का रूपान्तर प्रतीत होता है। इसी विषय में एक अन्य लोककथा इस प्रकार प्रचलित है :—

एक बार किसी जाट के गाँव में भयंकर अकाल पड़ा। अतः वह अपने समस्त परिवार को साथ लेकर किसी दूसरे प्रदेश की ओर रवाना हो गया। मार्ग में रात पड़ गई। उन्होंने एक खेत में विश्राम किया और जो कुछ साथ था, खा पीकर सब सो रहे। दिन निकलने से काफी समय पूर्व ही वे सब उठ गए और काम में लग गए। कोई लकड़ियाँ इकट्ठी करता था तो कोई 'सणिये' (एक पौधा) उखाड़ता था और कोई उनकी रस्सी तैयार करता था। इस प्रकार जाट का पूरा परिवार काम में जुटा हुआ था।

उस खेत के एक पेड़ में एक देव रहता था। जाट के परिवार की क्रियाशीलता देखकर वह डर गया और उसने प्रत्यक्ष प्रकट होकर पूछा कि वे लोग रस्सी तैयार क्यों कर रहे हैं? जाट ने उत्तर दिया कि वे सब उसे बाँध कर ले जायेंगे। इस पर देव ने पूछा कि उसके छुटकारे का कोई उपाय होना चाहिए। जाट ने कहा कि यदि वह उसे काफी धन देवे तो ऐसा किया जा सकता है। इस पर देव ने कहा कि उसके पेड़ की जड़ में काफी धन गड़ा हुआ है। उसे खोदकर ले लिया जावे। जाट ने ऐसा ही किया और वह काफी धनी होकर सपरिवार गाँव को लौट आया।

जाट के पड़ोसी ने उसका वैभव देखकर बड़ा आश्चर्य किया और किसी प्रकार इसका पता लगाया कि उसे इतना धन कहाँ से मिला है। इसके बाद वह पड़ोसी भी अपने पूरे परिवार को लेकर उसी खेत में जा पहुँचा और उसी प्रकार सणिये उखाड़ कर रस्सी बँटने लगा। परन्तु उसके परिवार का कोई भी आदमी उसकी आज्ञा नहीं मान रहा था और मनमानी कर रहा था। इस पर वृक्ष का देव फिर प्रकट हुआ और उसने पहिले की तरह उससे रस्सी बँटने का कारण पूछा। देव को जाट के पड़ोसी ने यही उत्तर दिया जो किसी समय उसने दिया था। इस पर देव ने कहा कि जिसके अपने परिवार के लोग ही वश में नहीं हैं, वह किसी दूसरे को अपने वश में क्या कर सकेगा? यदि ऐसी हालत में वे लोग उस खेत में जरा भी ठहरे तो उनकी जीवनलीला समाप्त ही समझी जावे। देव के मुँह से ऐसा सुनते ही सब लोग डर के मारे भाग छूटे और जैसे-तैसे अपने घर आकर चैन की साँस ली।

यह लोककथा अनुशासन एवं संगठन की महिमा प्रकट करती है। इसका देव प्राचीन भारत की लोकधारणा के यक्ष की याद दिलाता

यक्ष सौम्य प्रकृति के माने गए थे। वे प्रसन्न होकर धन देते थे या इच्छा पूरी कर देते थे। इसी प्रकार कई यक्ष क्रूर प्रकृति के भी माने गए थे। वृक्ष मे निवास करने वाले भूत की कल्पना भी ऐसे यक्ष का ही रूपान्तर प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध मे निम्न राजस्थानी लोककथा विचारणीय है :—

एक स्त्री अत्यन्त कर्कशा थी। उसका नियम था कि वह प्रतिदिन सुबह अपने पति के सिर मे सात जूते लगाती, तब अन्य किसी काम मे हाथ डालती। इस क्रूर व्यवहार मे उसका पति तंग आ गया और एक दिन उसने अपनी पत्नी के सामने 'परदेस' जाकर धन लाने का प्रस्ताव रखा। कर्कशा पत्नी ने उत्तर दिया कि उसकी अनुपस्थिति मे उसके हाथ से जूते कौन खायगा ? इस पर यह तय हुआ कि उनके आँगन मे खडे हुए एक बबूल के पेड़ के प्रतिदिन सात जूते लगाकर वह अपना नियम पूरा कर लिया करे। पत्नी ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया और वह अपना गांव छोड़कर दूर चला गया।

जिस पेड के वह कर्कशा स्त्री सात जूते लगाती थी, उसमे एक भूत रहता था। उस कर्कशा के जूते उस भूत के सिर पर लगने लगे और वह मार खाते खाते तंग आ गया। अन्त मे एक दिन उसने प्रकट होकर कर्कशा स्त्री से अपनी रक्षा के लिए निवेदन किया। इस पर भूत को उत्तर मिला कि यदि वह अपना बचाव चाहता है, तो जूते खाने के लिए उसके पति को वहाँ ले आवे। अन्य किसी उपाय से उसकी रक्षा नही हो सकती।

वहाँ से चलकर भूत उस गांव मे गया जहाँ उसका पति रहता था। उसने उसे घर लौट जाने के लिए कहा। कर्कशा के पति ने कहा कि वह धन कमाने के लिए घर से इतनी दूर आया है और इतने समय मे उसके कुछ पल्ले नही पडा है। ऐसी हालत मे उसका घर लौटना नही हो सकता। इस पर भूत ने उसे धन प्राप्त करने का एक उपाय बतलाया। भूत ने कहा कि वह उस नगर के राजा के सिर चढेगा और वह काफी धन लेकर राजा को ठीक कर देने के लिए तैयार हो जावे। चाहे कितने भी मन्त्रज्ञ आवें, वह भूत राजा के सिर से नही उतरेगा और जब वह आएगा तो उसे देखते ही वह भाग जाएगा। इससे उसे काफी धन मिल जायगा और फिर वह अपने घर जा सकेगा।

भूत ने जैसा कहा था वैसा ही किया और उसकी सलाह के अनुसार म करके कर्कशा के पति ने काफी धन प्राप्त कर लिया। इसके बाद भूत अन्यत्र चला गया और कर्कशा के पति ने सोचा कि उसके पास काफी धन

है अतः वह चाहे जहाँ भी आनन्द से जीवन बिता सकता है और घर जाकर प्रतिदिन उसे सताना सर्वथा अनुचित है। ऐसा निश्चय करके वह भी किसी दूसरे गाँव में जाकर रहने लगा।

कुछ समय बाद वह भूत एक अन्य राजा के सिर पर चढ़ बैठा। राजा के इलाज के लिए बहुत कोशिशें की गईं परन्तु कोई फल नहीं निकला। अन्त में राज-सेवक तलाश करते हुए उस कर्कशा के पति के पास आ पहुँचे और उससे राजा को ठीक कर देने की प्रार्थना की। वह उनके साथ हो लिया और राजा के नगर में जाकर इलाज के लिए काफी धन माँगा। उसकी शर्त स्वीकार की गई। जब वह राजा के सामने गया तो मालूम हुआ कि उस पर तो वही भूत है जिसने उसे दूसरी जगह काफी धन दिलवाया है। परन्तु भूत ने उसे देखते ही भारी क्रोध किया कि वह अभी तक अपने घर क्यों नहीं गया, जबकि उसे काफी धन दिलवा दिया गया है। कर्कशा के पति ने भूत को धीरे से समझाया कि वह तो उसे एक विशेष बात कहना चाहता है और वह बात यह है कि जिसके डर से वे दोनों भागे-भागे फिरते हैं वह कर्कशा उस समय वहाँ स्वयं आ पहुँची है। अतः कोई उपाय करना चाहिए। इतना सुनते ही भूत डरकर वहाँ से भाग गया और राजा ठीक हो गया। कर्कशा के पति ने अपनी बुद्धि से और भी काफी धन प्राप्त कर लिया तथा वह आनन्द से वहीं रहने लगा।

इस लोककथा में प्रकट किया गया है कि मार के डर से भूत भी भागता है। प्राचीन भारत की लोकधारणा के अनुसार यक्ष लोगों के सिर भी आते थे और उनसे विविध प्रश्न पूछे जाते थे। राजस्थान में अब भी कई देवी-देवताओं से 'बूझा' करवाई जाती है। ये देवता अपने पुजारियों के सिर आते हैं और फिर प्रश्नों के उत्तर देते हैं। इस लोककथा का भूत भी लोगों के सिर चढ़कर कर्कशा के पति को धन दिलवाता है। इस प्रकार वह प्राचीन काल के किसी क्रूर प्रकृतिवाले यक्ष का स्थान लिये हुए प्रतीत होता है।

इसी प्रसंग में ध्यान देने योग्य एक कहानी राजस्थान में और भी प्रचलित है। कहा जाता है कि बैंलडी अथवा केलणियो नामक गाँव के जोहड़ के वृक्ष में एक भूत रहता था। वह आने जाने वालों की लोगों सहायता करता था और उनसे तम्बाकू का पान (एक बार चिलम में भरी जाय इतनी तम्बाकू) माँगता था। एक बार उस स्थान पर एक अकाल-पीड़ित ब्राह्मण परिवार आया। भूत को [उस परिवार पर दया आई और उसने ब्राह्मण की हालत सुधारने का उसे उपाय बतला दिया। भूत अपनी सीमा (वाकड) छोड़कर नहीं जा

यक्ष सौम्य प्रकृति के माने गए थे। वे प्रसन्न होकर धन देते थे या इच्छा पूरी कर देते थे। इसी प्रकार कई यक्ष क्रूर प्रकृति के भी माने गए थे। वृक्ष में निवास करने वाले भूत की कल्पना भी ऐसे यक्ष का ही रूपान्तर प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध मे निम्न राजस्थानी लोककथा विचारणीय है :—

एक स्त्री अत्यन्त कर्कशा थी। उसका नियम था कि वह प्रतिदिन सुबह अपने पति के सिर में सात जूते लगाती, तब अन्य किसी काम में हाथ डालती। इस क्रूर व्यवहार से उसका पति तग आ गया और एक दिन उसने अपनी पत्नी के सामने 'परदेस' जाकर धन लाने का प्रस्ताव रखा। कर्कशा पत्नी ने उत्तर दिया कि उसकी अनुपस्थिति में उसके हाथ से जूते कौन खायगा ? इस पर यह तय हुआ कि उनके आँगन में खड़े हुए एक बबूल के पेड़ के प्रतिदिन सात जूते लगाकर वह अपना नियम पूरा कर लिया करे। पत्नी ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया और वह अपना गांव छोड़कर दूर चला गया।

जिस पेड़ के वह कर्कशा स्त्री सात जूते लगाती थी, उसमें एक भूत रहता था। उस कर्कशा के जूते उस भूत के सिर पर लगने लगे और वह मार खाते खाते तंग आ गया। अन्त में एक दिन उसने प्रकट होकर कर्कशा स्त्री से अपनी रक्षा के लिए निवेदन किया। इस पर भूत को उत्तर मिला कि यदि वह अपना बचाव चाहता है, तो जूते खाने के लिए उसके पति को वहाँ ले आवे। अन्य किसी उपाय से उसकी रक्षा नहीं हो सकती।

वहाँ से चलकर भूत उस गाँव मे गया जहाँ उसका पति रहता था। उसने उसे घर लौट जाने के लिए कहा। कर्कशा के पति ने कहा कि वह धन कमाने के लिए घर से इतनी दूर आया है और इतने समय में उसके कुछ पल्ले नहीं पड़ा है। ऐसी हालत में उसका घर लौटना नहीं हो सकता। इस पर भूत ने उसे धन प्राप्त करने का एक उपाय बतलाया। भूत ने कहा कि वह उस नगर के राजा के सिर चढ़ेगा और वह काफी धन लेकर राजा को ठीक कर देने के लिए तैयार हो जावे। चाहे कितने भी मन्त्रज्ञ आवें, वह भूत राजा के सिर से नहीं उतरेगा और जब वह आएगा तो उसे देखते ही वह भाग जाएगा। इससे उसे काफी धन मिल जायगा और फिर वह अपने घर जा सकेगा।

भूत ने जैसा कहा था वैसा ही किया और उसकी [illegible]
काम करके कर्कशा के पति ने काफी धन प्राप्त
तो अन्यत्र चला गया और कर्कशा के पति

है अतः वह चाहे जहाँ भी आनन्द से जीवन बिता सकता है और घर जाकर प्रतिदिन जूते खाना सर्वथा मूर्खता है। ऐसा निश्चय करके वह भी किसी दूसरे गाँव में जाकर रहने लगा।

कुछ समय बाद वह भूत एक अन्य राजा के सिर पर चढ़ बैठा। राजा के इलाज के लिए बहुत चेष्टाएँ की गई परन्तु कोई फल नहीं निकला। अन्त में राज-सेवक तलाश करते हुए उस कर्कशा के पति के पास आ पहुँचे और उससे राजा को ठीक कर देने की प्रार्थना की। वह उनके साथ हो लिया और राजा के नगर में जाकर इलाज के लिए काफी धन माँगा। उसकी शर्त स्वीकार की गई। जब वह राजा के सामने गया तो मालूम हुआ कि उस पर तो वही भूत है जिसने उसे दूसरी जगह काफी धन दिलवाया है। परन्तु भूत ने उसे देखते ही भारी क्रोध किया कि वह अभी तक अपने घर क्यों नहीं गया, जबकि उसे काफी धन दिलवा दिया गया है। कर्कशा के पति ने भूत को धीरे से समझाया कि वह तो उसे एक विशेष बात कहना चाहता है और वह बात यह है कि जिसके डर से वे दोनों भागे-भागे फिरते हैं वह कर्कशा उस समय वहीं स्वयं आ पहुँची है। अत: कोई उपाय करना चाहिए। इतना सुनते ही भूत डरकर वहाँ से भाग गया और राजा ठीक हो गया। कर्कशा के पति ने अपनी बुद्धि से और भी काफी धन प्राप्त कर लिया तथा वह आनन्द से वहीं रहने लगा।

इस लोककथा में प्रकट किया गया है कि मार के डर से भूत भी भागता है। प्राचीन भारत की लोकधारणा के अनुसार यक्ष लोगों के सिर भी आते थे और उनसे विविध प्रश्न पूछे जाते थे। राजस्थान में अब भी कई देवी-देवताओं से 'बूझा' करवाई जाती है। ये देवता अपने पुजारियों के सिर आते हैं और फिर प्रश्नों के उत्तर देते हैं। इस लोककथा का भूत भी लोगों के सिर चढ़कर कर्कशा के पति को धन दिलवाता है। इस प्रकार यह प्राचीन काल के किसी क्रूर प्रकृतिवाले यक्ष का स्थान लिए हुए प्रतीत होता है।

इसी प्रसंग में ध्यान देने योग्य एक कहानी राजस्थान में और भी प्रचलित है। कहा जाता है कि [illegible] के वृक्ष में एक भूत रहता था। वह आने जाने वालों को [illegible] उनसे तम्बाकू का पान (एक बार [illegible]) [illegible] था। एक बार उस स्थान पर एक [illegible] कोई [illegible]

था। अतः ब्राह्मण ने उसे एक 'लोटे' (जल रखने का विशेष प्रकार का मिट्टी का पात्र) में बन्द किया और वह चल पड़ा। आगे एक नगर में भूत को 'लोटे' में से निकाल दिया गया और वह एक धनी सेठ के सिर पर चढ़ गया। उस सेठ के लड़कों ने उनके पिता के सिर से भूत को उतारने के लिए काफी उपाय किया परन्तु कोई फल नहीं निकला। अन्त में भूत की दी हुई सलाह के अनुसार उस ब्राह्मण ने काफी धन लेकर उस सेठ के सिर से उसे उतार दिया। इसके बाद काफी धन लेकर वह ब्राह्मण अपने घर को ओर चला और साथ में भूत को भी पहले की तरह 'लोटे' में बन्द करके ले लिया। कुछ दूर चलने पर ब्राह्मण के दिल में दगा पैदा हुआ और उसने उपकारी भूत को लोटे सहित जमीन में गाड़ दिया। इस परिस्थिति में भूत का कोई जोर नहीं चला परन्तु उसने ब्राह्मण को 'सर्वनाश' का शाप दिया, जो आगे चलकर फलित हुआ।

इस लोककथा का भूत अच्छी प्रकृति का है। वह वृक्ष में निवास करता है और अपनी सीमा में रहता है। वह मनुष्य के सिर भी चढ़ता है। ये सब लक्षण प्राचीन कथाओं के यक्ष की याद दिलाते हैं। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इन कथाओं का भूत एक मनुष्य के आगे कमजोर पड़ गया है।

राजस्थानी महिला समाज में 'विनायक' सम्बन्धी कथाओं को विशेष रूप से महत्त्व प्राप्त है। प्रत्येक व्रतकथा के अन्त में विनायक की कहानी कहने या सुनने का एक नियम सा है और इस विषय में अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं।

प्राचीन भारत में यक्षों की मूर्तियाँ बनाई जाती थी। वे कद में नाटे, तोंद वाले तथा हाथी जैसे कानों वाले दिखलाए जाते थे। कई विद्वानों का अनुमान है कि कालान्तर में जो गणेश की प्रतिमाएँ बनाई गई, उनकी रचना में प्राचीन यक्ष मूर्तियों का स्पष्ट प्रभाव है। राजस्थान में प्रचलित विनायक की कहानियों में तो प्राचीन यक्ष-कथाओं के लक्षण स्पष्ट ही प्रकट हैं।

सर्व प्रथम महिला समाज में प्रचलित विनायक की स्तुति दी जाती है—

म्हारा विनायकजी स्याणा।
ल्यावें धन का वाणा॥
म्हारा विनायकजी भोळा।
भरें धन से झोळा॥
म्हारा विनायकजी सूधा।
कर दे धन का कूडा॥

म्हारा विनायकजी दादा ।
ल्यावें धन का गाडा ।।
विनायक बाबो रंगो चंगो ।
भरी बाड़ी में फिरें सुरंगो ।।
राणी ध्यावें राज नै ।
म्हे ध्यावां म्हारै काज नै ।।
राणी को राज बधतो जावो ।
म्हारो कारज सधतो जावो ।।
पोता भू की रावड़ी, दोयता भू की खीर ।।
मीठी लागै रावड़ी, खाटी लागै खीर ।।
घर सांकड़ो देई ।
पथ मोकळो देई ।।

इन सीधे सादे शब्दों में विनायक से धन एवं परिवार की वृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है ।[1] पारिवारिक मंगलकामना भारतीय महिला के प्राणों का प्रधान स्वर है । इसकी प्राप्ति के लिए अनेक लोक-देवताओं की पूजा की जाती है । इनमें विघ्नहर्ता विनायक प्रमुख है जिनमें प्राचीन आरक्षदेवता यक्ष का लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट है ।

विनायक देवता की एक कहानी में एक ब्राह्मण उनकी उपासना में लीन रहता है । उसकी स्त्री को ऐसा करना अच्छा नहीं लगता है । अतः एक दिन जब वह ब्राह्मण गंगा नहाने के लिए घर से निकलता है, तब वह पीछे से विनायक की मूर्ति छिपा देती है । घर लौटने पर ब्राह्मण को देवता की प्रतिमा नहीं मिलती तो वह अनशन धारण करके बैठ जाता है । इस पर पति पत्नी में झगड़ा होता है । और विनायक की मूर्ति ऐसा होते देखकर हँसती है तथा उनको धन धान्य से सम्पन्न कर देती है ।

एक अन्य कहानी में एक मेंढकी विनायक का ध्यान करती है और उसके ऐसा करने से उसका पति नाराज होता है । फल यह होता है कि राजा की दासी उसी समय तालाब पर पानी लेने आती है और उन दोनों को पानी के साथ घड़े में डाल कर अपने घर ले आती है । फिर वह घड़ा आग पर चढ़ा दिया जाता है । अब मेंढक घबराता है और अपनी स्त्री से कहता है, कि वह विनायक को स्मरण करे ताकि उनके प्राण बचें । मेंढकी ऐसा करती है और

1. यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः । (गीता १७/४)

एक सेठानी प्रतिदिन हनुमान के मन्दिर में जाकर एक रोटी और चूरमे का लड्डू चढ़ाती थी तथा निवेदन करती थी कि जो कुछ वह जवानी में भेंट करती है, वह उसे बुढ़ापे में दिया जावे। उसका यह क्रम काफी लम्बे समय तक चला। बाद में उसके घर में बेटे की बहू आ गई। उसने घर पर पूरा अधिकार जमा लिया और अपनी सास को मन्दिर जाने से रोक दिया। सास अब बूढ़ी हो चली थी। उसने अपना नियम नहीं तोड़ा। फल यह हुआ कि उसे घर से निकाल दिया गया।

घर से दूर होकर बुढ़िया हनुमान के सहारे बैठ गई। हनुमान उसे प्रतिदिन रोटी और चूरमा देने लगे। इस प्रकार उसे कोई कष्ट नहीं था। उधर बहू के घर में बुरी तरह घाटा लग गया और सारी विपत्ति में फँस गई। ऐसी हालत में वह अपनी सास के पास आई और देखा कि बुढ़िया तो आनन्द में है। अब बहू को अपनी भूल ज्ञात हुई। वह जैसे तैसे अपनी सास को घर ले गई और हनुमान की कृपा से वे लोग फिर सम्पन्न हो गए।

हनुमान विषयक इस कहानी में और ऊपर दी गई विनायक सम्बन्धी कहानियों में कोई अन्तर नहीं है। ये सभी कहानियां लगभग एक ही श्रेणी की हैं। किसी समय जो कहानियां भारतीय प्रजा में यक्षों के विषय में प्रचलित थीं, वे ही कालान्तर में उसी प्रकार के अन्य देवताओं से सम्बन्धित हो गई प्रतीत होती हैं। इन सभी कहानियों के अन्तर्मूल तत्व समान ही हैं। इस विषय में एक उदाहरण और भी प्रस्तुत किया जाता है। राजस्थान में भैरू जी (भैरव) की पूजा विशेष रूप से की जाती है। भैरूजी की 'जात' दी जाती है और उनका 'झूभा' भी करवाया जाता है। भैरूजी भी यक्ष देवता है। उनको बलि एवं 'बाकला' (उबाले हुए मोठ) तथा तेल भेंट किए जाते हैं। ये सब चीजें प्राचीन यक्ष-पूजा की याद दिलाती हैं। इस सम्बन्ध में एक लोक-कथा भी प्रस्तुत की जाती है जो सार रूप में इस प्रकार है :—

एक किसान के चार बेटे थे। उनमें सबसे छोटे का नाम 'रलो' था। वह कुछ भोले स्वभाव का था। उसकी भाभियां उससे ईर्ष्या करती थीं। एक बार उन सबने मिल कर कुचक्र रचा और 'रले' को घर से हिस्सा देकर अलग कर दिया। उसके माता-पिता मर चुके थे। अतः उसे अपने हिस्से में एक फूटा हुआ मकान और थोड़ी सी जमीन खेती के लिए मिली। बेचारा '.उसी मकान में अपनी स्त्री को लेकर चला गया।

ारे दिन 'रला' अपने खेत में गया। वह बहुत ही छोटा था। वहां . नीचे भैरू जी का चबूतरा बना हुआ था। रले ने उसे तोड़ना कया। इतने में ही पेड़ में से आवाज आई कि वह ऐसा न करे। उसका

सारा संकट भैरूजी स्वयं मिटा देंगे । रळा ठहर गया । उसने भैरूजी के आदेश से अपने खेत को बोया । उसके खेत में बहुत अनाज पैदा हुआ । अब उसको कोई तंगी न थी ।

रळे की अच्छी हालत देख कर उसकी भाभियां जल उठीं । एक दिन जब रळा और उसकी स्त्री खेत में गए हुए थे, पीछे से उसके घर में आग लगा दी गई । घर जल गया । जब रळा लौट कर घर आया तो वहां राख का ढेर मिला । वह उसी समय भैरूजी के चबूतरे के पास गया और उसकी फेरी देने लगा । भैरूजी ने उसे फिर आदेश दिया कि वह सारी राख अपने पाडे (भैंसे) पर लाद कर उस गांव से निकल जावे । फिर सब ठीक हो जाएगा । रळे ने ऐसा ही किया और राख को अपने पाडे पर लाद कर वह गांव से चल पड़ा ।

रळे को मार्ग में एक सेठ-सेठानी पैदल जाते हुए मिले । सेठ के पूछने पर रळे ने प्रकट किया कि उसके पाडे पर केशर कस्तुरी लदी हुई है । सेठानी चलते-चलते थक गई थी । सेठ ने रळे से कहा कि उसकी पत्नी को पाडे पर बिठा लिया जावे । रळे ने उसे इस शर्त पर पाडे पर बिठाया कि यदि उसका माल बिगड़ जाएगा तो वह पूरा दाम लेगा । अन्त में उसका माल तो बिगड़ना था ही । अतः उसने सेठ से काफी रुपए लिए और मालदार होकर घर आ गया । रळे की भाभियों ने यह हाल सुनकर अपने घर भी जला डाले और उस राख को बेचने के लिए उपक्रम किया परन्तु उनके पल्ले क्या पड़ना था ? वे रोकर रह गईं ।

इसके बाद रळे को तंग करने के लिए उसका पाडा मार डाला गया । भैरूजी के आदेश से उसने अपने पाडे की खाल कढवाई और उसे बेचने के लिए गांव से बाहर ले गया । मार्ग में रात पड़ गई और वह एक पेड़ पर खाल सहित बैठ गया । वहां काफी धन लेकर चोर आए । रळे ने उन पर खाल डाल दी और चोर धन छोड़ कर भाग गए । रळा सारा धन लेकर घर आ गया । इस वृत्तान्त को सुनकर रळे की भाभियों ने भी अपने पाडे मार डाले और उनकी खाल से धन प्राप्त करने का उपक्रम किया परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ ।

अब की बार रळे को बांध कर कुए में डालने का षड्यन्त्र रचा गया और तदनुसार उसे बांध भी लिया गया । उसके भाई उसे कुए में डालने के लिए जंगल में ले चले । उसने फिर भैरूजी को याद किया । उनकी कृपा से संयोग ऐसा हुआ कि रळे के भाई उसे बंधा हुआ छोड़ कर विश्राम के लिए एक जगह दूर बैठ गए । इतने में ही एक रैबारी (ऊंट चराने ...) ।

टोळा (ऊँटों का समूह) लेकर वहाँ आया। उसने रळे को देखकर पूरा हाल पूछा। रळे ने प्रकट किया कि उसका विवाह हो चुका है और उसके भाई उसका एक विवाह और करना चाहते है परन्तु वह इसके लिए तैयार नही हैं, अतः उसे बाँध कर ले जाया जा रहा है। रैबारी कँवारा था। वह रळे के स्थान पर बँध गया और रला उसका टोळा लेकर आ गया। पीछे से विवाह का भूखा रैबारी कुएँ मे पटक दिया गया।

अब भी रळा नही मरा। उसने प्रकट किया कि उसे पत्थर साथ मे बाँध कर कुँए मे नही डाला गया, अत ऊँटो का टोळा ही मिला। अगर साथ मे पत्थर बाँधकर कुएँ मे डाला जाता तो हाथियो का समूह मिलता। रळे की भाभियो ने इस बात को सच मान लिया। उन्होने अपने-अपने घरवालो को इस प्रकार कुएँ मे गिरने के लिए कहा। उन्होने उत्तर दिया कि अब तक का उनका कहा हुआ सारा काम वे करते रहे हैं और यह काम वे स्वयं (स्त्रियां) करें। भैरू जी ने उनकी बुद्धि फेर दी और वे कुएँ मे गिरने के लिए तैयार हो गई। ऐसा ही किया गया मगर मिलने को क्या था। अब चारों भाई मिलकर प्रेम से रहने लगे।

इस लोककथा के भैरू जी ने यक्ष का स्थान लिया है। कथा का सम्पूर्ण सूत्र-सचालन मानो वे ही अप्रत्यक्ष रूप से कर रहे है।

यक्षिणी सिद्ध करने सम्बन्धी लोक विश्वास भारतीय जनसाधारण मे अब भी मौजूद है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो व्यक्ति यक्षिणी सिद्ध कर लेता है, वह उसकी सहायता से असम्भव कार्य भी सम्भव कर दिखलाता है। जायसी विरचित पदमावत काव्य मे राघवचेतन को यक्षिणी सिद्ध थी जिसमे उसने अमावस्या के दिन द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन करवा दिया।[1] राजस्थान मे भी ऐसी सिद्धि प्रकट करने वाली लोककथाएँ प्रचलित हैं। आगे एक ऐसी कथा दी जाती है—

किसी राजा के नियम था कि वह अपने पण्डित के हाथ से भगवान का चरणामृत लेकर ही भोजन करता था। एक बार किसी कारणवश राजा अपने पण्डित से ऐसा नाराज हुआ कि उसने ब्राह्मण मात्र के हाथ से चरणामृत न लेने की शपथ ले ली। इससे पण्डित को बड़ा दुःख हुआ और वह घर आकर अपना जीवन ही समाप्त कर देने का विचार करने लगा।

---

1. राघौ पूजा जाखिनी, दुइज देखावा साँझ।
   पथ गरथ न जे चलहिं, ते भूलहिं बन माँझ॥ (४४७/३८/२)

पण्डित के तीन पुत्र थे। वे उस समय दूर देश में गए हुए थे। पण्डित ने अपने पुत्रों को मिलने के लिए बुलवाया। उनमें से सबसे बड़ा लड़का पहले पहुँचा। उसे सारी स्थिति बतलाई गई। इस पर लड़के ने अपने पिता से कहा कि उसने ऐसी सिद्धि प्राप्त कर ली है कि राजा को उसकी बात माननी पड़ेगी और वह सीधा राजसभा में आ गया। राजा ने उसे पहिचान लिया और उचित आसन दिया। उस दिन अमावस्या थी और किसी अनुष्ठान के लिए और भी कई पण्डित आए हुए थे। पण्डित के लड़के ने राजा से सब हाल सुनकर कहा कि उस दिन अमावस्या नहीं है और पूर्णिमा है। सभी पण्डित ऐसा सुनकर चकित हो गए। अन्त में अपनी सिद्धि के बल से लड़के ने उस रात पूर्णिमा का चन्द्रमा दिखला दिया। इस पर राजा उसकी सिद्धि से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उसका शिष्य बनना स्वीकार किया। लड़के ने कहा कि पहिले उसके हाथ से राजा चरणामृत लेवें, फिर उसे शिष्य बनाया जा सकता है। परन्तु ऐसा करने के लिए राजा तैयार नहीं हुआ और पण्डित का लड़का अपने घर लौट आया।

इसके बाद पण्डित का दूसरा लड़का घर पहुँचा। वह भी सारी बातें सुनकर राजा से मिलने चला। उसने मार्ग में माया की एक स्त्री बनाकर साथ ले ली और फिर वे दोनों राजसभा में पहुँचे। राजा ने उसे भी पहिचान लिया और उचित सम्मान दिया। लड़के ने राजा से कहा कि उसे दानवों के युद्ध में देवों की सहायता के लिए स्वर्ग जाना है, अतः कुछ समय के लिए राजा उसकी स्त्री की रक्षा का भार सम्भाल लेवे। राजा ने लड़के की बात मानकर उसके साथ की स्त्री को ससम्मान महल में भिजवा दिया और वह लड़का कच्चे सूत के सहारे आकाश में चढ़ गया। परन्तु थोड़ी देर बाद उसके शरीर के समस्त अङ्ग कट कर राजसभा में आ गिरे और उसकी स्त्री यह समाचार सुनकर वहीं उसके साथ सती हो गई। राजा बड़ा उदास था। इतने में ही उसी कच्चे सूत के सहारे पण्डित का लड़का नीचे उतर आया और राजा से उसने अपनी स्त्री माँगी। सारी सभा चकित हो गई। उसे पीछे का वृत्तान्त सुनाया गया, मगर उसने महल की एक कोठरी में से अपनी उसी स्त्री को निकाल कर सबको दिखला दिया। पण्डित के दूसरे लड़के की सिद्धि देखकर राजा और भी चकित हुआ और उसने उसका शिष्य बनना चाहा। परन्तु उसके हाथ से भी राजा ने चरणामृत लेना स्वीकार नहीं किया और यह लड़का भी घर लौट आया।

अन्त में पण्डित का सबसे छोटा लड़का घर पहुँचा।

वृत्तान्त सुनकर कहा कि राजा तो चीज ही क्या है, उसके पुरखे भी प्रकट होकर उसके हाथ से चरणामृत लेने के लिए लालायित हो जाएगे। ऐसा कह कर पण्डित का लडका राजसभा मे आया। राजा ने उसका भी उचित सम्मान किया। लड़के ने प्रकट किया कि जल्दी ही महाप्रलय होने वाला है, अतः सब लोग भगवान का भजन प्रारम्भ कर देवें। इस सूचना से सभी लोग घबरा गए। इतने में ही भयकर बाढ आई और चारो तरफ अपार जलराशि छा गई। राजा दौडकर अपने महल की छत पर चढ गया। पण्डित का लड़का उसके साथ था। पानी की सतह महल की छत तक पहुँच गई और राजा की छाती तक पानी आ गया। इस समय राजा ने पण्डित के लड़के से रक्षा का कोई उपाय करने के लिए प्रार्थना की। लडके ने कहा कि उसके हाथ से राजा चरणामृत ग्रहण कर लेवे तो प्राणरक्षा हो सकती है। राजा ने ऐसा करना स्वीकार नही किया और पानी उसके निचले होठ तक चढ आया। अब राजा ने अपना हठ छोडा और कहा कि उसे शीघ्र ही चरणामृत दिया जावे क्योंकि पानी सिर तक चढ जायगा। तो फिर शेष क्या बचेगा! पण्डित के लड़के ने अपने हाथ से उसे चरणामृत दिया और राजा ने उसे पी लिया। धीरे-धीरे समस्त बाढ उतर गई और सब कुछ पूर्ववत् दिखलाई देने लगा। इस प्रकार पण्डित के सबसे छोटे बेटे की सिद्धि मे सफलता प्राप्त हुई और बूढ़ा पण्डित फिर से राजसभा मे गौरव के साथ उपस्थित हुआ।

कहना न होगा कि इस एक लोककथा मे तीन कहानियाँ मिली हुई है परन्तु ये तीनो ही विशेष प्रकार की सिद्धि की सफलता प्रकट करती हैं। इनमे पण्डित के सबसे छोटे लडके की सिद्धि विशिष्ट है। पहली कथा तो राघव-चेतन की कहानी का ही दूसरा रूप है। दूसरी कहानी राजा विक्रमादित्य या भोज के सम्बन्ध मे भी कही जाती है और अत्यधिक जनप्रिय है। तीसरी कहानी मे राजहठ चरम सीमा पर दिखलाया गया है और यह एक राजस्थानी कहावत का आधार भी है। कहावत है, "पाणी सिर पर कै किरपा पाई कै है ?" परन्तु इन सभी कहानियो मे सिद्धि की सामर्थ्य दिखलाई गई है जो राघवचेतन का सा गुरुगौरव सामने ला देती है। यह सब शक्तिशाली सिद्ध कर देने सम्बन्धी लोकविश्वास की महिमा है।

ऊपर कहा गया है कि यक्ष का नाम 'वीर' भी है। लोककथाओं मे महाराजा विक्रमादित्य के वीर प्रसिद्ध है। इन वीरों की सहायता से महाराजा के अनेक अनहोने काम सिद्ध हुए है। सत्यवीरदे राजकुमारी का मोनभग

महाराजा ने अपने वीरों की सहायता से करवाया था ।[1] इसी प्रकार अनेक लोककथाओं के नायक राजा रिसालू के वीर प्रसिद्ध हैं। उसने भी अपने वीरों की सहायता से अनेक राजकुमारियों की विवाह सम्बन्धी शर्तें तुड़वाई हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई लोककथाओं में कथानायक को 'वीरों' की परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष सहायता प्राप्त हुई है। आगे इस विषय में एक लोककथा प्रस्तुत की जाती है —

किसी गांव में एक बनिया रहता था। उसके खेती का धन्धा था। कुछ वर्षों बाद उसने इहलीला समाप्त करली। पीछे एक बड़ा लड़का और उसकी स्त्री थी। एक छोटा लड़का भी था। इनकी माता पहिले ही गुजर चुकी थी। घर का मालिक बड़ा लड़का बना। उसकी स्त्री का स्वभाव अत्यन्त कठोर था। वह देवर से खेत का काम करवाती थी और साधारण खाना कपड़ा देती थी।

एक दिन लड़का खेत पर काम करके शाम पड़े घर लौटा। [illegible] वह एक कटोरा खेत में ही भूल आया। इसी कटोरे में उसे भोजन दिया जाता था। भाभी ने उसे कहा कि यदि वह भोजन चाहता है तो [illegible] खेत जाकर वहाँ से अपना कटोरा लावे। बेचारा लड़का [illegible] खेत [illegible] चल पड़ा। रात पड़ चुकी थी। लड़के ने अपने खेत में जाकर देखा कि कुछ [illegible] उसके खेत में अनाज के पौधे उखाड़ कर [illegible] के खेत में [illegible] रहे हैं। उसने भयभीत होकर उनका [illegible] [illegible] उत्तर मिला कि वे आठ के दिन (अर्थात् [illegible]) [illegible]

लिए लगान पर ले लेवे। लड़के ने तदनुसार कार्य किया और विस्तृत क्षेत्र अपने नाम से लगान पर लिखवा लिया। राजा इससे परम प्रसन्न हुआ।

लडके ने जो क्षेत्र अपने लिए राजा से प्राप्त किया था, वह खेती के योग्य नही था और न उसके पास खेती करने का कोई साधन ही था। परन्तु वह तो अपने 'दिन' की आज्ञानुसार कार्य करता था। उसे आज्ञा मिली कि वह खेत की जमीन साफ करने का काम प्रारम्भ कर देवे। लडके ने ऐसा करना शुरु कर दिया। तब उसने देखा कि सैकड़ों अपरिचित व्यक्ति उस क्षेत्र की जमीन साफ करने मे जुटे हुए है। इस समय उसे अपने गाँव के खेत का दृश्य याद आ गया जहाँ उसने रात को काम करने वाले जाट के 'धीरो' को देखा था। जल्दी ही खेत की जमीन साफ हो गई। अगले दिन लडके ने कही से हल बैल आदि प्राप्त किये और खेत को जोतना प्रारम्भ कर दिया। जिस प्रकार खेत की जमीन साफ हुई थी, उसी प्रकार उसकी पूरी जुताई भी हो गई। इसी प्रकार उसकी सिचाई तथा कटाई हुई और समय पर उस खेत मे इतनी अधिक उपज हुई कि उसे रखने के लिए बहुत बड़े मकान की कमी प्रतीत होने लगी लडके ने अपने 'दिन' की आज्ञानुसार मकान बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही समय मे वहाँ बहुत बडा भवन बन कर तैयार हो गया। लड़का उस भवन में बड़े ठाठ से रहने लगा।

थोड़े ही वर्षों मे वह बनिये का लड़का वहाँ का एक बड़ा सेठ बन गया। एक दूसरे सेठ ने उसका वैभव देखकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। वहाँ के राजा ने भी उसका बड़ा सम्मान किया। सोया हुआ दिन' जागने से ऐसा ही होता है।

इस राजस्थानी लोककथा के अनेक रूपान्तर राजस्थान में प्रचलित हैं, जिन सब में थोडा-थोडा अन्तर भी है। यह कथा भारत के उस युग के जनजीवन की याद दिलाती है, जब यहाँ के लोग व्यापार के लिए समुद्र पार जाकर अतुल धनराशि संचित करते थे और परिस्थिति के अनुसार या तो वहीं बस जाते थे या अर्थ सम्पन्न होकर अपने देश लौट आते थे। फिर भी इस कथा मे समाया हुआ यक्ष तत्त्व विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। कथा-नायक की पूरी सफलता 'धीरो' की क्रिया-शीलता पर निर्भर है। ऐसी स्थिति मे कथा के इस प्रधान तत्त्व को भुलाया नही जा सकता। बगाल मे 'क्षेत्रपाल' के सम्बन्ध मे एक लोककथा है। उसमें एक विधवा को छोटा बालक खेतो में मजदूरी करने जाता है और इसी से उन दोनो का जीवन-यापन होता है। वहाँ का राजा उदार है, अत माता अपने बेटे का खेती के लिए कुछ जमीन प्राप्त करने के लिए उसके पास भेजती है। राजा उस छोटे बालक से कहता है,

"जितनी जमीन तुम एक दिन में गोड़ सकोगे उतनी ही तुम्हारी हो जायगी।" इस पर बालक खेती की जमीन गोड़ने लगता है तो उसे दो अपरिचित व्यक्ति दिखलाई देते हैं। लड़का उनसे परिचय पूछता है तो उसे पता चलता है कि वे दोनों भाई 'क्षेत्रपाल' हैं और उस बालक की सहायता के लिए वहाँ प्रकट हुए हैं। बालक एक दिन में कितनी जमीन गोड़ सकता था? परन्तु देवों ने उसका काम अपने हाथों में ले लिया और वहाँ विस्तृत क्षेत्र के गोड़ने का काम पूरा हो गया। देवों ने बालक को समझा दिया कि यदि राजा उससे कुछ भी पूछे तो वह सही बात प्रकट कर देवे।

अगले दिन राजा ने बालक को अपने पास बुलवाया और इतनी अधिक जमीन एक दिन में गोड़ दिए जाने का रहस्य पूछा। बालक ने राजा को सब कुछ सच-सच बतला दिया। राजा ने प्रसन्न होकर वह सारा क्षेत्र बालक को प्रदान कर दिया और कहानी सुनकर वहाँ के सब लोग खेत के देवों की पूजा करने लगे।[7]

कहना न होगा की बंगाल की क्षेत्रपाल विषयक लोककथा का मूल तत्त्व ऊपर दी गई राजस्थानी लोककथा से मिलता है और काफी अंश में ये दोनों कथाएँ समान ही हैं। दोनों कथाओं के नायक दयनीय स्थिति में हैं और खेत के देव उनका काम स्वयं करके उनको सम्पन्न बना देते हैं। सम्भव है कि ये दोनों कथाएँ किसी एक ही प्राचीन कथा के दो परिवर्तित रूप हों जो भारतीय लोकसंस्कृति के एकात्म्यभाव को प्रदर्शित करती हुई अद्यावधि लोकमुख पर अवस्थित हैं। खेत की रक्षा करने वाला यह देवता प्राचीन भारत का यक्ष ही है। बंगाल की कथा में तदनुसार श्रद्धा का वातावरण मौजूद है जब कि राजस्थान की कहानी से वह तिरोहित हो गया है।

राजस्थान की जनता में 'पीरपूजा' का भी कम प्रचार नहीं है। 'वीर' शब्द का पूर्णतया राजस्थानीकरण हो गया है और यह यहाँ के जनजीवन का अंग बन चुका है। वे सन्त-महात्मा जो अपने जीवनकाल में या मरणोत्तर जीवन में चमत्कार दिखलाते हैं उन पर लोकविश्वास जम जाता है और वे 'पीर' के रूप में पूजे जाते हैं। इसी प्रकार जो योद्धा सत्य की रक्षा में जूझ जाते हैं वे भी पीर मान लिये जाते हैं। इस दिशा में हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं किया जाता और उनको सभी पूजने लगते हैं। 'राजस्थानी लोकसंस्कृति की रूपरेखा' में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई थी कि यह 'पीरपूजा' भारत की प्राचीन यक्षपूजा का ही परिवर्तित रूप है और इसमें अनेक तत्त्व ऊपर से मिल गये हैं। किसी जमाने का 'वीर' (यक्ष) ही वर्तमान में 'पीर' के रूप में प्रतिष्ठित है और हमारी संस्कृति का समन्वय सिद्धान्त इस स्थिति का मूलाधार ... समाज के विशिष्ट व्यक्ति पीरों के रूप में ...

पूजित हैं और इनके सम्बन्ध में भी जात देना, जडूला (केश) उतारना, बूझा करवाना आदि उपक्रम किये जाते हैं जो पुराने जमाने से यक्षपूजा के अंग रहे हैं। इन पीरों के चमत्कारों की भी अनेक कहानियाँ लोक प्रचलित हैं और जनसाधारण में उनका पूरा विश्वास है। पीरों की संख्या के अनुसार ही इन कहानियों की संख्या काफी बड़ी है।

केनोपनिषद् में कथा आती है कि असुरविजय से देवों में भारी गर्व आ गया और उनको वास्तविकता का अनुभव करवाने के लिए परमब्रह्म एक महाकाय दिव्य यक्ष के रूप में प्रकट हुए। इस यक्ष का परिचय प्राप्त करने के लिए देवसमाज में से अग्नि, वायु एवं इन्द्र क्रमशः इसके सम्मुख भेजे गए। यक्ष ने उनसे सामने एक तिनका रखकर अपना गुण और प्रभाव दिखलाने को कहा। उस तिनके को न अग्निदेव जला सके और न वायुदेव उड़ा सके तदनन्तर देवराज इन्द्र की बारी के समय महाशक्ति उमा ने प्रकट होकर उन्हें वास्तविक स्थिति बतलाई कि संसार की समस्त क्रियाएँ किस परोक्ष शक्ति से संचालित होती हैं और मनुष्य का इसके लिए गर्व करना किस प्रकार तथ्यरहित है। केनोपनिषद् का यक्ष अपरिमित शक्ति का केन्द्र है। इसके बाद एक जमाना ऐसा आया कि यही यक्ष लोककथाओं में ऐसे 'वीर' के रूप में प्रकट हुआ जो मनुष्य का वशवर्ती है और उसके लिए कार्यशील है। महाराजा विक्रमादित्य जब कभी अपने वीरों को याद करते हैं, वे आज्ञा पालन के लिए उपस्थित हो जाते हैं। इस परिवर्तन में तान्त्रिक विचारधारा का प्रभाव प्रतीत होता है। वर्तमान समय में 'वीर' के स्थान पर पीर लोकपूजित है। इस परिवर्तन का मूलाधार भारत की संतपूजा एवं वीरपूजा है।

ऊपर कहा गया है कि देव लोग आर्यों के पूर्वज थे और यक्षों की गिनती भी देवों में की गई है। ऐसी स्थिति में यह ध्यातव्य है कि हमारे समाज का एक विशिष्ट वर्ग समयानुसार लोककथाओं में नाना रूप परिवर्तित करके अन्त में वह मनुष्य (पीर) के रूप में ही प्रकट हो गया है। अतः भारतीय लोककथाओं में यक्षतत्त्व का अध्ययन निश्चय ही बड़ा रोचक और उपयोगी है। राजस्थानी जनसाधारण में यक्ष शब्द सुनने में नहीं आता परन्तु यक्षतत्त्व यहाँ के जनजीवन में अब भी किसी अंश में समाया हुआ है। यह सब भारतीय लोकसंस्कृति की महिमा है। जैसा की प्रारम्भ में कहा गया है इस संस्कृति के पुण्य प्रवाह में समयानुसार विविध तत्त्व मिलते रहे हैं और कालान्तर में वे रूपान्तरित भी हुए हैं परन्तु उनमें से कोई तत्त्व सर्वथा नष्ट नहीं हुआ। भारत की लोकसंस्कृति में रमा हुआ यक्षतत्त्व इस विषय में एक ... उदाहरण है।